मूल्य 200 रुपए
ISSN 2582-4481

वर्ष : 42
अंक : 2
अप्रैल - जून 2021

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

मीडिया
विशेषांक-2

Ministry of Electronics & Information Technology
Government of India

Digital India
Power To Empower

डिजिटल इंडिया
आत्मनिर्भर भारत
की ओर अग्रसर

"आत्मनिर्भर भारत एकाकीपन वाला भारत नहीं है और न ही अपनी ही ओर देखने वाला देश है। यह एक ऐसा भारत है जो अपनी क्षमता को बढ़ाता है और एक मजबूत पारिस्थितिकी तंत्र के साथ-साथ वैश्विक अर्थव्यवस्था से जुड़ी एक मजबूत आपूर्ति श्रृंखला विकसित करता है।"

रविशंकर प्रसाद
माननीय मंत्री, इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी,
संचार एवं कानून और न्याय, भारत सरकार

आज,
भारत तेजी से डिजिटल रूप से सशक्त समाज बनने की ओर बढ़ रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग प्रक्रियाओं को न केवल आसान बनाने के लिए किया जा रहा है, बल्कि पारदर्शिता और सेवाओं की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए भी किया जा रहा है।

नरेंद्र मोदी
प्रधान मंत्री, भारत

कॉमन सर्विस सेंटर
नागरिक केंद्रित आवश्यक सेवाओं का वितरण सुनिश्चित करना
- 300 से अधिक डिजिटल सेवायें 3.75 लाख से अधिक सीएससी द्वारा दी जा रही
- छोटे शहरों और ग्रामों सहित डिजिटल उद्यमी बनाना
- 12 लाख प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रोजगार सृजित

माई गव
भारत का डिजिटल लोकतंत्र मंच
- 170.55+ लाख पंजीकृत सदस्य
- पाठ में 9.49+ लाख प्रस्तुतियाँ
- चर्चाओं में 46.59+ लाख टिप्पणियाँ
- मतदान में 11.63+ लाख वोट
- प्रश्नोत्तरी में 92.46+ लाख भागीदारी

ई-अस्पताल (अस्पताल प्रबंधन सूचना प्रणाली)
स्वास्थ्य सेवा सर्विस डिलीवरी को सरल बनाना
- 431 अस्पताल
- सितंबर 2015 से अब तक 18.93 करोड़ सम्पादन

डिजिटल साक्षरता
प्रधान मंत्री ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान (हर घर डिजिटली साक्षर)
- ग्रामीण क्षेत्रों में 6 करोड़ नागरिकों को प्रशिक्षित करने का लक्ष्य
- डिजिटल रूप से अनिपुण प्रत्येक घरों से एक सदस्य तक पहुंचना
- ट्रेनिंग के लिए 4 करोड़ पंजीकृत

ई-ऑफिस
- सुदूरवर्ती कार्य एवं घर से कार्य समर्थित
- eFile Management, eLeave, eTour ज्ञान प्रबंधन, सहयोग और प्रबंधन इत्यादि

डिजीलॉकर
दस्तावेज सुरक्षित एवं साझा करें, कभी भी, कहीं भी
- 5.28+ करोड़ पंजीकृत उपयोगकर्ता
- 427 करोड़ प्रामाणिक दस्तावेज जारी किए गए
- 978 जारीकर्ता संस्थान

आरोग्य सेतु
सुरक्षित भारत के लिए आपका कवच
- भारत का अपना COVID-19 ट्रेसिंग मोबाइल ऐप
- Android, iOS और KaiOS प्लेटफार्मों में 17.13 करोड़ उपयोगकर्ता
- 23.02+ करोड़ नमूने परीक्षित

उमंग
कई सरकारी सेवाओं का लाभ उठाने के लिए एक मोबाइल ऐप
- 2.67+ करोड़ पंजीकृत उपयोगकर्ता
- 234 विभागों से 20,689 सेवाएँ
- मुख्य सेवाएँ: EPFO, ESIC, डिजीलॉकर, गैस बुकिंग, ePathshala, भारतीय संस्कृति

कोविन
सबसे बड़ा टीकाकरण अभियान
- 3.86+ करोड़ पंजीकरण
- 3.49+ करोड़ का टीका प्रबंधित
- 28,793 टीकाकरण स्थान

उत्पादन लिंक्ड प्रोत्साहन (PLI) योजना
- बड़े पैमाने पर इलेक्ट्रॉनिक्स विनिर्माण के लिए योजना
- कुल परिव्यय: 5 वर्षों के लिए INR 40,995 करोड़
- 5 साल की अवधि के लिए, वार्षिक बिक्री (आधार वर्ष पर) पर 4% से 6% का प्रोत्साहन
- लक्ष्य अनुभाग: मोबाइल फोन (चालान मूल्य INR 15,000 और उससे अधिक), मोबाइल फोन (घरेलू कंपनियाँ) और निर्दिष्ट इलेक्ट्रॉनिक घटक

राष्ट्रीय AI पोर्टल
- भारत में AI संबंधित हो रहे प्रगति के लिए वन स्टॉप डिजिटल प्लेटफॉर्म
- संसाधनों का सहभाजन: लेख, स्टार्टअप, AI में निवेश निधि, भारत में AI से संबंधित संसाधन, कंपनियां, शैक्षणिक संस्थान
- AI से संबंधित ज्ञान और नए काम के किरदारों के बारे में अनुभाग
- 514 लेख, 388 समाचार, 145 वीडियो, 49 अनुसंधान रिपोर्ट, 70 केस स्टडी, 252 स्टार्ट-अप, 23 निवेश कोष, 117 कॉलेज, 19 कंपनी, 26 देश, 77 पाठ्यक्रम, 102 सरकार की पहलें

प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण (DBT)
अपना अधिकार अपने द्वार
- हस्तांतरित कुल राशि: ₹14.35 लाख करोड़
- Estimated Gains: ₹1.78 लाख करोड़
- 316 योजनाएं 52 मंत्रालय

डिजिटल भुगतान: BHIM UPI
UPI के उपयोग से सरल, आसान और त्वरित भुगतान का लेनदेन
- बैंक भुगतानों के लिए त्वरित बैंकर: मोबाइल नंबर या वर्चुअल पेमेंट एड्रेस (UPI ID) का उपयोग करके भुगतान और जमा
- 213 बैंक UPI पर सजीव
- लेन-देन की संख्या: 229.29 करोड़

₹ 200/-

अतिथि संपादक
श्री अच्युतानंद मिश्र

संपादक मंडल
श्री राम बहादुर राय
श्री अच्युतानंद मिश्र
श्री बलबीर पुंज
श्री अतुल जैन
डॉ. भारत दहिया
श्री इष्ट देव सांकृत्यायन

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

वर्ष : 42, अंक : 2 **अप्रैल-जून 2021**

मीडिया विशेषांक -2

संपादक
डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

प्रबंध संपादक
श्री अरविंद सिंह
+91-9868550000
arvindvnsingh@gmail.com

सज्जा
श्री नितिन पंवार
nitin_panwar@yahoo.in

मुद्रण
कुमार ऑफसेट प्रिंटर्स
381, पटपड़गंज औद्योगिक क्षेत्र,
दिल्ली-110092

प्रकाशक
एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान
एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली–110002
दूरभाष : 011–23210074
ईमेलः manthanmagzin@gmail.com, ekatmrdfih@gmail.com
Website: www.manthandigital.com

अनुक्रम

1.	लेखकों का परिचय		03
2.	संपादकीय		04
3.	अतिथि संपादकीय		05
4.	सा वार्ता या विभूतये	डॉ. मनमोहन वैद्य	09
5.	मीडिया काउंसिल की संभावना प्रबल	रामबहादुर राय	16
6.	मीडिया में टेक्नोलॉजी भस्मासुर या कल्पवृक्ष	उमेश उपाध्याय	25
7.	भारत में वैचारिक पत्रकारिता : धुरी और द्वंद्व	हितेश शंकर	31
8.	भारत में समाचार एजेंसियों की उत्पत्ति और विकास	अशोक कुमार टंडन	37
9.	भारत में मीडिया शिक्षा के सौ वर्ष	प्रो. संजय द्विवेदी	42
10.	इलेक्ट्रॉनिक और डिजिटल मीडिया में नियमन संदर्भ और स्वरूप	हिमांशु शेखर	46
11.	लोकतंत्र में मंदी	अंशुमान तिवारी	56
12.	अध्यात्म में पाठकों की बढ़ती रुचि	डॉ. संतोष कुमार तिवारी	60

भारतीय पत्रकारिता के अग्रदूत

1.	पत्रकारिता के प्रतिमान महामना मालवीय	डॉ. धीरेन्द्र कुमार राय हर्षित श्याम जायसवाल	65
2.	श्री अरविन्द: राष्ट्र के पत्रकार	भानु कुमार	74
3.	गांधी जी की पत्रकारिता का मूलाधार राष्ट्रीयता	डॉ. कमलकिशोर गोयनका	78
4.	कालातीत है बाबा साहब की पत्रकारिता	रमेश रघुनाथ पतंगे	84
5.	व्रती पत्रकार थे दीनदयाल जी	डॉ. महेश चन्द्र शर्मा	88

आनुषंगिक आलेख

1.	सोशल मीडिया, ओटीटी प्लैटफॉर्म और डिजिटल मीडिया के लिए नए नियम		49
2.	आईएनएस ने गूगल से अधिक राजस्व की मांग की		52
3.	संपादन के विद्यापीठ की आवश्यकता	पं. माखनलाल चतुर्वेदी	59
4.	उनके लिए पत्रकारिता मिशन थी	देवेन्द्र स्वरूप	89
5.	ऋषि-परंपरा के पत्रकार मनीषी	लल्लन प्रसाद व्यास	89
6.	मिशनरी पत्रकारिता के प्रेरणा पुरुष	दीनानाथ मिश्र	89
7.	आदर्शवादी पत्रकारिता के साधक और मार्गदर्शक	यादवराव देशमुख	90
8.	अध्ययन व्यसन, पत्रकारिता मिशन	डॉ. नंदकिशोर त्रिखा	90
9.	संपादकों के संपादक दीनदयाल	डॉ. वेदप्रताप वैदिक	91
10.	शब्द और कृति की एकात्मकता के सर्जक थे पंडितजी	हृदयनारायण दीक्षित	91

लेखकों का परिचय

अच्युतानंद मिश्र उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले में 6 मार्च 1937 को जन्मे अच्युतानंद मिश्र की गिनती देश के लब्धप्रतिष्ठ पत्रकारों में होती है। एक महत्वपूर्ण संपादक, पत्रकार, लेखक और शिक्षाविद होने के अलावा वह पत्रकार संगठनों के अगुआ और सामाजिक कार्यकर्ता भी रहे हैं। आपने पत्रकारिता की शुरुआत पांचजन्य से की तथा बाद में अमर उजाला, लोकमत समाचार, जनसत्ता और नवभारत टाइम्स आदि प्रतिष्ठित समाचार पत्रों के संपादक रहे। माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय के संस्थापक कुलपति के रूप में आपके योगदान स्मरणीय हैं। संपर्क: mailtoachytanand@gmail.com

डॉ. मनमोहन वैद्य बचपन से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक। उच्च शिक्षा ग्रहण कर संघ के अनेक अंतरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय दायित्वों का निर्वहन किया। सिद्धहस्त लेखक । संप्रति सहसरकार्यवाह।

रामबहादुर राय हिंदुस्तान समाचार के समूह संपादक और इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र (आईजीएनसीए) के अध्यक्ष हैं। उन्हें 2015 में पद्म श्री से विभूषित किया गया। अपने आरंभिक दिनों में वे लोकनायक जयप्रकाश नारायण से गहराई से जुड़े रहे और आपातकाल विरोधी आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाई।
संपर्क: rbrai118@gmail.com, Mob: 9350972403

उमेश उपाध्याय वरिष्ठ पत्रकार और मीडिया शिक्षाविद हैं। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से एम.फिल. के बाद उन्होंने पुणे की एफटीआईआई, एशियन इंस्टीट्यूट फॉर ब्रॉडकास्टिंग डेवलपमेंट, बीस्काई बी लंदन, टेम्स स्टुडियोज (यूके से भी पढ़ाई की। दिल्ली विश्वविद्यालय, पीटीआई, दूरदर्शन, जी न्यूज, सब टीवी और होम टीवी के अलावा उन्होंने दिशा एजूकेशन सोसायटी और रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड से भी संबद्ध रहे। संप्रति वे नेटवर्क 18 से जुड़े हैं। वे एडिटर्स गिल्ड के सदस्य होने के अलावा कई विश्वविद्यालयों की अकादमिक और अधिशासी परिषद के सदस्य भी रहे हैं।

हितेश शंकर ने बहुत कम आयु में ही पत्रकारिता की शुरुआत कर दी थी। उन्हें मीडिया की मुख्यधारा में दो दशक से अधिक का अनुभव है। इंडिया टुडे, दैनिक जागरण और हिंदुस्तान समूह के अलावा उन्होंने मीडिया शिक्षाविद के तौर पर भी काम किया है। संप्रति वह पांचजन्य के संपादक हैं और राष्ट्रीय स्तर की कई समितियों के भी सदस्य हैं।

अशोक कुमार टंडन वरिष्ठ पत्रकार, स्तंभकार एवं राजनीतिक टिप्पणीकार अशोक कुमार टंडन को सक्रिय पत्रकारिता एवं मीडिया अध्यापन का करीब पाँच दशकों का अनुभव है। दिल्ली विश्वविद्यालय से राजनीति विज्ञान में स्नातक उपाधि के बाद विभिन्न मीडिया संस्थानों में कार्य करते हुए आप लंदन में पीटीआई के ब्यूरो प्रमुख एवं कूटनीतिक संपादक भी रहे। आप माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के अलावा आप प्रेस काउंसिल, एडिटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया, प्रेस एसोसिएशन और इंडिया इंटरनेशनल सेंटर के सदस्य भी रहे हैं। संप्रति आप प्रसार भारती बोर्ड के सदस्य हैं।
संपर्क: ashokkumar.tandon@gmail.com

प्रो. संजय द्विवेदी वरिष्ठ पत्रकार, लेखक और संस्कृतिकर्मी। मीडिया और राजनीतिक संदर्भों पर 25 पुस्तकों का लेखन और संपादन। माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल के प्रभारी कुलपति और कुलसचिव रहे। संप्रति भारतीय जनसंचार संस्थान के महानिदेशक हैं।

हिमांशु शेखर नई दिल्ली के भारतीय जनसंचार संस्थान से पत्रकारिता की पढ़ाई के बाद बिजनेस भास्कर, बिजनेस स्टैंडर्ड, तहलका और सत्याग्रह में पत्रकारिता। मीडिया पर कुछ पुस्तकें प्रकाशित। संप्रति स्वतंत्र पत्रकारिता।

अंशुमान तिवारी इंडिया टुडे हिंदी के संपादक। वह एक अत्यधिक प्रशंसित आर्थिक टिप्पणीकार, लेखक, नीति विश्लेषक और पुरस्कार विजेता पत्रकार हैं। उनका शो अर्थ और खारचा पनी लल्लतोप.कॉम पर समवर्ती अर्थव्यवस्था पर शीर्ष रैंकिंग साप्ताहिक कार्यक्रम है। वह लक्ष्मीनमा के लेखक हैं - भिक्षुओं के धन व्यापारी और मंत्र, एक पुरस्कार विजेता और धर्म-व्यापार तालमेल के भारत के इतिहास पर अत्यधिक प्रशंसित पुस्तक। संपर्क: anshuman1tiwari@gmail.com

डॉ. संतोष कुमार तिवारी लखनऊ विश्वविद्यालय से एमएससी एवं एलएलएम तथा ब्रिटेन की कार्डिफ यूनिवर्सिटी से पत्रकारिता में पीएचडी डॉ. संतोष कुमार तिवारी झारखंड केंद्रीय विश्वविद्यालय के जनसंचार विभाग से अवकाश प्राप्त प्रोफेसर हैं। इसके पूर्व वह वडोदरा स्थित महाराज सयाजीराव बड़ोदा विश्वविद्यालय तथा उसके भी पूर्व सिलचर स्थित असम केंद्रीय विश्वविद्यालय में जनसंचार के आचार्य रह चुके हैं। इसके पूर्व दो दशक तक वे पत्रकारिता में सक्रिय रहे और टाइम्स ऑफ इंडिया, अमृत बाजार तथा दैनिक जागरण समूह को अपनी सेवाएँ दीं। उन्हें दो ब्रिटिश और एक केनेडियन स्कॉलरशिप भी मिली। 'अ स्टडी ऑफ फ्री स्पीच वर्सस हेट स्पीच' संतोष जी की बहुचर्चित शोधकृति है।
संपर्क: santoshtewari2@gmail.com

डॉ. धीरेन्द्र कुमार राय पत्रकारिता एवं जनसम्प्रेषण विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में सहायक प्राध्यापक हैं। डॉ. राय ने सिनेमा, लोक संस्कृति और किसान आंदोलन जैसे विषयों पर शोध किया है। डॉ. राय ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातक, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर एवं महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा से एम.फिल एवं पीएचडी किया है। लोककला एवं लोकसंस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन को लेकर अनवरत कार्य कर रहे हैं।
संपर्क : dhirendra.rai@bhu.ac.in, +91-9532456796

हर्षित श्याम जायसवाल पत्रकारिता एवं जनसम्प्रेषण विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में शोधार्थी हैं। वे हिंदी पत्रकारिता के विकास में संवाद समितियों की भूमिका विषय पर शोध कर रहे हैं। हर्षित काशी हिंदू विश्वविद्यालय से ही इतिहास विषय में स्नातक (प्रतिष्ठा) एवं जनसम्प्रेषण में परास्नातक हैं।
संपर्क : harshit.jaiswal10@bhu.ac.in, +91-9473967169

भानु कुमार पीएचडी रिसर्च स्कॉलर, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय। दिसंबर 2017 से फरवरी 2020 तक हिंदुस्थान समाचार में रिसर्च एसोसिएट पद पर कार्य करते हुए वार्षिकी 2018 एवं 2019 का संपादन किए। साथ ही संस्कृतिक क्षेत्र से जुड़े काशी फाउंडेशन के संस्थापक सदस्य भी है।

डॉ. कमलकिशोर गोयनका दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग से अवकाशप्राप्त प्राध्यापक। मुंशी प्रेमचंद, महात्मा गांधी एवं प्रवासी साहित्य पर उल्लेखनीय कार्य। उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द के साहित्य के सर्वोत्तम विद्वान शोधकर्ता माने जाते हैं। मुंशी प्रेमचन्द पर आपकी अनेक पुस्तकें व लेख प्रकाशित हैं। प्रवासी हिन्दी साहित्य को एकत्रित करने, अध्ययन एवं विश्लेषण करने में अहम भूमिका रही। साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित प्रेमचन्द ग्रंथावली के संकलन एवं सम्पादन में विशेष योगदान है। हिन्दी में हाइकु कवितायें भी लिखी हैं। वर्ष 2014 में व्यास सम्मान के लिए चुना गया।

रमेश रघुनाथ पतंगे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से बचपन से ही जुड़े हुए हैं। आपने शाखा कार्यवाह से लेकर महाराष्ट्र प्रांत तक का दायित्व निभाया। आपातकाल में आपको जेल भी हुई और मीसा के अंतर्गत 18 माह तक ठाणे जेल में बंद रहे। 1983 से पत्रकारिता। साप्ताहिक विवेक के सह-संपादक से लेकर संपादक तक और हिंदुस्तान प्रकाशन संस्था के अध्यक्ष रहे। इसके अलावा मराठी और हिंदी में निरंतर लेखन। तीस से अधिक पुस्तकों का लेखन। कई पुरस्कारों-सम्मानों से विभूषित।

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा पूर्व राज्यसभा सांसद। भाजपा केंद्रीय कार्यकारिणी के सदस्य, दीनदयाल प्रशिक्षण महाभियान के राष्ट्रीय संयोजक। दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङमय का हिंदी एवं अंग्रेजी में 15 खंडों में संपादन।
संपर्क : mahesh.chandra.sharma@live.om

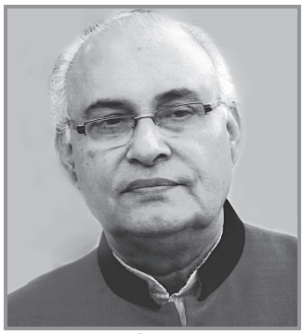

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

संपादकीय

'मंथन' मीडिया विशेषांक भाग एक का आपने स्वागत किया आभारी हूँ। मंथन के सुधी लेखक अनुसंधानपूर्वक लेखन करते हैं, अत: उनके आलेख संग्रहणीय बन जाते हैं। सभी लेखकों का अभिनंदन।

'मीडिया विशेषांक' भाग दो आपके हाथों में है, इस अंक को संवारने में भी लेखकवृंद ने बहुत मेहनत व विमर्श किया है। अद्यतन सूचनाओं सहित सांगोपांग विश्लेषण के साथ इस अंक की अनुक्रमणिका को संजोया गया है। उत्प्रेरणाक्षम पत्रकारीय महापुरुषों की भी समुचित जानकारी इस अंक में जुटाई जा सकी। अतिथि संपादक आदरणीय अच्युतानंद मिश्र एवं श्री रामबहादुर राय ने इस अंकों को संजोने में अथक परिश्रम किया है। मैं इन दोनों वरिष्ठों को प्रणाम करता हूँ।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सह-सरकार्यवाह डॉ. मनमोहन वैद्य ने पत्रकारिता के भारतीय पथ को खोजने एवं पाश्चात्य परिवेश की स्थितियों को उजागर करने वाला श्लाघनीय आलेख इस अंक के लिए लिखा, उनके साथ इस संदर्भ में शिक्षाप्रद विमर्श भी हुआ, अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। अंक के सभी लेखकों का मैं सादर अभिवादन करता हूँ।

हमारे देश की तथा विशेषकर सार्वजनिक एवं अकादमिक क्षेत्र की एक विशेष स्थिति है। हमारा आकलन सामान्यत: पाश्चात्य हो गया है। अत: हम विषयों को अनुवाद के माध्यम से समझते हैं। संवाद या समाचार की कोई भारतीय या स्वदेशी संकल्पना हमारे समक्ष नहीं होती। हम भारतीय तकनीकी शब्दावली को भी सामान्यत: नहीं समझते हैं। हमारे लिए 'समाचार' न्यूज का अनुवाद है। भारतीय वांङ्मय में इसके लिए चार शब्द हैं- 1.वार्ता, 2. प्रवृत्ति, 3. वृत्तांत और 4. उदंत। हिंदी का जो प्रथम वार्तापत्र है उसका शीर्षक 'उदंत मार्तंड' है। इसका अर्थ है 'समाचारों का सूर्य'। कभी-कभी लोग समझते हैं कि इसका अर्थ है 'उगता सूरज', वस्तुत: ऐसा नहीं है। ये चारों केवल शब्द ही नहीं हैं, इनके पीछे अवधारणाएँ हैं। उन भारतीय अवधारणाओं का किंचित आख्यान इस अंक में डॉ. मनमोहन वैद्य के आलेख में है।

भारतीयतापरक व्याख्याएँ, लोगों को कभी-कभी आदर्शवादी लगती हैं। इसे भी समझना चाहिए। हर समाज अपने व्यवहार को कोई न कोई आधार देता है। भारतीय चिंतन यह मानता है कि व्यवहार की श्रेष्ठता या तर्कसंगति को मापने का पैमाना 'आदर्श' ही हो सकता है। अत: आदर्शनिरपेक्ष व्यवहार, हमारे संस्कारों के अनुकूल नहीं कहा जा सकता। लोभ एवं भय के अधिष्ठान पर होने वाले व्यवहार ने ही हमको अनैतिक बनाया है। हम अनजाने ही अनेक विकारों के शिकार हो गए हैं। 'मीडिया' के संदर्भ में नीति नियमन की भारतीय परिस्थिति को इस अंक में उकेरने का अनुसंधानयुक्त प्रयत्न हुआ है। चिंतन-मनन के इस मंच पर आपका भी स्वागत है।

'मीडिया' का वितान समाचार तत्व से बहुत आगे बढ़ गया है। इस फैलाव को समेटना कठिन कार्य है। दो भागों में प्रकाशित इन अंकों में इसके चुनिंदा पक्षों को ही समेटा जा सका है। यदि संपूर्णता से आकलन करें तो इस विषय में अनेक ग्रंथों का निर्माण हो सकता है। अनुसंधानपरक समीक्षण का यह प्रयत्न है। आशा है यह अंक भी आपको पसंद आएगा। कृपया इसे पढ़कर अपने मंतव्य अवश्य प्रकट करें। शुभम्।

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा
mahesh.chandra.sharma@live.com

अतिथि संपादक की ओर से

महत्वाकांक्षा के खतरे और चुनौतियाँ

अच्युतानन्द मिश्र

परमात्मा अथवा प्रकृति की शक्तियों में ब्रह्मांड की प्राणवायु है संचार की शक्ति। वायु हो या प्रकाश, पर्यावरण अथवा ऊर्जा की अनुभूति भी संचार से ही होती है। अग्नि और चक्र की तरह समाज और भाषा, साहित्य, कला और संस्कृति मनुष्य के महान अविष्कार हैं। उनके अनेक रूपों से परिचय भी संचार के माध्यम से ही होता है। साहित्य, संगीत और कला की भाषा से आनंद की अनुभूति होती है। पर्यावरण की भाषा से प्रकृति परिभाषित होती है। विज्ञान की भाषा से अज्ञान के मिथक टूटते हैं। अव्यक्त को व्यक्त करना ही भाषा का संचार और चमत्कार माना गया है। मनुष्य में जानने की ललक, संवाद और अभिव्यक्ति की इच्छा ने ही अनादिकाल से साहित्य सृजन की प्रेरणा दी है। भाषा, साहित्य और अभिव्यक्ति की अनुगामी बनकर पत्रकारिता ने अपनी यात्रा शुरू की थी। आलोचना चाहे साहित्य में हो या पत्रकारिता में, दोनों सजातीय हैं। निर्भीकता अगर पत्रकारिता का सर्वश्रेष्ठ गुण है तो प्रखर आलोचना उसका धर्म। साहित्य केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि वाणी और रचना में निहित सत्य का संवाहक भी होता है जो पाठक और श्रोता को सत्य के पक्ष में खड़ा होने के लिए झकझोरता और उत्तेजित करता है। साहित्य के सत्य की तरह पत्रकारिता में भी तथ्यों की सत्यता का परीक्षण उसकी पहली शर्त है। साहित्य और पत्रकारिता की भाषा में अंतर होता है। साहित्य में उसकी समालोचना का हस्तक्षेप आत्मीय और सृजनात्मक होता है जबकि पत्रकारिता की भाषा में आक्रामकता शायद इसलिए होती है क्योंकि संपादक या लेखक व्यवस्था को उद्वेलित करने के उद्देश्य से टिप्पणी करता है।

यूरोप में पुर्नजागरण, पंथसुधार आंदोलन, वैज्ञानिक और औद्योगिक क्रांति ने वहाँ के बौद्धिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक वातावरण में अभूतपूर्व परिवर्तन किया था। लोकतंत्र और मीडिया दोनों का आधुनिक रूप यूरोप की वैज्ञानिक और औद्योगिक क्रांति का उत्पाद है। लोकतंत्र जिसे यूनानी दार्शनिक अरस्तू सबसे लचर राजनीतिक दर्शन मानता था, राजतंत्र के विरुद्ध उसको वैकल्पिक आधार मानकर सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक सिद्धांत घोषित किया गया। 17वीं शताब्दी के आरंभ में अर्थात 1605 से 1665 तक के इतिहास में यूरोप में उतार-चढ़ाव बहुत अधिक हुआ था। रेमंड विलियम्स ने इसको रेखांकित किया है। राजशाही और संसद के बीच टकराव के दौर चार्ल्स युग को महत्वपूर्ण माना गया है। 1688 की क्रांति के बाद चार्ल्स को हटाकर जनता ने विलियम्स और मैरी को गद्दी सौंप दी थी। उसमें मीडिया ने बहुत बड़ी भूमिका निभाई थी। जन आंदोलन की इस सफलता के बाद प्रेस अर्थात् मीडिया की लोकप्रियता बढ़ गई लेकिन जब उसने विशेषाधिकार प्राप्त सांसदों के विरुद्ध लिखना शुरू किया तो सभी मीडिया के विरोधी हो गए। संसद की कार्यवाही छापने पर प्रतिबंध लग गया था। इसी संघर्ष का परिणाम था कि 11 मार्च 1702 को पहला दैनिक समाचार-पत्र 'डेली कोरंट' निकला था। एक ओर जहाँ यूरोप में राजशाही, सामंतशाही और पोप की सत्ता के विरुद्ध संघर्ष चल रहा था दूसरी ओर यूरोप के इन्हीं देशों ने एशिया और अफ्रीका के देशों को गुलाम बनाकर साम्राज्यवाद की स्थापना की। निर्मम हत्याओं और आर्थिक लूट का दौर भी वहाँ चल रहा था। अमेरिका और फ्रांस की क्रांतियों ने लोकतंत्र और मीडिया की सत्ता को स्थापित करने में अग्रणी भूमिका निभाई थी। 18वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में क्रांतियों के दौर तक मीडिया और लोकतंत्र नैतिक आदर्शों से प्रेरित थे। भारतीय

स्वाधीनता आंदोलन के महापुरुषों ने पश्चिमी मीडिया की तकनीक का लोकजागरण में उपयोग अवश्य किया था लेकिन उनके मानक और आदर्श अलग थे। उस दौर में यूरोप की पत्रकारिता औद्योगिक क्रांति के प्रभाव में पेशेवर हो चुकी थी, लेकिन भारत में पत्रकारों और पत्रकारिता ने व्यवसाय का रूप ग्रहण नहीं किया था। स्वाधीनता संग्राम में संघर्षरत सेनानी समाज, साहित्य, संस्कृति, राजनीति और मीडिया के भी आदर्श पुरुष थे। उनका जीवन और आदर्श भारत ही नहीं पूरे विश्व मानवता के दर्शन से अनुप्राणित था। स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद, स्वामी श्रद्धानंद, पं. मदन मोहन मालवीय, लोकमान्य तिलक, विपिनचंद पाल, श्री अरविंद, लाला लाजपत राय, महात्मा गांधी के जीवन और संघर्ष को उनकी समग्रता में ही समझा जा सकता है। ऐसे महापुरुषों ने ब्रिटिश सत्ता और व्यवस्था के विरुद्ध जनप्रतिरोध खड़ा करने में मीडिया के माध्यम से देशव्यापी लोकशिक्षण का काम किया था। इसको किसी एक संगठन या विचारधारा में बाँटकर परिभाषित नहीं किया जा सकता। महात्मा गांधी ने तो ब्रिटिश लोकतंत्र और पश्चिमी मीडिया की कार्यशैली को ही खारिज कर दिया था। उस दौर के महापुरुषों ने पत्रकारिता को लोकशिक्षा, लोकजागरण, स्वदेशी और लोकसंघर्ष के सहारे राष्ट्रीयता की सर्वोत्तम परंपरा की स्थापना के लिए अपनाया था। स्वतंत्रता, स्वाभिमान और आंदोलन निर्भीकता के साथ आत्मसंयम भी पत्रकारिता के लिए आदर्श है। महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है, "समाचार-पत्र एक प्रचंड शक्ति है लेकिन कलम की निरंकुशता, निरंकुश प्रवाह की तरह विनाश की सृष्टि करती है। आंतरिक अंकुश तो आवश्यक है क्योंकि बाहरी अंकुश तो अत्यंत ही विषैला होता है।" भारत में जिन दिनों पत्रकारिता को अभिव्यक्ति की आजादी का समर्थन दिया जा रहा था वहीं उसमें सत्य और नैतिकता का आग्रह भी हो रहा था। यह भारतीय स्वाधीनता संग्राम की विशेषता थी जबकि उन्हीं दिनों पूरी दुनिया में समाचार-पत्र उद्योग का रूप ग्रहण कर चुका था और एकाधिकार की प्रतिस्पर्द्धा में व्यस्त था। दो-दो विश्व युद्धों के कारण छोटे समाचार-पत्र और पत्रिकाओं की संख्या तेजी से घट रही थी। अमेरिका में समाचार-पत्रों की संख्या 15 हजार से घटकर 1749 रह गई थी। मीडिया की भूमिका को लेकर यह बहस लंबे समय से चलती रही है कि इतिहास के लिए आधारभूमि तैयार करने वाली मीडिया को अकूत लाभ कमाने वाले उद्योग और राजनीतिक शक्ति की तरह देखा जाए या सामाजिक सेवा प्रदान करने वाली समर्पित संस्था की श्रेणी में रखा जाए जैसा कि मीडिया दावा कर रही है।

दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात से मीडिया की बदलती भूमिका, उसके विकास में पूँजी और तकनीकी का बढ़ता प्रभाव, वैश्विक राजनीति, सामाजिक और आर्थिक दबाव, कूटनीति और युद्ध की परिस्थितियाँ तथा विभिन्न देशों की सांस्कृतिक विविधता को देखते हुए पूरी दुनिया में संचार विद्वानों के बीच लगातार बहसें चली हैं और आज भी चल रही हैं कि मीडिया लोकतंत्र की पूरक है या अवरोधक? दुनिया के लोकतांत्रिक संविधानों में सिद्धांत रूप से यह स्वीकार किया गया है कि लोकतंत्र की सफलता के लिए मीडिया को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता देना अत्यंत आवश्यक है। लेकिन भारतीय संविधान ने मीडिया को ऐसा कोई विशेषाधिकार नहीं दिया है। यह आम नागरिक के अधिकार का ही एक हिस्सा है। लोकतांत्रिक सहभागिता के लिए अनेक मीडिया सिद्धांत प्रस्तुत किए गए हैं। 1956 में फ्रेड साइबर्ट थियोडोर, पीटरसन और विल्वर श्रैम की मशहूर पुस्तक 'फोर थ्योरीज ऑफ प्रेस' में मीडिया के सामाजिक उत्तरदायित्व और उसकी कार्यप्रणाली के सिद्धांत पर विस्तार से चर्चा की गई। उसके 27 वर्ष बाद 1983 में संचार विद्वान डेनिश मेक्विल ने विकास सिद्धांत और लोकतांत्रिक भागीदारी के सिद्धांत को प्रतिपादित किया था। इस दौरान विश्व में राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सहभागिता की कोशिशें भी होती रहीं और दूसरी ओर अनेक ऐसे देश भी मजबूत होते रहे जहाँ नागरिक और मीडिया की स्वतंत्रता को कठपुतली की तरह राज्य के इशारे पर नचाया जाता रहा। कम्युनिस्ट शासन वाले देशों की मीडिया की पहली और अंतिम मजबूरी है राज्य के फैसलों के साथ-साथ चलना। लेनिन ने जनमत को अपने पक्ष में रखने के लिए मीडिया को सबसे बड़ा हथियार माना था। इस प्रकार सेंसरशिप और प्रीसेंसरशिप की व्यवस्था लागू करके मीडिया को राजनीतिक अधिनायक तंत्र का एक अंग बना दिया गया है। 1947 में ब्रिटेन में गठित 'रॉयल कमीशन' और 'प्रेस काउंसिल' की सिफारिश

और उसी वर्ष अमेरिका की 'हचिस कमीशन' जिसे 'कमीशन ऑन फ्रीडम ऑफ प्रेस' के रूप में जाना गया, में समाज के प्रति मीडिया के उत्तरदायित्व और आचारसंहिता पालन को बड़ी बहस के बाद स्वीकार किया गया। भारत सहित अन्य लोकतांत्रिक देशों ने भी व्यवस्था में इसको महत्वपूर्ण स्थान दिया था। 1980 में संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रसिद्ध संस्था 'यूनेस्को', ने 'मैकब्राइड कमीशन' गठित कर अंतरराष्ट्रीय मीडिया के लोकतंत्रीकरण पर जोर दिया था जिसे कई विकसित देशों ने स्वीकार नहीं किया। विकसित देशों की मीडिया और विकासशील देशों की मीडिया के बीच साधनों के वर्चस्व के साथ-साथ सूचना-साम्राज्यवाद और सांस्कृतिक उपनिवेशवाद स्थापित करने का दौर शुरू हो गया। विचारयुद्ध और एजेंडा सेटिंग के दौर में लोकतांत्रिक सहभागिता और विकेंद्रीकरण जैसे मुद्दे पिछड़ते गए और उपग्रह संचार क्रांति के दौर ने 'पब्लिक एजेंडा', 'पॉलिसी एजेंडा', के साथ-साथ 'मीडिया एजेंडा', का सिद्धांत भी स्थापित कर दिया। लोकहित का एजेंडा आज भी लगातार कमजोर पड़ता और पिछड़ता जा रहा है। इसलिए आज पूरी दुनिया में बहस का सबसे बड़ा मुद्दा है कि आज बदली हुई मीडिया लोकतंत्र की स्थापना में कितनी सहयोगी और उपयोगी है? मीडिया के आर्थिक मॉडल को देखते हुए यह प्रश्न भी पूछा जा रहा है कि क्या अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का सिद्धांत आज की मीडिया में लागू करना संभव है?

भारत के स्वाधीनता आंदोलन में उस दौर की मीडिया ने एक युगांतरकारी भूमिका निभाई थी। राष्ट्रवादी चिंतन, स्वदेशी सोच, और आत्मनिर्भर बनने की कोशिश ने उस दौर के समाचार-पत्रों की ऐतिहासिक भूमिका को इतिहास में अमर कर दिया है। लेकिन स्वाधीन भारत में मीडिया ने पूँजी, तकनीकी और सरकारी संस्थानों की सहायता से गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, स्वास्थ्य जैसे मूल मुद्दों की उपेक्षा करते हुए लगातार अपनी विश्वसनीयता गिराई है। आपातकाल में भारतीय मीडिया का सरकार के सामने आत्मसमर्पण इसी बात का प्रमाण था कि विकास और अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर खड़ी मीडिया अपनी बढ़ती शक्ति और समृद्धि के बावजूद लगातार अलोकतांत्रिक होती रही। भारतीय मीडिया के विकास और इतिहास में 20वीं सदी के अंतिम दो दशक सबसे महत्वपूर्ण माने जाते हैं। जबकि मीडिया ने अघोषित रुप से अपनी व्यवस्था का मॉडल लोकसेवा से बदलकर औद्योगिक कर दिया। विदेशी पूँजी निवेश और इलेक्ट्रॉनिक चैनलों की भरमार के बाद मीडिया ने लगभग अपना उद्देश्य बना लिया कि बाजार में जो कुछ बिकाऊ है उसे खरीदो और जो कुछ बिक सकता है उसे बनाकर बेचो। अघोषित रूप से आज की मीडिया का यही एजेंडा है, इसके लिए राजनीति हो या कॉरपोरेट घराना सबके साथ दोस्ती और लेन-देन का रिश्ता मजबूत करना ही उसकी वास्तविक शक्ति है। मीडिया घरानों ने 'पेड न्यूज' का आर्थिक मॉडल अपना लिया। प्रेस परिषद के नैतिक नियंत्रण में भी इलेक्ट्रॉनिक मीडिया शामिल नहीं है। राजनीति, सरकार और राजनीतिक दलों ने मीडिया को उत्तरदायी बनाने के लिए कोई वैधानिक रास्ता नहीं सुझाया और मीडिया के मालिक आत्ममंथन के लिए घोषित रूप से तैयार लेकिन वास्तविक रूप में अनिच्छुक है। 21वीं सदी की मीडिया तो पूरी तरह वेब पोर्टल और सोशल मीडिया प्लैटफार्मों के नियंत्रण में है। इस दौर में 'पेड न्यूज' के साथ-साथ 'फेक न्यूज', (अफवाहवाजी), 'हेट न्यूज' का चलन भी तेजी से बढ़ा है। इसके लाभार्थी और भुक्तभोगी समय-समय पर बदलते रहते हैं। सरकारें और अदालतें इसको विनियमित करने का साहस नहीं दिखा रही हैं। सबसे ताजा उदाहरण किसान आंदोलन का ही ले लें, इस अफवाह का प्रचार सोशल मीडिया में ही हो रहा है कि नए कृषि कानून लागू होने से न्यूनतम समर्थन मूल्य की व्यवस्था समाप्त हो जाएगी और किसानों की जमीन उनके हाथ से छिन जाएगी। सोशल मीडिया पर ये प्रचार भ्रम फैलाने और सरकार को झुकाने के लिए ही किया जा रहा है।

भारतीय मीडिया सहित आज की वैश्विक मीडिया पर भी कई गंभीर आरोप है। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी की समृद्ध मीडिया की परंपराओं की वापसी की तो कल्पना भी असंभव लगती है क्योंकि 21वीं सदी की मीडिया विशेषकर सोशल मीडिया, निरंकुश होकर कॉरपोरेट मीडिया बनकर समाज, सत्ता, राजनीति और अर्थव्यवस्था को डराने वाला हस्तक्षेप करने लगी है। उसके स्वामित्व का स्वरूप बदल गया है। उसके उद्योग-व्यापार का ढाँचा भी बदल गया है। समाचार पत्र पर अपनी बिक्री अथवा चैनलों पर अपनी टीआरपी बढ़ाकर पैसा कमाने का आरोप नहीं है।

उस पर अपने दर्शकों की रुचियों, प्रवृत्तियों के आँकड़े जुटाने और बेचने जैसे गंभीर आरोप हैं। किसी समाचार पत्र का संपादक, चैनलों में कार्यरत मीडियाकर्मी या राष्ट्रीय विकास का कोई नारा सामंजस्य बिठाने में सफल नहीं हो रहा है। लोकप्रिय राष्ट्रपति पूर्व एपीजे अब्दुल कलाम ने 2006 में 'मिशन फॉर मीडिया' का स्वप्न देखा था। उनकी कल्पना थी कि 2020 तक मीडिया राष्ट्रीय विकास की प्रक्रिया का भागीदार बनकर जटिल राष्ट्रीय मुद्दों पर देशव्यापी बहस चलाकर समाधान उपलब्ध करायगी। पूरा देश जानता है कि मीडिया ने उनका यह स्वप्न कितना पूरा किया है। इलेक्ट्रानिक और सोशल मीडिया के आत्मनियमन का आश्वासन भी निराश कर रहा है। इस बीच 'वैकल्पिक पत्रकारिता', 'नागरिक पत्रकारिता', जैसे अनेक प्रयोग भी हो चुके हैं। नागरिक पत्रकारिता भी मीडिया की मुख्यधारा को यह समझाने में सफल नहीं हो सकी है कि उसकी वास्तविक शक्ति सत्ता संस्थानों में नहीं उसके पाठकों और दर्शकों से है। गिरती हुई विश्वसनीयता भी उन्हें रोकने में सक्षम नहीं दिखाई देती। राजनीतिक दलों, बड़े कारपोरेट घरानों, सत्ता संस्थानों के आचरण में सत्य और नैतिकता का तत्व निरंतर घटता जा रहा है। मैकब्राइड आयोग ने गंभीरता से इस खतरे का संज्ञान लिया था। सूचना और संचार को एक राजनीतिक हथियार स्वीकार करते हुए इनके अभिन्न रिश्तों की व्याख्या की थी। संचार और सत्ता तथा संचार तथा स्वतंत्रता के बीच के संबंध कैसे होने चाहिए इसकी चर्चा भी आयोग ने अपनी रिपोर्ट में की थी।

इसका सीधा असर मीडिया के संचालकों पर भी पड़ रहा है। इलेक्ट्रानिक चैनलों के विस्तार और सोशल मीडिया के फैलाव ने अभिव्यक्ति की अनियंत्रित स्वाधीनता को बल दिया है। उसके आकर्षण और सम्मोहन ने जहाँ उसे अधिक प्रभावोत्पादक बनाया है, वहीं उससे पैदा होने वाले नकारात्मक सोच को भी लगातार बढाया है। जहाँ एक ओर राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक मुद्दों को जगाने का आभास दिया है वहीं बाजारवादी संस्कृति और मूल्यों को भी महत्वाकांक्षाओं के रूप में जगाया है। क्या कोई नई मीडिया काउंसिल, तीसरा प्रेस कमीशन या स्वनियमन की कोशिश आज की मीडिया के स्वामित्व के स्वरूप में कोई गुणात्मक और लोकतांत्रिक सुधार लाने में सक्षम होगी? यही शायद आज का सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न और चुनौती भी है?

'मंथन' जैसी प्रतिष्ठित शोध पत्रिका ने दो विशेष अंकों में मीडिया केंद्रित विषयों पर विस्तार से पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। मीडिया जो लोकतंत्र, लोकहित और लोकअपेक्षाओं की प्राणवायु है स्वयं अपनी जीवन रक्षा के खतरों से जूझ रही है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता मौलिक मानवाधिकार बनकर लोकतंत्र की सबसे कीमती उपलब्धि बन चुकी है। जो आज चुनौतियों से घिर गई है। उसकी गाड़ी को पटरी पर लाने के लिए पाठकों, दर्शकों और नागरिकों का सार्थक लेकिन आवश्यक हस्तक्षेप जरूरी है।

अच्युतानन्द मिश्र

अच्युतानन्द मिश्र

सा वार्ता या विभूतये

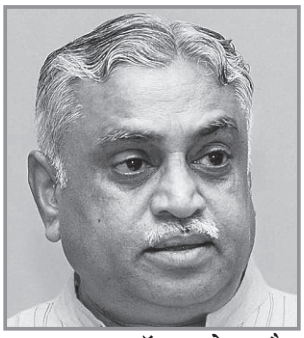

डॉ. मनमोहन वैद्य

भारतीय और पाश्चात्य जीवनदृष्टि में कुछ मूलभूत अंतर हैं। ठीक उसी तरह समाचार के प्रति दोनों की दृष्टि भी भिन्न है। भारतीय समाचार संस्थान भारतीय दृष्टि के निकष पर कितने खरे उतरते हैं, एक आत्मनिरीक्षण

"मंथन" - मीडिया विशेषांक के लिए 'समाचार - भारतीय एवं पाश्चात्य अवधारणा' विषय पर लिखने के लिए मुझे कहा गया है। वर्तमान मीडिया में झूठी खबर (फेक न्यूज), एजेंडा पत्रकारिता, स्पर्धात्मक समाचार संकलन के नाम पर गिद्ध मनोवृत्ति और मीडिया ट्रायल जैसी बातें भी जुड़ी हुई दिखती हैं। ऐसा लगता है जैसे इनमें से अधिकतर, समाचार की भारतीय दृष्टि के अभाव में या पाश्चात्य दृष्टि के प्रभाव के कारण हैं। इनसे छुटकारा पाना समाचार जगत के सामने एक चुनौती है।

समाचार की पाश्चात्य दृष्टि के बारे में मैं अधिक नहीं जानता हूँ। पर जीवन की भारतीय और अभारतीय दृष्टि ही समाचार तथा मीडिया की दृष्टि को अलग-अलग रूप देती होगी। दोनों जीवन दृष्टि में मूलभूत अंतर है जो सुप्रसिद्ध अमरीकी परमाणु वैज्ञानिक फ्रित्योफ काप्रा ने इन शब्दों में कहा है। वे कहते हैं-

"वह अवधारणा जो अभी धुँधली पड़ती दिख रही है, पिछली कुछ शतब्दियों से हमारी संस्कृति पर उसी का प्रभाव है। इस दौरान इसी ने हमारे पश्चिमी समाज को आकार दिया और साथ ही शेष विश्व को उल्लेखनीय रूप से प्रभावित किया है। इस पूरे परिप्रेक्ष्य पर कई विचार और मूल्य आरोपित हैं। इन्हीं से एक वह है जो सृष्टि को एक ऐसी यांत्रिक व्यवस्था के रूप में देखता है जो कई साधारण टुकड़ों से मिलकर बना है। वह मानव शरीर को भी एक मशीन के रूप में देखता है, समाज में जीवन को अस्तित्व के लिए एक प्रतिस्पर्धामूलक संघर्ष के रूप में देखता है। वह असीमित भौतिक, आर्थिक एवं प्रौद्योगिकीय विकास में विश्वास करता है। अंतिम और बेहद महत्वपूर्ण बात यह विश्वास कि एक ऐसा समाज जहाँ स्त्री हर जगह पुरुष के अधीन ही समझी जाती है, वह केवल प्रकृति के मूलभूत नियम को मानता है। इन सभी मान्यताओं को हाल की घटनाओं ने चुनौतियाँ दी हैं। और इसीलिए वस्तुतः इन सभी में एक क्रांतिकारी संशोधन घटित हो रहा है।

नई अवधारणा को एक समग्र विश्वदृष्टि की संज्ञा दी जा सकती है, यह दुनिया को पुर्जों के असंपृक्त संकलन के बजाय एक अविभाज्य समष्टि के रूप में देखता है। यदि 'पारस्थैतिक' शब्द का प्रयोग प्रचलित अर्थ से अधिक व्यापक तथा गहरे अर्थ में किया जा सके तो इसे एक पारस्थैतिक दृष्टि भी कहा जा सकता है। गहरी पारस्थैतिक चेतना संपूर्ण अस्तित्व की ही मौलिक पारस्परिक निर्भरता के साथ इस सत्य को भी स्वीकार करती है कि व्यक्तियों एवं समाजों के रूप में हम सभी प्रकृति की चक्रीय प्रक्रिया के अंतर्गत ही अंतःस्थापित (और अंततः निर्भर भी) हैं। अंततः, गहरी पारस्थैतिक चेतना आध्यात्मिक या धार्मिक चेतना ही है। मानव चेतना की अवधारणा को जब चेतना के ऐसे माध्यम के रूप में समझा गया जिसमें व्यक्ति सृष्टि के साथ एक समग्र के रूप में संबद्धता या संपृक्तता के बोध को अनुभव करता है, तब यह बात और भी स्पष्ट हो गई कि पारस्थैतिक चेतना अपने गहनतम केंद्र में वस्तुतः आध्यात्मिक ही है। इसीलिए यह आश्चर्यजनक नहीं है कि गहरी पारस्थैतिक चेतना पर आधारित यथार्थ की नई दृष्टि आध्यात्मिक परंपराओं से तथाकथित चिरंतन दर्शन के साथ सुसंगतिपूर्ण है।"[1]

फ्रित्योफ कापरा ने जिन नई अवधारणाओं की बात की है वह प्रकारांतर से भारतीय जीवन दृष्टि ही है।

समाचार की पाश्चात्य अवधारणा से तो सभी

भली-भाँति परिचित हैं। इसलिए मैं भारतीय अवधारणा पर ही बात करूँगा। समाचार की भारतीय अवधारणा के मूल में भारतीय जीवन दृष्टि है। उसे और उसकी विशेषताओं को समझेंगे तो समाचार की भारतीय अवधारणा को समझना आसान होगा।

भारतीय जीवनदृष्टि की विशेषता यह है कि उसका आधार आध्यात्मिकता है। इसीलिए वह एकात्म और सर्वांगीण है। तभी वह संपूर्ण सृष्टि को परस्पर जुड़ा हुआ और परस्परावलंबी देखती है। इस कारण भारत का माने भारतीय समाज का एक विशिष्ट व्यक्तित्व तैयार हुआ। इस व्यक्तित्व की चार प्रमुख विशेषताएँ हैं। पहली कि हम मानते हैं - एकं सत विप्राः बहुधा वदंति - अर्थात् सत्य एक है, विद्वान् उसे अनेक नामों से पुकारते हैं, उसे जानने के विभिन्न मार्ग हो सकते हैं और वे सभी समान है। दूसरी कि एक ही चौतन्य अनेकविध रूपों में अभिव्यक्त हुआ है।[2] इसलिए ऊपरी दिखने वाली विविधता के मूल में रही एकता को देखने की, अनुभूत करने की दृष्टि भारत की है। तीसरी विशेषता, जिसका सम्बन्ध इस विषय से है, वह है कि प्रत्येक व्यक्ति में दिव्यत्व विद्यमान है। मनुष्य जीवन का लक्ष्य ही इस दिव्यत्व को अनेकविध मार्गों से प्रकट करते हुए मुक्त होना है। अब चाहे यह कार्य के द्वारा हो, या पूजा-अर्चना के द्वारा, या फिर मानसिक नियंत्रण या ध्यान के द्वारा या फिर इन चारों इनके अलावा किसी और माध्यम से। यह मोक्ष या मुक्त होना ही जीवन का अंतिम लक्ष्य होने के कारण भारत में सभी क्रिया-कलापों का लक्ष्य मुक्त होने की दिशा में आगे बढ़ना ही है। इसलिए विद्या के लिए कहा है "सा विद्या या विमुक्तये" या कला के बारे में कहा है कि "सा कला या विमुक्तये," आदि।

यह मुक्त होना माने क्या है? जिस चौतन्य का अंश मैं हूँ उस चराचर में व्याप्त चौतन्य से एकरूप हो जाने की क्रमशः सीढियाँ हैं. आँखें खोलो और "मैं" को छोटा करने का प्रयत्न करो। "मैं" छोटा होने से "हम" का परिघ विस्तृत होता जाता है। मैं, मेरा कुटुंब, मेरा परिवार, मेरा आस-पड़ौस, समाज, ग्राम, जिला, राज्य, देश, संपूर्ण मानवता, मानवेतर सृष्टि, संपूर्ण चराचर के साथ वह तादात्म्य का अनुभव करने लगती है। मेरा अलग अस्तित्व होते हुए भी उसका अहसास समाप्त होता है। इसीलिए संत तुकाराम महाराज कहते हैं- "वृक्ष-वल्ली अम्हा सोयरे वनचरे" (वृक्ष-वेली, वनचर सभी मेरे सगे रिश्तेदार हैं)।[3] फिर जो अपने लगते हैं उनके लिए संवेदना जागृत होकर कुछ ना कुछ करने का मन स्वाभाविक ही होता है। यह अपनेपन के भाव से (जो अपने नहीं हैं) उनके लिए करना, देना इसी को धर्म कहा है। यह 'धर्म' अंग्रेजी का 'रिलीजन' नहीं है। उसे (रिलीजन को) हम उपासना, या मजहब कह सकते हैं। यह 'धर्म' किसी से भी भेद-भाव नहीं करता है। 'धर्म' वह है जो सबको जोड़ता है, सब को एकजुट करके बाँधता है, सबको साथ रखता है, सबकी धारणा करता है। अपनेपन के भाव से समाज के लिए कुछ करना या समाज को देना इसी को धर्म कहा गया है।

विवेकानंद शिष्या भगिनी निवेदिता ने कहा है - जिस समाज में लोग अपने परिश्रम का पारिश्रमिक केवल अपने ही पास न रखकर समाज को देते हैं, उस समाज के पास एकत्रित ऐसी सामाजिक पूँजी के आधार पर समाज संपन्न-समृद्ध बनता है। और जब समाज संपन्न-समृद्ध बनता है तब समाज का हर व्यक्ति संपन्न और समृद्ध बनता है। परंतु जिस समाज में व्यक्ति अपने परिश्रम का पारिश्रमिक समाज को न देकर अपने ही पास रखता है उस समाज में कुछ व्यक्ति तो संपन्न होते हैं पर समाज दरिद्र ही रहता है। अपना धन, श्रम या समय इसमें से कुछ भी या सभी देने से सामाजिक पूँजी समृद्ध होती है। इसीलिए कहा है कि धर्म करने से, धर्म का आचरण करने से, धर्म समृद्ध होता है और वह सबके योगक्षेम की व्यवस्था करता है। धर्म की रक्षा होने से धर्म सबकी रक्षा करता है। कारण धर्म किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं रखता है, न ही करता है। "धर्मो रक्षति रक्षितः।"

भारत की एक और विशेषता है कि भारत में राज्य कभी सर्वोपरि नहीं रहा। कल्याणकारी राज्य भारत की परंपरा कभी नहीं रही। समाज के कुछ ही महत्व के विषय राज्य के अधीन होते थे, बाकी बहुतांश विषयों के लिए समाज की राज्य से स्वतंत्र अपनी व्यवस्थाएँ होती थी। यही बात गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने 'स्वदेशी समाज' निबंध में कही है। वे कहते हैं कि वह समाज जो अपनी आवश्यकताओं के लिए राज्य पर कम से कम अवलंबित होता है वह 'स्वदेशी समाज' है। इसलिए धर्म करने से समाज की पूँजी समृद्ध होती है। इस सामाजिक पूँजी के आधार पर समाज अपनी व्यवस्थाएँ राज्य से स्वतंत्र रहकर चला सकता है। 'धर्म' के द्वारा प्राप्त पूँजी के आधार पर समाज की अधिकतर व्यवस्थाएँ चलती हैं। इस अर्थ से हमारा समाज धर्माधिष्ठित या धर्माधारित था, है।

अभी सारी दुनिया कोरोना वायरस के संकट से जूझ रही है। पर भारत की कोरोना के विरुद्ध लड़ाई, दुनिया के अनेक देशों की लड़ाई से अलग है, विशेष है। दुनिया के अधिकतर देशों में राजसत्ता सर्वोपरि है। समाज की सारी व्यवस्थाएं राज्य पर आधारित होती हैं। इसीलिए उसे कल्याणकारी राज्य की संज्ञा प्राप्त है। ऐसी विपत्ति में राज्य व्यवस्था, प्रशासन तत्परता से सक्रिय भी होता है और लोग भी शासकीय व्यवस्था के सक्रिय होने की प्रतीक्षा करते हैं। भारत का चित्र इससे अलग है। भारत की परंपरा में समाज का एक स्वतंत्र अस्तित्व है, ताना-बाना है। उसकी अपनी कुछ व्यवस्थाएँ

विवेकानंद शिष्या भगिनी निवेदिता ने कहा है - जिस समाज में लोग अपने परिश्रम का पारिश्रमिक केवल अपने ही पास न रखकर समाज को देते हैं, उस समाज के पास एकत्रित ऐसी सामाजिक पूँजी के आधार पर समाज संपन्न-समृद्ध बनता है। और जब समाज संपन्न-समृद्ध बनता है तब समाज का हर व्यक्ति संपन्न और समृद्ध बनता है। परंतु जिस समाज में व्यक्ति अपने परिश्रम का पारिश्रमिक समाज को न देकर अपने ही पास रखता है उस समाज में कुछ व्यक्ति तो संपन्न होते हैं पर समाज दरिद्र ही रहता है

हैं। इन सबसे मिलकर 'हम' बने हैं।

पहले 'हम' अंग्रेजों के गुलाम थे। 15 अगस्त 1947 को 'हम' स्वतंत्र हुए। 26 जनवरी 1950 से 'हम' ने अपना यह संविधान स्वीकार किया। स्वतंत्रता के पहले, स्वतंत्र होने वाले, संविधान का स्वीकार करने वाले इस 'हम' का सातत्य हमारी असली पहचान है। यहाँ आक्रमण हुए, राजा पराजित हुए, परकीय शासन रहा। पर यह 'हम' कभी पराजित नहीं हुआ।

यह 'हम' यानी यहाँ का समाज यानी हमारा राष्ट्र है। यह पश्चिम के 'नेशन स्टेट' से भिन्न है, इसे समझना होगा। पूर्व राष्ट्रपति डॉ. प्रणव मुखर्जी जब संघ स्वयंसेवकों को संबोधित करने के लिए नागपुर पधारे तब अपने वक्तव्य में उन्होंने यही बात अधोरेखित की थी। उन्होंने कहा, "पश्चिम की राज्याधारित राष्ट्र की संकल्पना और भारतीय जीवन दृष्टि आधारित राष्ट्र की भारतीय संकल्पना भिन्न हैं।" इसीलिए भारत में किसी भी मानवनिर्मित या प्राकृतिक आपदा के समय प्रशासन के साथ, समाज भी राहत और पुनर्स्थापन के कार्य में सक्रिय दिखता है।

कोरोना वायरस के इस अभूतपूर्व संकट के समय प्रशासनिक व्यवस्था के प्रतिनिधि सुरक्षाकर्मी, डॉक्टर, नर्स, अन्य वैद्यकीय सहायक, सफाई कर्मचारी आदि सभी ने जी-जान से अपना कर्तव्य निभाया। यह करते समय इस संक्रमणशील बीमारी के संक्रमण की संभावना को जानते हुए भी वे निष्ठापूर्वक अपना कार्य करते रहे। कई लोग संक्रमित भी हुए, कुछ की जानें भी इस मोर्चे पर गईं। इसलिए उन्हें 'कोरोना-योद्धा' का संबोधन देना सार्थक ही है।

पर, इन शासकीय और अर्ध-शासकीय कर्मचारियों के साथ-साथ समाज का बहुत बड़ा वर्ग अपने प्राण संकट में डालकर भी संपूर्ण देश में, पहले दिन से आज तक सतत सक्रिय रहा है। वैसे यह उनके दायित्व का भाग नहीं है, ना ही उन्हें इसके बदले मे कुछ पाने (returns) की अपेक्षा है, फिर भी "अपने समाज की संकट के समय सहायता करना मेरा दायित्व है," इस सामाजिक दायित्वबोध से, अपनत्व के भाव से प्रेरित हो कर वह कार्य करता आया है। यही 'वयं राष्ट्रांगभूता' का भाव है। बाढ़, भूकंप जैसी प्राकृतिक आपदा के समय

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के 4 लाख 80 हजार स्वयंसेवकों ने अरुणाचल प्रदेश से लेकर कश्मीर और कन्याकुमारी तक 85701 स्थानों पर सेवा भारती के माध्यम से करोड़ों परिवारों को राशन के किट पहुँचाना, भोजन के करोड़ों पैकेट्स का जरूरतमंदों को वितरण करना, लाखों मास्क का वितरण, 40 हजार से अधिक यूनिट्स रक्तदान, लाखों प्रवासी मजदूरों की सहायता के साथ-साथ घुमंतू जनजाति, किन्नर, देह व्यापार करने वाले, धार्मिक स्थानों पर परिक्रमावासियों पर निर्भर बंदर आदि पशु-पक्षी, गौ वंश, इन सभी की सहायता की है

राहत कार्य और इस संक्रमणशील बीमारी के समय, स्वयं संक्रमित होने की सम्भावना को जानते हुए भी, सक्रिय होना इनमें अंतर है। समाज का यह सक्रिय सहभाग संपूर्ण देश में समान रहा है। यह जागृत, सक्रिय राष्ट्रशक्ति का परिचायक है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के 4 लाख 80 हजार स्वयंसेवकों ने अरुणाचल प्रदेश से लेकर कश्मीर और कन्याकुमारी तक 85701 स्थानों पर सेवा भारती के माध्यम से करोड़ों परिवारों को राशन के किट पहुँचाना, भोजन के करोड़ों पैकेट्स का जरूरतमंदों को वितरण करना, लाखों मास्क का वितरण, 40 हजार से अधिक यूनिट्स रक्तदान, लाखों प्रवासी मजदूरों की सहायता के साथ-साथ घुमंतू जनजाति, किन्नर, देह व्यापार करने वाले, धार्मिक स्थानों पर परिक्रमावासियों पर निर्भर बंदर आदि पशु-पक्षी, गौ वंश, इन सभी की सहायता की है। अनेक स्थानों पर संक्रमित बस्तियों में जाकर स्वयंसेवकों ने सहायता की है। किसी भी दल की सरकार हो, सभी राज्यों में जहाँ भी प्रशासन ने जो सहायता माँगी उसकी पूर्ति स्वयंसेवकों ने की है। जमाव नियोजन, स्थानांतर करने वाले श्रमिकों के नाम दर्ज करना ऐसे असंख्य कार्य प्रशासन के आह्वान पर जगह-जगह स्वयंसेवकों ने किए हैं।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि जनकल्याण को समर्पित ऐसे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के बारे में केवल एक विशिष्ट विचारधारा का चश्मा चढ़ाकर पूर्णत: असत्य और निराधार कथनों पर आधारित एक नैरेटिव खड़ा करने के सतत प्रयास चलते दिखते हैं। इसी संदर्भ में एक घटना का स्मरण होता है।

एक बार आंध्र के विजयवाड़ा में कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में एक कम्युनिस्ट नेता की कम्युनिस्ट पुत्री ने ऐसा वक्तव्य दिया कि आर. एस. एस. नाथूराम गोडसे की जन्मशती मनाने वाला है। जिसका दक्षिण भारत में अधिक प्रसार है, ऐसे एक अंग्रेजी अख़बार में यह समाचार तीन कॉलम में दिया गया। अब यह सामान्य नैतिकता है कि उस कम्युनिस्ट नेता को संघ के किसी भी कार्यक्रम की घोषणा करने का अधिकार नहीं है। और यदि उसने ऐसा कहा तो उस संवाददाता का यह पत्रकार-धर्म (यदि वामपंथी 'धर्म' में विश्वास रखते हैं!) है कि वह संघ के किसी अधिकृत व्यक्ति द्वारा उसका सत्यापन करे। परंतु ऐसा हुआ नहीं। संघ के लोगों के प्रेस काउंसिल में उस वक्तव्य को चुनौती देने पर उस पत्रिका को प्रेस काउंसिल के कहने पर संघ का वक्तव्य प्रकाशित करना पड़ा।

ऐसी घटनाओं के बावजूद समाज में एक नित्यसिद्धशक्ति खड़ी हो, जो किसी भी आपदा का सामना कर सके, इसके लिए संघ समाज में सतत कार्यरत है।

केवल संघ ही नहीं, अनेक सामाजिक, धार्मिक संस्था, मठ, मंदिर गुरुद्वारा इन सभी ने स्थान-स्थान पर कोरोना से संघर्ष के इस सामाजिक यज्ञ में अपना सहभाग दिया है। यह, शासकीय व्यवस्था के अलावा, समाज की अपनी व्यवस्था है। ऐसा केवल भारत में हुआ हैद्य भारत के बाहर जिन इने-गिने देशों में कोरोना के समय समाज की सहायता के लिए सामाजिक सक्रियता दिखी है वहाँ भी ऐसा करने वाले वहाँ जाकर बसे भारतीय ही हैं।

यही भारत की विशेषता है, यही भारतीय जीवनदृष्टि है। यह सब 'वयं राष्ट्रांगभूता' के

भाव-जागरण के कारण ही संभव है। इस भाव जागरण के कारण ही विविध भाषा बोलने वाला, अनेक जातियों के नाम से जाना जाने वाला, विविध देवताओं की उपासना करने वाला संपूर्ण भारत में रहने वाला यह समाज यानी 'हम' एक हैं, प्राचीनकाल से एक हैं यह भाव जगता है। मैं इस विराट 'हम' का एक अंगभूत घटक हूँ, यह भाव ही स्वयं को संकट में डालकर भी, किसी प्रसिद्धि या अन्य प्रतिफल (returns) की अपेक्षा बिना समाज के लिए सक्रिय होने की प्रेरणा देता है। किसी भी जाति का, भारत के किसी भी राज्य में रहने वाला, पढ़ा, अनपढ़, धनवान, धनहीन, ग्रामीण, शहरी, वनांचल में या नगरों में रहने वाला यह सारा समाज मेरा अपना है ऐसा भाव जगाना माने 'राष्ट्र' जागरण करना है। मैं, मेरा कुटुंब, परिवार, आस-पड़ौस, गाँव, जनपद, राज्य, देश, समूचा विश्व, संपूर्ण चराचर सृष्टि ये सभी मेरी चेतना के क्रमशः विस्तृत और विकसित होने वाले दायरे हैं। इनमें संघर्ष नहीं, ये परस्पर पूरक हैं, इनमें समन्वय साध ने का मेरा प्रयास होना चाहिए। यही भारत का सनातन अध्यात्म-आधारित एकात्म और सर्वांगीण चिंतन रहा है। इसी चिंतन ने भारत को दुनिया में हजारों वर्षों से एक विशिष्ट पहचान दी है। इसी कारण 'हम' सब इसकी अलग-अलग इकाइयों से जुड़कर अपनत्व की परिधि को विस्तारित करते रहते हैं। यही 'अपनत्व' ऐसे संकट काल के समय स्वाभाविक सक्रिय होने की प्रेरणा देता है। इसी के कारण जो समाज का ताना-बाना बुना जाता है, इससे समाज गढ़ा जाता है।

किंतु कई बार यह देखने में आता है कि समाज गढ़ने की इस भावना की समझ तथा संवेदना के अभाव के कारण, घटनाओं को, विभेदकारी दृष्टि से, समाचार के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

एक बार एक प्रमुख अंग्रेजी समाचार पत्र में यह समाचार आया कि हरियाणा के किसी गाँव में होली के कार्यक्रम में दलित समाज के व्यक्तियों को शामिल होने से मना कर दिया। मैंने हरियाणा के प्रांत प्रचार प्रमुख से तथ्य जानने के लिए कहा तब उन्होंने बताया कि संपूर्ण गाँव होली के कार्यक्रम में सम्मिलित हुआ था। केवल 4-5 युवक जो दारू पीकर हुड़दंग मचा रहे थे, उन्हें

साभार : https://www.scotbuzz.org/2017/12/samachar.html

मना किया गया। वे युवक अनुसूचित जाति के थे। पर उस जाति के अन्य सभी होली कार्यक्रम में सहभागी थे। जिन्हें मना किया था, वह इसलिए नहीं कि वे किसी विशिष्ट जाति के थे बल्कि इसलिए कि वे दारू पीकर हुड़दंग मचा रहे थे। फिर गाँव के सरपंच द्वारा इसका स्पष्टीकरण जारी किया गया. मेरा यह कहना नहीं है कि जाति के आधार पर ऐसा भेदभाव कहीं होता ही नहीं होगा। दुर्दैव से कहीं ऐसा होता भी होगा। उसका विरोध भी होना चाहिए। पर यहाँ ऐसा नहीं था। उस संवाददाता ने सत्यापन किया होता तो यह जातिगत दुर्भावना निर्माण करने वाला गलत समाचार नहीं जाता।

ऐसी प्रस्तुति के कारण न केवल समाज गढ़ने की प्रक्रिया बाधित होती है, अपितु पत्रकारिता धर्म का भी ह्रास होता है। समाज गढ़ने का यह काम तात्कालिक नहीं होता है, ना ही वह अपने आप होता है। सचेतन और दीर्घकाल के सतत और सहज प्रयास के परिणामस्वरूप यह समाज गढ़ने का कार्य होता है। पीढ़ियाँ लग जाती हैं, तब यह संभव होता है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को ही ले लीजिए जिसका निर्माण ही इस संपूर्ण समाज में एकत्व का भाव जगाकर उसे एक सूत्र में गूँथकर गढ़ने का है। आज जो संघ कार्य का व्यापक विस्तार, प्रभाव और संगठित शक्ति का अनुभव सब कर रहे हैं, उसमें संघ के कार्यकर्ताओं की पाँच पीढ़ियाँ खप गई हैं। हजारों की संख्या में, एक ही कार्य को 'मिशन' मानकर, लोगों ने सारा जीवन गला डाला है। अनेकों युवकों के जीवन का 'कपूर' हो गया है, तब यह परिणाम दिखता है। केवल संघ ही नहीं, असंख्य सामाजिक-धार्मिक संस्थाएँ, शिक्षक, व्यापारी या विभिन्न व्यवसाय करने वाले नागरिक, विशेषतः असंख्य गृहणियाँ इस 'राष्ट्र जागरण' में बहुत मौलिक योगदान सतत कर रहे हैं। संघ के कारण इसकी देशव्यापी संगठित शक्ति का दर्शन होता है केवल इतना ही अंतर है।

केवल मीडिया ही नहीं, समाज के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने वाले प्रत्येक व्यक्ति, संस्था तथा संगठन ने 'मैं भी इसी समाज का अभिन्न अंग हूँ' यह भाव सतत जागृत रखते हुए अपने सारे क्रियाकलाप नियोजित

करने चाहिए। जीवन में स्पर्धा अवश्य है। पर केवल स्पर्धा ही नहीं हैं। दीर्घकाल तक चलने वाला यह समाज, उसका ताना-बाना, राज्य से स्वतंत्र उसका अस्तित्व, इसके लिए आवश्यक समन्वय-सहकार-सहयोग यह बना रहे इसकी परिधि का ध्यान रखते हुए, इस परिधि में रहकर अपना काम करने की सतर्कता, सजगता रखनी चाहिए। स्पर्धा में, मेरे स्वार्थवश यह ताना-बाना, जिसे बनने में अनेक वर्ष और अनेक पीढ़ियाँ लगी हैं, वह उधड़ न जाए, इसका भी ध्यान रखना आवश्यक है। इस समाज से मेरा कोई लेना-देना नहीं, मुझे तो मेरा मुनाफा-लाभ ही देखना है, यह भारतीय दृष्टि नहीं है। मैं भी इस राष्ट्र का अंगभूत घटक हूँ, यह बात केंद्र में रखकर ही अपने कार्य की योजना करनी चाहिए।

मैं जब 1992 में अमरीका पहुँचा ही था तब की एक घटना मुझे याद है। उन दिनों एक वस्त्र निर्माता ने अलग अलग रिवॉल्वर के चित्र के साथ GUN शब्द लिखे हुए टी-शर्ट तैयार किए जो अमेरिकन किशोरों के बीच बहुत लोकप्रिय हुए। उस व्यापारी ने भी खूब मुनाफा कमाया। बाद में जब अभिभावकों के ध्यान में आया कि इसके कारण किशोर हिंसा के लिए प्रवृत्त हो रहे हैं तो उन्होंने पहले उन टी-शर्ट्स को बाजार से वापिस लेने के लिए आंदोलन चलाया। अंत में जब उस निर्माता के सभी उत्पादन का बहिष्कार करने की बात चली तब उसने इन GUN टी-शर्ट्स को मार्केट से वापिस लिया। जब पत्रकारों ने उस निर्माता से पूछा, "इन टी-शर्ट्स से समाज के युवाओं के मन पर विपरीत परिणाम हो रहा था तो आपने उन्हें पहले ही वापिस क्यों नहीं लिया?" तब उसने उत्तर दिया "लुक, आय एम हीअर इन द बिजनेस ऑफ मेकिंग मनी, एंड नॉट इन द बिजनेस ऑफ मॉरेलिटी"। यानी यह समाज मेरा अपना है या यह मेरे लिए केवल एक संसाधन है, ऐसे दो दृष्टिकोण हो सकते हैं।[4]

लॉकडाउन के कारण अर्थतंत्र का पहिया भी रुक गया। अचानक आई इस आपदा की व्यापकता के कारण अनेक अकल्पनीय समस्याएँ और चुनौतियाँ भी सामने आई। उन सारी समस्याओं से निपटने के आयोजन या प्रयास में कुछ कमियाँ भी सामने आई। उनके परिणाम भी सामान्य, निरीह, बेबस लोगों को झेलने पड़े। यह दु:खद है। इन घटनाओं को लेकर सार्वजनिक जीवन में, मीडिया में बहस छिड़ना, उसकी चर्चा होना स्वाभाविक है। यह भी लोकतंत्र का हिस्सा ही है। परंतु कुछ लोग, नेता, पत्रकार, लेखक इस बहस के चलते समय "हम भी इस समाज के अंग हैं," यह भाव भूल जाते हैं। किसी घटना को बढ़ा-चढ़ाकर चित्रित करने से समाज के आत्मविश्वास, असंख्य कर्मचारी, अधिकारी, सामाजिक संस्थाओं के कार्यकर्ताओं की लगन, उनके परिश्रम पर प्रश्नचिन्ह खड़े हो सकते हैं। जो गलत है, वह गलत ही है। उसकी जवाबदेही तय करते समय सारा कुछ गलत ही हो रहा है, ऐसी छवि न निर्माण हो, इसका ध्यान, 'वयं राष्ट्रांग भूता' होने के नाते हम सभी को रखना होगा।

संक्रमणशील बीमारी, भीड़ के कारण संक्रमण अधिक फैलने का डर और घर को जाने के लिए बूढ़ों-बच्चों-परिवार समेत निकल पड़े श्रमिक इनकी व्यवस्था करना आसान नहीं था। जो व्यवस्थाएँ इस हेतु बनाई गई थीं, कहीं वे अपर्याप्त थीं तो कहीं व्यवस्था में रहने का अभ्यास और धैर्य न होने के कारण कई लोगों को बहुत कष्ट हुआ। उनके चित्र देखकर और उनके दर्द सुनकर दिल काँप उठता था। उस पर मीडिया में खूब बहस भी चली। सत्तापक्ष और विपक्ष ने एक दूसरे पर आरोप लगाए। परंतु इसी कालखंड में शासकीय व्यवस्था और सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से 50 लाख से अधिक श्रमिक बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, झारखंड, उड़ीसा आदि प्रदेशों में अपने-अपने गाँव पहुँच चुके हैं, यह भी साथ-साथ बताना चाहिए था।(यह जानकारी 20 मई तक की है।) मध्य प्रदेश में उत्तर प्रदेश और बिहार जाने के लिए महाराष्ट्र और गुजरात से आए 4 लाख पैदल जाने वाले श्रमिकों को स्वयंसेवकों ने प्रशासन की सहायता से उत्तर प्रदेश की सीमा तक वाहनों द्वारा छोड़ा। वहाँ से उत्तर प्रदेश प्रशासन ने स्वयंसेवकों की सहायता से उन्हें अपने-अपने गाँव या बिहार की सीमा तक पहुँचाने के लिए वाहन-व्यवस्था की। प्रत्येक की जाँच करना, भोजन व्यवस्था और शारीरिक दूरी बनाने के आग्रह के साथ 50 लाख श्रमिकों को अपने गाँव तक पहुँचाना, वहाँ भी उनके आइसोलेशन की व्यवस्था करना, यह सब हुआ है। यह भी मीडिया में, मीडिया की बहस में दिखाना चाहिए।

इसी तरह यदि कहीं हिंसा, अत्याचार, शोषण, अन्याय, धोखाधड़ी जैसी घटनाएँ होती हैं तो उनका निषेध, विरोध, प्रतिकार होना ही चाहिए। उनकी जाँच करके दोषी पर कड़ी से कड़ी कार्रवाई होनी चाहिए। किंतु ऐसी घटनाओं का सामान्यीकरण करना, विषम अनुपात में उसे बड़ा दिखाकर पूरे समाज की छवि पर आघात करना कहाँ तक उचित है? परंतु ऐसा होता हुआ दिखता है। कारण - ऐसा करने वालों के मन में यह 'वयं राष्ट्रांगभूता' का भाव क्षीण या लुप्त होता दिखता है। उन्हें यह समाज, इस समाज का एक विशिष्ट वर्ग, यहाँ की विषमता, यहाँ की दरिद्रता, शिक्षा का अभाव, गंदगी ये सब अपना एजेंडा साधने के लिए संसाधन जैसे दिखते हैं। यह अपनत्व भाव के अभाव का परिणाम है। विचारधारा के आधार पर एक एजेंडे के साथ पत्रकारिता करना या पत्रकारिता धर्म की विस्मृति होने के कारण ऐसा होता प्रतीत होता है।

एक विशिष्ट विचारधारा के लोग अपने विचार से असहमत या विरोधी विचार के लोगों के विरुद्ध अपने राजकीय स्वार्थ को लेकर अनर्गल झूठ फैलाकर समाज में

लॉकडाउन के कारण अर्थतंत्र का पहिया भी रुक गया। अचानक आई इस आपदा की व्यापकता के कारण अनेक अकल्पनीय समस्याएँ और चुनौतियाँ भी सामने आई। उन सारी समस्याओं से निपटने के आयोजन या प्रयास में कुछ कमियाँ भी सामने आई। उनके परिणाम भी सामान्य, निरीह, बेबस लोगों को झेलने पड़े। यह दु:खद है। इन घटनाओं को लेकर सार्वजनिक जीवन में, मीडिया में बहस छिड़ना, उसकी चर्चा होना स्वाभाविक है। यह भी लोकतंत्र का हिस्सा ही है

विघटन और संघर्ष की स्थिति निर्माण करने के लिए 'मीडिया' का दुरुपयोग करते हुए दिखते हैं। क्योंकि उनमें 'वयं राष्ट्रांगभूता' का अभाव होता है और ये गिद्ध के समान ऐसे मौके की तलाश में मँडराते रहते हैं।

संसद भवन पर हुए आतंकी हमले के समय ऐसे ही एक वरिष्ठ पत्रकार ने यह निर्लज्ज विधान किया था कि यह समाचार सुनते ही उसे अपने चौनल के लिए वह एक्स्क्लूसिव स्टोरी लगी और अन्य चौनल के लोग पहुँचने के पहले मैं इसे कवर करूँ यही विचार उसके मन में आया। देश के संसद भवन और सांसदों की सुरक्षा का जो होना हो, वह हो। यही वह गिद्धदृष्टि है।

26 नवंबर के मुंबई में हुए आतंकी हमले के समय देश के सुरक्षा बलों की सुरक्षा का थोड़ा भी विचार ना करते हुए केवल 'एक्स्क्लूसिव कवरेज' के नाम पर, मेरे कैमरे में दिख रहे हैं इसलिए सुरक्षा बलों की व्यूहात्मक हलचल, देश के आतंकवादी दुश्मनों के लिए सहज उपलब्ध करने का विचारहीन कृत्य भी हमने देखा है। भारत के एअर इंडिया के विमान को भारत सरकार के क़ब्जे में आतंकवादियों को रिहा करने की माँग को लेकर हाइजैक करने की घटना का भारतीय मीडिया का कवरेज भी विचार करने लायक है। केवल उस विमान में हाइजैक हुए यात्रियों के परिजनों को रोते-बिलखते दिखाने के कारण सरकार और सुरक्षा बलों पर क्या मानसिक तनाव और दबाव आ रहा होगा, इसका विचार ही नहीं किया गया।

मुझे स्मरण है, इसके विपरीत 2001 में कच्छ भूकंप के समय विनाश के चित्र के साथ एक छाया-पत्रकार ने जिसका सब कुछ समाप्त ही हो गया है ऐसे एक बुजुर्ग के दृढ़ मनोबल का संदेश देकर सभी पाठकों को एक आशा की दिशा दी थी। एक ही क्षण में अपने घर को मलबे का ढेर बना देख एक कच्छी बुजुर्ग क्या सोचता है! मलबे के ढेर के चित्र के साथ खड़े उस बुजुर्ग के चेहरे पर एक दृढ संकल्प दिखता है और उस पत्रकार ने उस चित्र को, "तेरी ताक़त देखी कुदरत, अब तू मेरी ताक़त देख़" शीर्षक दे कर एक अच्छा संदेश भी दिया। मैं मानता हूँ, ऐसा शीर्षक भी समाज गढ़ने की प्रक्रिया को एक सकारात्मक दिशा देने का प्रयास ही है।

समाज को गढ़ने का कार्य समाज के छोटा बड़ा काम करने वाले सभी घटक 'वयं राष्ट्रांगभूता' के भाव से करेंगे, करते रहेंगे यह अपेक्षा है। "वयं राष्ट्रे जाग्रयाम पुरोहिताः।" इसलिए, उसमें भी जो 'पुरोहित' है, समाज के हित की चिंता जिन लोगों को अधिक करनी अपेक्षित है, उनमें पत्रकार और मीडियाकर्मी भी आते हैं। मीडिया के पास जानकारी पहले आती है और उनके द्वारा जन-संवाद के माध्यमों से समाज में दूर तक, गति से संवाद या समाचार पहुँचता है। इसलिए उन्हें इस विषय में विशेष सजग और जिम्मेदार रहना आवश्यक है, अपेक्षित है। इसीलिए समाचार का चयन, उसका सत्यापन और प्रस्तुति अत्यंत जिम्मेदारी के साथ करना चाहिए। ताकि सत्य परोसा जाए, सत्य ही परोसा जाए और वह करते समय समाज जागृत हो, जो गाफिल हो वह संभल जाए, गलत करने वाला परावृत्त हो, समाज का प्रयासपूर्वक गढ़ा हुआ ताना-बाना बिगड़े नहीं, उधड़ ना जाए यह भी देखना है। क्योंकि यह मेरा समाज है, मैं समाज का अंग हूँ।

दुर्भाग्य से अपने ही देश के कुछ लोग समाज गढ़ने की इस बात की अनदेखी कर, केवल एकतरफा चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास करते दिखते हैं। हमारी विविधता के मूल में जो एकता का सूत्र है, जो हमारी अध्यात्म-आधारित जीवन दृष्टि है उसका विस्मरण होने के कारण या उसे अनदेखी करने के कारण हमारी वैशिष्ट्यपूर्ण विविधता को भेद के नाते प्रस्तुत कर समाज में नए विभाजन करने के षड्यंत्र, मूलतः मीडिया की पश्चिमी अवधारणा तथा यूरोप के लिबरलिज्म में अटूट विश्वास के कारण चल रहे हैं। आवश्यक नहीं कि ऐसा षडयंत्र करने वाले सभी पत्रकार-संपादक कांग्रेसी-वामपंथी या जिहादी ही हों। इनमें अधिकांश हमारी शिक्षा व्यवस्था की उपज हैं। उन्होंने जो पढ़ा है उसके आधार पर वे बहुत ईमानदारी तथा विश्वास से मानते हैं कि हमारी विविधता मूलतः हमारे समाज के भेद को प्रकट करती है। डॉमिनंट कल्चर और अपनी पहचान के लिए उठकर खड़ी हो रहीं सब-कल्चर की लिबरल थ्योरी में उनका अटूट विश्वास है।

यह ध्यान देने की बात है कि मीडिया में सर्वत्र प्रभावी समाचार की पश्चिमी अवधारणा तथा यूरोप के लिबरलिज्म के असर के बाद भी हमारे देश के मीडिया से हमारी भारतीय जीवनदृष्टि का पूरी तरह लोप नहीं हुआ है। जिन मीडिया संस्थानों को हम साधारणतः भारतीय जीवन दृष्टि या 'हम भाव' के विपरीत कवरेज करते हुए देखते हैं, वे भी आर पार की स्थिति आने पर इस 'हम भाव' के साथ खड़े दिखते हैं, यह आशादायक चित्र है।

इतने प्राचीन समाज में कालांतर में कुछ दोष निर्मित हुए, इस कारण कुछ समस्याएँ उभरीं। उनके निवारण के हर प्रयत्न अवश्य होने चाहिए, पर यह करते समय समाज गढ़ने के कार्य को हानि ना पहुँचे, इसका ध्यान भी रखना चाहिए। कुछ ऐतिहासिक गलत नीतियों के कारण सामाजिक और आर्थिक विषमताओं का निर्माण हुआ। उन्हें दूर कर समरस-समाज-निर्माण के लिए हरसंभव प्रयत्न करने चाहिए। ये करते समय भी इस एकता का सूत्र शिथिल न हो, दुर्बल न हो इसका भी ध्यान रखना आवश्यक है। नहीं तो केवल मीडिया की स्वतंत्रता या अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य के नाम पर समाज के इस गठन की अनदेखी करना

दुर्भाग्य से अपने ही देश के कुछ लोग समाज गढ़ने की इस बात की अनदेखी कर, केवल एकतरफा चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास करते दिखते हैं। हमारी विविधता के मूल में जो एकता का सूत्र है, जो हमारी अध्यात्म-आधारित जीवन दृष्टि है उसका विस्मरण होने के कारण या उसे अनदेखी करने के कारण हमारी वैशिष्ट्यपूर्ण विविधता को भेद के नाते प्रस्तुत कर समाज में नए विभाजन करने के षड्यंत्र, मूलतः मीडिया की पश्चिमी अवधारणा तथा यूरोप के लिबरलिज्म में अटूट विश्वास के कारण चल रहे हैं

या उसकी हानि हो ऐसा प्रयास करना माने "Operation successful, patient is dead" जैसी स्थिति होगी।

'बात ऐसी कर' नामक एक कविता में कहा है-

"बात ऐसी कर
जिसमें कुछ दम हो।
जो न सेरों से, न छटाकों से
मगर मन से तुले।
खो न जाये गूंजकर आकाश में
मन में घुले।"

आगे कवि कहते हैं-

"जुल्म के अन्याय के पल में
कभी भी चुप न रहना, चुप न सहना।
जुल्म का प्रतिरोध करने के लिए बोलो बराबर।
ज्वालामुखी उद्‌गार मुख खोलो सरासर।
जोर से बोलो कि जिससे जुल्म का दिल दहल जाए
और गाफिल हो जहाँ भी आदमी, संभल जाए।"

और अंत में कवि ने कहा है-

"बात में अपना
वरद हृदय अपना
अपनी सच्चाई डाल कर देखो,
पराया भी स्वजन हो
बात ऐसी कर जिसमें कुछ वजन हो।"

समाचार का चयन, प्रस्तुति और परिणाम का विचार करते समय यह बात हमेशा ध्यान में रखनी चाहिए। जैसा प्रारंभ में कहा है कि भारतीय चिंतन के अनुसार मनुष्य जीवन का अंतिम लक्ष्य 'मोक्ष' या 'मुक्ति' पाना है। इसीलिए भारतीय परंपरा में संगीत, नृत्य, कला, विद्या, व्यापार, शक्ति-उपासना इन सब का उद्देश्य भी मोक्ष प्राप्ति की ओर आगे बढ़ना ही रहा है। इसीलिए इन सभी कार्यों का एक दैवी अधिष्ठान रहता आया है और नटराज, सरस्वती, गणेश, लक्ष्मी, हनुमान ऐसे इनके अपने-अपने अधिष्ठात्री देवी-देवता रहे हैं।

भारतीय चिंतन के अनुसार मनुष्य जीवन का अंतिम लक्ष्य 'मोक्ष' या 'मुक्ति' पाना है। इसीलिए भारतीय परंपरा में संगीत, नृत्य, कला, विद्या, व्यापार, शक्ति-उपासना इन सब का उद्देश्य भी मोक्ष प्राप्ति की ओर आगे बढ़ना ही रहा है। इसीलिए इन सभी कार्यों का एक दैवी अधिष्ठान रहता आया है और नटराज, सरस्वती, गणेश, लक्ष्मी, हनुमान ऐसे इनके अपने-अपने अधिष्ठात्री देवी-देवता रहे हैं

समर्थ रामदास स्वामी ने कहा है-

"सामर्थ्य आहे चळवळीचे, जो जे करील तयाचे।
परंतु तेथे भगवंताचे, अधिष्ठान पाहिजे"

[सामर्थ्य कृतिशीलता का है, जो जो यह करेगा उसका है।

परंतु वहाँ भगवान का अधिष्ठान आवश्यक है।][5]

इसलिए इस समाज को अपना मानकर उसे गढ़ते रहने का मेरा भी दायित्व है यह ध्यान में रखकर, जो गलत है उसकी जानकारी सबको देने का कर्तव्य निभाते हुए भी समाज का भलाई करने में विश्वास बना रहे, उसे गढ़ने वाला ताना-बाना बिगड़े नहीं, उधड़ न जाए यह भी ध्यान में रखना है.

अच्छे, उत्साहवर्धक, समाज या राष्ट्र सर्वोपरि है ऐसी घटनाओं की जानकारी, समाचार भी विपुल मात्रा में सतत देते रहना चाहिए. जो यह समाचार पढ़ेगा उसे सही, तथ्याधारित जानकारी देते हुए भी उसके अंदर के देवत्व को आह्वान करने वाला, जागृत करने वाला, उन्नत करने वाला वह हो इसका ध्यान भी रखना चाहिए। समाज में छिपी अमानवीय वृत्ति, दुष्टता को प्रकट होने का साहस न हो, गाफिल समाज सावध हो और समाज के अंदर सुप्त देवत्व को प्रकट करने की प्रेरणा मिले इन सबका संतुलन रखने वाला समाचार देने से पत्रकारिता धर्म का पालन होगा। अंततोगत्वा समाचार देने वाला और पढ़ने वाले को भी अपना अपनापन का दायरा अधिक विस्तृत करने में सहायक, मुक्ति की दिशा में आगे बढ़ने वाला समाचार हो यह भारतीय दृष्टि है। समाचार को 'संवाद' या संस्कृत में 'वार्ता' कहते हैं। इसीलिए संवाददाता को मराठी में 'वार्ताहर' कहते हैं।

तभी हम कह सकते हैं- "सा वार्ता या विमुक्तये"[6]

ऋग्वेद(१-३०-५) में कहा है 'विभूतिरस्तु सुनृता।' विभूति का अर्थ है- वैभव, महत्ता, समृद्धि, महिमा, या अभ्युदय। इसलिए यह कह सकते हैं कि समाचार ऐसा हो जो विभूति बढ़ानेवाला हो, भेद बढ़ाने वाला या भेदकारक न हो। ऐसी दृष्टि होनी चाहिए- 'सा वार्ता या विभूतये, कदापि न विभेदाय'।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौर के अनेक दिग्गज पत्रकारों-संपादकों ने प्रेस या मीडिया के लिए अलग-अलग ढंग से यही कर्तव्य कहा है। लोकमान्य तिलक और गांधी जी से लेकर पंडित दीनदयाल उपाध्याय तक सभी की यही दृष्टि है। आसेतु हिमाचल फैला हुआ यह संपूर्ण समाज, मेरा समाज है। मुझे इसे गढ़ना है। भविष्य में आने वाले सभी प्रकार के संकटों का सामना करने का इसका सामर्थ्य इसके एकत्व में, 'हम' भाव में है। हम सभी को, हर समय, हर परिस्थिति में इस 'हम' भाव को बढ़ाते हुए मजबूत करते रहना चाहिए।

संदर्भ

1. *फ़्रिटजॉफ काप्रा, वेब ऑफ लाइफ, पृष्ठ 6-7*
2. इंद्रम् मित्रम् वरूणम् अग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान।
एकम् सत् विप्रा बहुधा वदंत्यग्निम् यम् मातरिश्वानमाहुः।। ऋग्वेद 1:164:46।।
3. तुकाराम गाथा, ओवी, 1720
4. https://www.washingtonpost.com/archive/politics/1992/10/06/maker-of-gun-t-shirts-has-change-of-heart/5d9cd765-9fb2-4511-89db-45d6ebb9f7f6/
5. रामदास स्वामीः दासबोधः 20:4:26
6. तत् कर्म यत् न बंधाय सा विद्या या विमुक्तये। आयासायापरम् कर्म विध्यान्या शिल्पनैपुणम्।। विष्णुपुराणः 1:19:41 ।।

मीडिया काउंसिल की संभावना प्रबल

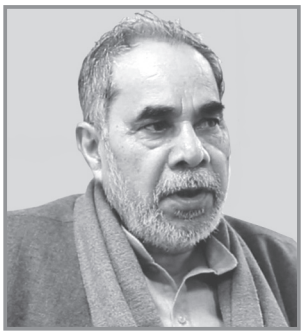

रामबहादुर राय

प्रेस के नियमन के लिए जो व्यवस्था बनी थी, समय के साथ मीडिया के बदलते स्वरूप के कारण अब वह अपर्याप्त है। अब इस निमित्त नई व्यवस्था की आवश्यकता और स्वरूप पर एक दृष्टि

भारत की पत्रकारिता में छपे शब्दों के जादू का एक जमाना हुआ करता था। वह एक युग था। जो श्रेष्ठ पत्रकारिता की परंपरा के लिए इतिहास में अपना स्थान बनाए हुए है। उसे अनेक नामों और विशेषणों से अक्सर याद किया जाता है। क्या वह पत्रकारिता का सतयुग था? यह प्रश्न स्वाभाविक है और सामयिक भी। इसी से दूसरा प्रश्न पैदा होता है कि आज की पत्रकारिता का युग कौन सा है। इसका उत्तर खोजना सरल है। कोई बड़ी समस्या नहीं है। यह दौर पत्रकारिता के बाजारीकरण का है। इससे पत्रकारिता का रंग-ढंग और चाल-चलन सवालों के घेरे में आ गया है। यही वह समस्या है जो दशकों से बनी हुई है। इसके समाधान के लिए नीतिनियमन की आवश्यकता अब अनिवार्यता में रूपांतरित हो गई है। इस आलेख में खास तौर से जिस पत्रकारिता पर बात की जा रही है उसे आजकल बोल-चाल में प्रिंट की संज्ञा मिल गई है। क्योंकि पत्रकारिता की दुनिया का नया नाम मीडिया है। जिसकी छटा बड़ी निराली हो गई है। प्रिंट को परंपरागत पत्रकारिता कहना अधिक उपयुक्त होगा। प्रिंट के दो हिस्से हैं। एक में समाज की आवाज अपनी भाषा में होती है तो दूसरे में प्रमुखतया सत्ता की आवाज अंग्रेजी में रहती है। भाषाई अखबार में ही हिंदी भी आ जाती है। भाषाई पत्रकारिता का समाज से गर्भनाल सरीखा संबंध रहता रहा है। यह भी एक प्रमुख कारण है कि भाषाई पत्रकारिता का स्वभाव समाजोन्मुखी रहा है। समाज के सुख-दुख, पीड़ा और आकांक्षा को भाषाई पत्रकारिता में सहज रीति से प्रमुखता मिलती रही है। राजनीति भी उसमें से एक है, एक मात्र नहीं। क्या वह आज भी है? अंग्रेजी पत्रकारिता औपनिवेशिक समृद्धि में पैदा हुई, पली और बढ़ी। इस कारण भी वह पहले दिन से अमीरी में है, महंगी है। उसमें अहंकार है। सत्ता और शहरी जीवन की परिधि में वह अपना स्थान खोजती और केंद्र में रहने की जद्दोजहद करती रहती है।

जनमत बनाने में भूमिका की तुला पर भाषाई पत्रकारिता अंग्रेजी से वजनी हो गई है। पहले ऐसा नहीं था। यह धारणा थी कि जनमत तो अंग्रेजी पत्रकारिता से बनती है। 1989 के लोकसभा चुनाव ने यह साबित कर दिया कि भाषाई पत्रकारिता का नया युग शुरू हो गया है। राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार पदस्थ हो सकी और कांग्रेस अपदस्थ हो गई। मिस्टर क्लीन राजीव गांधी को भाषाई मीडिया ने जनमत जगाकर हरा दिया। भाषाई पत्रकारिता की वह एवरेस्ट पर पहुंचने और अपना झंडा फहराने जैसी एक उपलब्धि थी। वहीं से फिसलन भी शुरू हुई। वह रुकी नहीं है। कब रुकेगी और कैसे वह पुनः अपने गौरव को प्राप्त कर सकेगी, क्या कोई है जो यह बता सकेगा? गज-ग्राह की यह स्थिति कब तक बनी रहेगी? इसे एक पुराण कथा से समझा जा सकता है। भागवत पुराण में प्रसंगवश यह वर्णन आया है कि दक्षिण के एक राजा को अगस्त्य मुनि ने शाप दिया। जिससे वह हाथी की योनि में पैदा हुआ। एक दिन वह अपने शरीर का ताप मिटाने नजदीक के एक रम्य सरोवर में गया। वहाँ एक ग्राह (मगरमच्छ) अपने शिकार की टोह में ही था, जिसने हाथी का पैर पकड़ लिया। उसे वह घसीट कर ले जाने लगा। हाथी को अपने शरीर बल का अहंकार था। वह स्वयं को मुक्त कराने का प्रयास करने लगा, पर सफल नहीं हो सका। अचानक उसे पूर्व जन्म के कुछ स्तोत्र याद आ गए। उनका पाठ करने लगा। इस पर विष्णु गरुड़ को छोड़कर तत्काल उस सरोवर

में कूद पड़े। ग्राह सहित गज को बाहर निकाला। अपने चक्र से ग्राह का मुंह फाड़ा और गज को मुक्त करा दिया। यह घटना गजेंद्र मोक्ष भी कहलाती है। इस प्रतीकात्मक कथा में भाषाई पत्रकारिता के गजग्राह का पूरा अभिप्राय आ जाता है। प्रश्न है कि गजेंद्र मोक्ष के साधन का अवतरण कैसे हो? एक समय था जब प्रिंट में ही पत्रकारिता जगत समाया हुआ होता था। रेडियो सरकार का था और है। तब नीति और नियमन के दायरे में सिर्फ प्रिंट और न्यूज एजेंसियाँ ही थीं। स्वाधीन भारत में नीति-नियमन के इतिहास के दो चरण हैं। पहले चरण को अक्सर नजरअंदाज कर दिया जाता है, जबकि वह न केवल बहुत महत्वपूर्ण है बल्कि अनेक तरह के बने हुए भ्रम निवारण में सहायक भी है। इस चरण को समझने के लिए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का संवैधानिक स्वरूप जानना चाहिए। संविधान में नागरिक को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जितनी दी गई है, उसमें ही प्रेस की स्वतंत्रता का स्थान है। संविधान के अनुच्छेद-19(1)(ए) के तहत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता नागरिक को प्राप्त है। यह मौलिक अधिकारों में अत्यंत महत्वपूर्ण है। इससे ही बोलने, लिखने और अपनी विचारधारा को बताने का अवसर प्राप्त होता है। इसमें सत्याग्रह और अहिंसक प्रतिरोध आदि के अधिकार भी आ जाते हैं। सरकार की नीति की आलोचना और विरोध भी इसी के अंतर्गत नागरिक को प्राप्त होता है। संविधान जब लागू हुआ तो इस अधिकार के धुआँधार उपयोग से प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू की शांति भंग हो गई। वे आसमान से यथार्थ की जमीन पर उतरे। औपनिवेशिक अस्त्रों को ही अपनी ढाल बनाया। उन्होंने संविधान में संशोधन कराए। जिससे अभिव्यक्ति पर कुछ अंकुश लगाए गए। अनुच्छेद-19(2) के तहत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर सरकार जिसे तर्कसंगत समझती है वह रोक लगा सकती है। यह संशोधन नेहरू जी ने ही कराया। जैसे कि देश की अखंडता और संप्रभुता को चुनौती नहीं दी जा सकती। अदालत की अवमानना या किसी की मानहानि का अधिकार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उल्लंघन माना जाएगा। यहाँ वह अधिकार खत्म हो जाता है, जहाँ कानून का उल्लंघन हो। देश की संप्रभुता को चुनौती अगर दी जाती है और माहौल बिगाड़ा जाता है, हिंसा होती है तो राजद्रोह का मुकदमा दर्ज हो सकता है। सुप्रीम कोर्ट के पूर्व मुख्य न्यायाधीश जगदीश शरण वर्मा का कहना है, "भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)ए के अंतर्गत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से संबंधित अधिकार दिए गए हैं। लेकिन साथ ही उप-अनुच्छेद दो में इससे संबंधित व्यवस्था की गई है कि किसी भी सभ्य समाज में किसी को भी असीमित अधिकार नहीं दिए जा सकते। निश्चित रूप से यह तर्कसंगत पाबंदी का विषय हो सकता है। जैसा मैंने बहुत पहले ही कहा था कि मुझे उतनी ही दूरी तक अपनी बाँहों को फैलाने का अधिकार है जहाँ तक किसी का चेहरा उसके सामने न आ जाए। बेशक, मुझे अपनी भावनाओं को व्यक्त करने का अधिकार हासिल है लेकिन मैं ऐसा कुछ भी नहीं बोल सकता जिससे किसी दूसरे की भावना आहत हो, वह अपमानित महसूस करे। इस तरह अनुच्छेद 19 के अंतर्गत कुछ ऐसी व्यवस्थाएँ हैं जो तर्कसंगत पाबंदी से संबंधित हैं। इन पाबंदियों के संदर्भ में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता समाहित है। मुझे हमेशा से ही इसे गणितीय आधार पर अभिव्यक्त करना पसंद आता रहा है। यानी अगर अनुच्छेद 19(1) एक वृत्त या परिधि है तो फिर ऐसे कई खंड हैं जिनका विकास इसके माध्यम से हुआ है। इन खंडों के अंतर्गत ही राष्ट्रीय सुरक्षा, एकता एवं अखंडता, मानहानि, नैतिकता जैसे तत्व समाहित हैं।"

इसका प्रभाव और परिणाम जो हुआ उसे याद रखने की जरूरत है। अंग्रेजी जमाने की भारतीय दंडसंहिता की धारा 124(ए) पुनः अस्तित्व में आ गई। इसमें राजद्रोह को परिभाषित किया गया है। अगर कोई भी व्यक्ति लिखकर, बोलकर या फिर किसी भी माध्यम से अभिव्यक्ति के जरिए ऐसा काम करता है जिसे सरकार राजद्रोह मानती है या यह समझती है कि उससे दो समुदायों के बीच नफरत फैलेगी तो राजद्रोह का मुकदमा उस पर चलाया जा सकता है। दोषी होने पर उसे उम्रकैद भी हो सकती है। इस पर विवाद है और वह बना रहने वाला है कि सरकार की स्वस्थ आलोचना करना और सही बातें लोगों के बीच लाना राजद्रोह है या नहीं। एक मत यह है कि सरकार और देश में फर्क है। देश की संप्रभुता को चुनौती देना राजद्रोह है लेकिन सरकार की नीति से असहमत होना राजद्रोह नहीं है। सुप्रीम कोर्ट के सामने भी यह विवाद आया। इस बारे में उसके दो फैसले हैं। पहले फैसले में सुप्रीम कोर्ट ने भारतीय दंड सहिंता (आईपीसी) की धारा-124-ए को संवैधानिक करार दिया। उसने कहा था कि सरकार की आलोचना या फिर प्रशासन पर विपरीत टिप्पणी करने से राजद्रोह का मुकदमा नहीं बनता। 1995 में बलवंत सिंह बनाम स्टेट ऑफ पंजाब केस में सुप्रीम कोर्ट ने कहा था कि सिर्फ नारेबाजी से राजद्रोह नहीं हो सकता। अगर उससे राजद्रोह हो जाए और समुदाय में नफरत फैल जाए तो राजद्रोह होगा।

इस यथार्थ की अकसर अनदेखी कर दी जाती है। इसने तीन रूपों में अपना प्रभाव डाला। मौलिक अधिकारों में अभिव्यक्ति की

स्वतंत्रता पर अंकुश लगा। उसे नियंत्रित किया गया। नियंत्रण हमेशा ही अनुचित होता है। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने नियंत्रण करने के लिए संविधान का संशोधन न कराया होता तो पराधीन भारत में जो राजद्रोह कानून अंग्रेजों का अस्त्र था वह विलुप्त हो जाता। स्वाधीन भारत में उसे पुनर्जीवन मिला। यह था पहला चरण। दूसरे चरण में प्रेस के नियमन की भारत सरकार ने एक व्यवस्था की। वह चली आ रही है। जो मीडिया के बदलते स्वरूप और विस्तार से धीरे-धीरे अप्रासंगिक और अप्रभावी होती गई है। समय के सुर ताल से बेमेल यह व्यवस्था मजाक बनकर रह गई है। यहाँ आशय प्रेस परिषद से है। जब पेड न्यूज पर संसद में चिंता प्रकट की जा रही थी उस समय राज्यसभा में विपक्ष के नेता अरूण जेटली ने प्रेस परिषद को एक परिभाषा दी। कहा कि 'यह संस्था तो टूथलेस टाइगर है।' जिसे लोग अनुभव तो करते थे, लेकिन उसे इस रूप में किसी ने उससे पहले परिभाषित नहीं किया। अब यह मुहावरा है। इतना ही नहीं, यह भी है कि प्रेस परिषद का यह दूसरा नाम हो गया है।

इसके मर्म को अवश्य समझने की जरूरत है। वह यह है कि प्रेस परिषद में समय के अनुरूप परिवर्तन अपरिहार्य हो गया है। फिर भी क्यों परिवर्तन नहीं हो रहा है? यह भारतीय लोकतंत्र का आठवाँ आश्चर्य है। कोई नियामक संस्था अगर अप्रभावी है तो उसको सुधारने की जिम्मेदारी सरकार की ही होती है। प्रेस परिषद मीडिया की पहली नियामक संस्था है। इसका गठन सरकारी आदेश से नहीं हुआ है, विधिवत कानून बनाकर इसका गठन हुआ है। संसद के बनाए कानून से प्रेस परिषद अस्तित्व में आई। इसका एक इतिहास है। राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने पहले आम चुनाव के बाद जब संसद को संबोधित किया तो उसमें ही प्रेस आयोग बनाने का स्पष्ट उल्लेख था। उस समय के पत्रकारों ने लिखा भी और बताया भी कि पत्रकारों के एक ट्रेड यूनियन के मंच से इसकी माँग हुई। उसके बाद प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को एक ज्ञापन सौंपा गया। जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रपति अभिभाषण में वह उल्लेख आया। देश को वह एक आश्वासन था। स्वाधीन भारत के लोकतंत्र में प्रेस की भूमिका का निर्धारण हो, इसलिए वह आश्वासन सर्वथा उचित था। भारत सरकार का वह दायित्व भी था। जिसका स्वागत हुआ। भारत सरकार ने वचन निभाया और पहला प्रेस आयोग बनाया। पहला प्रेस आयोग स्वाधीन भारत के पुनर्निर्माण के एजेंडे की पृष्ठभूमि में बनाया गया था। यूरोप और अमेरिका के प्रेस की स्थिति का अध्ययन भी उसका एक कारण था। ब्रिटेन में रॉयल कमीशन और अमेरिका में हुचिन आयोग की रिपोर्ट आ चुकी थी। नई परिस्थितियाँ पैदा हो गई थीं। समुद्रपारीय प्रेस अध्ययनों की रिपोर्टें भारतीय प्रेस की जानकारी में थीं। उसकी 9 संस्तुतियों में एक यह भी थी कि प्रेस परिषद का गठन होना चाहिए। (विवरण के लिए बाक्स-एक देखें)।

यहाँ एक स्पष्टीकरण इसलिए जरूरी है क्योंकि कोई भ्रम इस बारे में न हो। नीति और नियमन लोकतंत्र का अभिभाज्य अंग है। किसी भी लोकतंत्र को सुचारु रूप से चलाने के लिए संवैधानिक व्यवस्था में कानून और नियम बनाए जाते हैं। सरकार का यह दायित्व है। नियंत्रण दूसरी बात होती है। वह नियमन का विलोम होता है। मेरा कहना है कि नियमन के आग्रह पर कोई यह भ्रम न पाले कि इस आलेख में नियंत्रण की बात की जा रही है। नीति-नियमन लोकतांत्रिक व्यवस्था में आधारभूत तत्व है। कानून और उसके नियम का दूसरा नाम ही लोकतंत्र है। कानून और नियम अपना कार्य करे तो नियमन सहज रूप से गतिमान रहता है। नियमन लोकतांत्रिक है और नियंत्रण अंकुश का पयार्य है। अंकुश जब निरंकुश होता जाता है तो तानाशाही जन्म लेती है। इमरजेंसी (1975-1977) की भयानक निरंकुशता की याद नागरिकों के अलावा पत्रकारों को उसी तरह है जैसे भारत विभाजन की भयानक पीड़ा उजड़े पीड़ितों में बनी हुई है। दूसरी तरफ नियमन की उचित व्यवस्था के अभाव में अराजकता पैदा होती है जो आज मीडिया के संदर्भ में दिख रही है। नीति और नियमन के लिए ही संसद है। सरकार है और अदालतें हैं। लेकिन पहल तो भारत सरकार को ही करनी चाहिए। भारत में लोकतंत्र की बहाली के बाद मोरारजी देसाई सरकार ने 1978 में दूसरे प्रेस आयोग का गठन किया। वह आयोग अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर पाया था कि जनता सरकार गिर गई। 1980 में इंदिरा गांधी पुनः सत्ता में आई। उन्होंने उस आयोग को भंग नहीं किया, पुनर्गठित कर दिया। इस तरह दूसरे प्रेस आयोग ने चार साल में प्रेस, उसके स्वामित्व, उसकी संरचना, व्यावसायिकता, औद्योगिक-व्यापारिक संबंध, भाषाई प्रेस, न्यूज एजेंसी, पत्रकारों की स्थिति, प्रेस का सामाजिक दायित्व, प्रेस स्वतंत्रता, भारतीय प्रेस परिषद की भूमिका, प्रेस बनाम संसद के विशेषाधिकार, प्रबंधकों के हस्तक्षेप के विरुद्ध सुरक्षा और संपादकीय स्वायत्तता, समाचार और विज्ञापन का अनुपात, मझोले और छोटे अखबारों की विज्ञापन स्थिति जैसे प्रश्नों का अध्ययन कर अपनी रिपोर्ट दी। उस आयोग ने एक बड़ी सिफारिश की। वह यह कि मीडिया घराने अपने को दूसरे उद्योग का अंग न बनाएँ। उससे नाता तोड़ लें। (बॉक्स 3 और बॉक्स 4 देखें)

इस समय मीडिया में नीति-नियमन के लिए चार संस्थाएँ हैं। पहली प्रेस परिषद है। जिसे प्रेस की स्वतंत्रता की रक्षा और उसमें मानक के निर्धारण और निगरानी का दायित्व प्राप्त है। इसके दायरे में समाचार पत्र, पत्रिकाएँ और न्यूज एजेंसियाँ आती हैं। इसका अध्यक्ष सुप्रीम कोर्ट का अवकाश प्राप्त न्यायाधीश होता है। इसमें 28 सदस्य होते हैं। जिनमें 6 संपादक, 7 वरिष्ठ पत्रकार, प्रबंधन से 6 व्यक्ति, एक

बाक्स-एक

पहला प्रेस आयोग

अध्यक्ष - जस्टिस जी. एस. राजाध्यक्ष
1) सदस्य सी.पी. रामास्वामी अय्यर
2) आचार्य नरेंद्र देव
3) डा. जाकिर हुसेन
4) वी.के.आर.वी. राव
5) पी.एच. पटवर्धन
6) टी.एन. सिंह
7) जयपाल सिंह
8) जे. नटराजन/ ए.डी. मनि
9) ए. आर. भट्ट
10) एम. चेलापति राव

कार्यकाल - 3 अक्टूबर, 1952- 14 जुलाई, 1954

बाक्स-दो

आयोग की मुख्य सिफारिशें-

1) प्रेस रजिस्ट्रार की नियुक्ति हो।
2) न्यूज पेपर उद्योग के आँकड़े के लिए संस्था बने।
3) समय-समय पर प्रेस पेज शेड्यूल निर्धारित हो।
4) पत्रकारीय कामों के अनुचित नियमन पर रोक लगे और उसे परिभाषित किया जाए।
5) एक से अधिक अखबारों को चलाने वाले अपने कारोबार के आँकड़े समय-समय पर प्रकाशित करें।
6) विज्ञापन में जालसाजी दंडनीय अपराध माना जाए।
7) कर्मचारियों के लिए नया कानून बने। जिससे वेतन, सेवा शर्तों और अन्य सुविधाओं का निर्धारण हो।
8) प्रेस उद्योग के मुनाफे के आंकलन की विधि निर्धारित हो।
9) अखबारों के लिए अनिवार्य हो कि वे स्वामित्व और नियंत्रण के बारे में समय-समय पर घोषणा करे।

व्यक्ति न्यूज एजेंसी से, बार काउंसिल ऑफ इंडिया और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और साहित्य अकादमी से प्रति संस्था एक व्यक्ति, लोकसभा से तीन सदस्य और राज्यसभा से दो सदस्य। प्रेस परिषद का पूरा ढाँचा भारत सरकार के अनुकूल ही गठित है। ब्रिटेन में जब अखबारों ने अनेक प्रकार की अनियमिताएँ बरती तो वहाँ एक आयोग बना। उसे लॉर्ड जस्टिस लेवसन आयोग कहते हैं। उसने 2012 में रिपोर्ट दी। जिसमें सिफारिश की कि नियामक संस्था में सेवारत संपादक और सांसद नहीं रहना चाहिए। तभी नियामक संस्था स्वाधीन हो सकती है। हालाँकि इस सिफारिश को ब्रिटेन की सरकार ने नहीं माना।

दूसरी नियामक संस्था है-न्यूज ब्राडकास्टिंग स्टैंडर्ड अथारिटी। इसे न्यूज ब्राडकास्टर्स एसोसिएशन (एनबीए) ने बनाया है। तीसरी संस्था है-ब्राडकास्टिंग कांटेंट कंप्लेंट काउंसिल। मनोरंजन और टीवी खबरों की शिकायतों के निवारण की यह संस्था है। जिसे मालिकों ने बनाया है। चौथी संस्था है-न्यूज ब्राडकास्टर्स फेडरेशन। यह एनबीए से अलग होकर नई संस्था बनाई गई। इसे अर्णव गोस्वामी ने बनवाया है। सूचना प्रौद्योगिकी की संसदीय समिति ने सोलहवीं लोकसभा में सिफारिश की थी कि जहाँ न किसी कानून को बदलना है और न ही नीति निर्धारण का विषय है, ऐसे मामलों पर सैंतालीसवीं रिपोर्ट को पूरी तरह लागू करना चाहिए। लेकिन इसके अभाव में इन संस्थाओं की साख पर सवाल है। जो लोग इन संस्थाओं के कामकाज पर नजर रखते हैं उनका कहना है कि ये अपने मूल दायित्व का निर्वाह नहीं करती। इनका मूल दायित्व है- प्रेस की स्वाधीनता, उसकी नैतिकता का पालन और पत्रकारिता का स्तर ऊँचा रखना। हिंदू अखबार के पाठक संपादक ए.एस. पन्नीरसेलवन का यह मत है। इनसे शायद ही कोई असहमत होगा, जो आज की मीडिया से परिचित है। इन कथित नियामक संस्थाओं के बावजूद मीडिया में पेड न्यूज का धंधा खूब जोर से चल रहा है। वह मीडिया के तहखाने से चलता है। उसे मीडिया का अंडरवर्ल्ड कहना चाहिए। तहलका जैसी अनैतिक और कथित खोजी पत्रकारिता पर विराम नहीं लगा है। राडिया टेप कांड के धंधेबाज पत्रकारों पर कोई आँच नहीं आई। फेक न्यूज का चलन

बाक्स-तीन

दूसरा प्रेस आयोग - 1

अध्यक्ष - न्यायमूर्ति पी.के. गोस्वामी
1) सदस्य- आबू अब्राहम- कार्टूनिस्ट
2) प्रेम भाटिया-संपादक, ट्रिब्यून
3) सुरेंद्र नाथ द्विवेदी- पूर्व सांसद
4) मोयनुदीन हेरिस-उर्दू पत्रकार
5) प्रो. रवि जे मथाई- अर्थशास्त्री
6) यशोधर एन. मेहता-एडवोकेट
7) वी.के. नरसिम्हन-संपादक, डकन हेराल्ड
8) फाली एस. नरिमन- सीनियर एडवोकेट
9) सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' संपादक, नवभारत टाइम्स
10) अरुण शौरी- सीनियर फेलो, आई.सी.एस.एस.आर.
11) निखिल चक्रवर्ती- संपादक, मेनस्ट्रीम

कार्यकाल 29 मई, 1978 से 14 जनवरी, 1980

बाक्स-चार

दूसरा प्रेस आयोग -2

अध्यक्ष- न्यायमूर्ति के.के. मैथ्यू
1) सदस्य- न्यायमूर्ति शिशिर कुमार मुखर्जी
2) सदस्य- अमृता प्रीतम-साहित्यकार
3) सदस्य- पी.वी. गाडगिल- पत्रकार
4) सदस्य- इसरत अली सिद्दिकी -संपादक, कौमी आवाज
5) सदस्य- राजेंद्र माथुर- संपादक, नई दुनिया
6) गिरिलाल जैन- संपादक- टाइम्स ऑफ इंडिया
7) के.आर. गणेश- पूर्व केंद्रीय मंत्री
8) मदन भाटिया-एडवोकेट-प्रेम चंद्र वर्मा- प्रधान संपादक, जगत
9) रणवीर सिंह- संपादक, मिलाप
10) प्रो. एच.के. परांजपे-अर्थशास्त्री
11) न्यायमूर्ति ए.एन. मुल्ला

कार्यकाल- 21 अप्रैल, 1980 से 15 अप्रैल, 1982

मीडिया में छाया हुआ है। ये वे घटनाएँ हैं जिनसे मीडिया की साख सिर के बल खड़ी हो गई है।

इन नियामक संस्थाओं में प्रेस परिषद ही है जो संसद के कानून से बनी है। बहुत दिनों तक नागरिक अपनी शिकायतें वहाँ पहुँचाते थे। उसकी सुनवाई होती थी। एक अच्छी परंपरा भी बन गई थी। प्रेस परिषद की कोई उपेक्षा नहीं करता था। न्यायपालिका की तरह सुनवाई होती थी। उस पर निर्णय होता था। उस निर्णय को सभी अखबार छापेंगे और न्यूज एजेंसियाँ उन्हें जारी करेंगी। इस परंपरा के निर्वाह से एक सामाजिक और नैतिक लोकलाज की व्यवस्था बन गई थी। जो अब टूट गई है। प्रेस परिषद में शिकायत अब भी होती है। लेकिन कई दशक हो गए जब उसके निर्णय को कोई नहीं छापता। इसका एक इतिहास है। टाइम्स ऑफ इंडिया में संपादक थे, एच.के. दुआ। उन्होंने प्रेस परिषद में अपने साथ संस्थान के दुराचरण की शिकायत कर एक उदाहरण बना दिया। उस पर निर्णय जो आया वह टाइम्स ऑफ इंडिया के विरूद्ध था। अखबार ने प्रेस परिषद की कोई परवाह नहीं की। देश का एक पुराना, प्रतिष्ठित और बड़ा अखबार जब प्रेस परिषद को उसकी हैसियत बताने पर आमादा हो गया तो प्रेस

परिषद की लाचारी उजागर हो गई। उसके बाद प्रेस परिषद के निर्णय को अखबारों में छापने की जो नैतिक व्यवस्था थी वह समाप्त हो गई। यह घटना तीन दशक पुरानी है। इसका दूसरा पक्ष ज्यादा मायने रखता है। वह यह कि इतने दिनों से प्रेस परिषद का अस्तित्व नाममात्र के लिए है। नियमन की उसे शक्ति कब मिलेगी? यह प्रश्न भी उतना ही पुराना है।

जिन दिनों न्यायमूर्ति पी.बी. सावंत प्रेस परिषद के अध्यक्ष थे उन्हीं दिनों की बात है। उन्होंने पहल की। मीडिया को निरोग बनाने के उपचार पर बात की। एक प्रारूप उन्होंने बनाया। वह मीडिया परिषद का प्रारूप था। उन दिनों सुषमा स्वराज (दिवंगत) सूचना प्रसारण मंत्री थीं। उन्हें वह प्रारूप पी.बी. सावंत के नेतृत्व में हमने सौंपा। उम्मीद थी कि भारत सरकार उसे जारी करेगी। उस पर सुझाव माँगेगी और आवश्यक कदम उठाएगी। जब ऐसा नहीं हुआ तो मीडिया की साख पर संकट को जो भी देख रहा था वह निजी स्तर पर तो चिंतित हुआ। उससे एक चेतना बनी। जिसने आवाज उठाने की प्रेरणा दी। प्रभाष परंपरा न्यास के मंच से पहली बार यह माँग उठी कि मीडिया की वस्तुस्थिति का अध्ययन आवश्यक है। जिसके निष्कर्षों से मीडिया नियमन के उपाय खोजे जा सकते हैं। उस मंच पर उपराष्ट्रपति हामिद अंसारी और प्रेस परिषद के अध्यक्ष न्यायमूर्ति मार्कंडेय काटजू भी थे। कुछ दिनों बाद नेशनल यूनियन ऑफ जर्नलिस्ट (एन.यू.जे.) ने भी इस माँग का समर्थन किया।

नामी पत्रकार इस बारे में क्या सोचते हैं! इस जिज्ञासावश जब कुलदीप नैयर से मैंने बात की तो बहुत संतोष हुआ और आश्चर्य भी। संतोष इसका था कि वे स्वयं प्रयास कर रहे थे कि मीडिया आयोग बनना चाहिए। वे प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह से मिले थे। बात की थी। प्रधानमंत्री ने उनसे एक प्रारूप माँगा। आश्चर्य इस पर हुआ कि कुलदीप नैयर के प्रारूप का भी वही हाल हुआ जो पी.बी. सावंत के प्रारूप का हुआ था। क्यों ऐसा हुआ, यह एक रहस्य से कम नहीं है। उन दिनों प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के मीडिया सलाहकार थे, हरीश खरे। वे हर दृष्टि से इज्जतदार पत्रकार हैं। उनसे जब मैंने मीडिया आयोग के बारे में प्रभाष परंपरा न्यास के प्रस्ताव का उल्लेख किया तो उन्होंने भी मीडिया आयोग बनाए जाने की माँग को उचित ठहराया। अपने स्तर पर उन्होंने कोशिश भी की। लेकिन नतीजा वही रहा जिसे कहते हैं- ढाक के तीन पात।

मीडिया आयोग की जरूरत है या नहीं, इसका किसी को प्रमाण चाहिए तो वह तीन अध्ययनों में उपलब्ध है। सूचना और प्रसारण मंत्रालय ने ये अध्ययन समय-समय पर करवाए हैं। पहला अध्ययन ट्राई (टेलीकाम रेगुलेटरी अथारिटी) से कराया गया। उस समय मंत्रालय को यह तय करना था कि विभिन्न कानूनों, नियमों और प्रावधानों के तहत किसे लाइसेंस दे और किसको रजिस्ट्रेशन दे। वह ट्राई से इस बारे में नीति-नियमन की सलाह चाहता था। ट्राई ने अध्ययन किया और अपनी रिपोर्ट दे दी। उसने स्पष्ट सलाह दी कि हर बात के लिए नीति और नियम निर्धारित होने चाहिए। उसके मापदंड भी सुझाए। उस रिपोर्ट में चिंता प्रकट की गई थी कि तदर्थवाद के कारण मीडिया में एकाधिकारी घराने उभर रहे हैं। जो लोकतंत्र के लिए खतरनाक साबित हो सकते हैं।

जिस समय ट्राई इन बातों का अध्ययन कर रहा था उसी समय सूचना और प्रसारण मंत्रालय ने एडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ कॉलेज ऑफ इंडिया, हैदराबाद से एक अध्ययन कराने का फैसला किया। उसे यह काम सौंपा गया कि वह देखे कि मीडिया में मालिकाना हक का ढाँचा क्या है। अंतरराष्ट्रीय अनुभव क्या हैं और भारत में इस बारे में क्या किया जाना चाहिए। वह रिपोर्ट भी आई। उम्मीद थी कि सूचना और प्रसारण मंत्रालय इन दोनों रपटों के आधार पर एक कार्ययोजना बनाएगी और उस पर व्यापक विचार विमर्श होगा। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। संदेह है कि मीडिया घरानों के दबाव में राजनीतिक हस्तक्षेप से उस प्रक्रिया को रोक दिया गया।

जब इस तरह के अध्ययन प्रशासनिक स्तर पर होते हैं और कोई निर्णय नहीं होता तो एक परंपरा सी बन गई है कि उसे चलाए रखा जाता है और नए अध्ययन के नाम पर समय काटा जाता है। यही उस समय प्रवृत्ति थी। पहले की दो रिपोर्ट को ध्यान में रखकर ट्राई को फिर से अध्ययन और व्यापक अध्ययन का सुझाव इसी प्रवृत्ति का यह उदाहरण भी है और प्रमाण भी। 2008 से 2009 के बीच जो दो अध्ययन कराए गए उस पर कार्ययोजना बनाने के बजाए सूचना और प्रसारण मंत्रालय के सचिव ने मई 2012 में ट्राई को लिखा कि मीडिया से संबंधित हर पहलू का वह अध्ययन कर एक रिपोर्ट दे। ट्राई ने वह रिपोर्ट 15 फरवरी, 2013 को दे दी। उसे ट्राई के वेबसाइट पर

साभार : https://tribune.com.pk/story/472239/judiciary-and-media

देखा और पढ़ा जा सकता है। यह रिपोर्ट एक सलाह के तौर पर है। जिसमें मीडिया के मालिकाना ढाँचे से संबंधित जितने पहलू हो सकते हैं उसकी छानबीन की गई है। यह 108 पेज की रिपोर्ट है। इस पर तरह-तरह की प्रतिक्रियाएँ सामने आई थीं, जिनके विवरण में जाने की जरूरत नहीं है।

लेकिन इस अध्ययन से एक चेतावनी निकली। जिसका संबंध सत्ता-संपत्ति और राजनीति के त्रिकोण से है। जो लोकतंत्र को खोखला बना सकता है। चेतावनी यह है कि मीडिया में एकाधिकारी घराने अस्तित्व में आ गए हैं। वे ही मीडिया को संचालित कर रहे हैं। इससे मीडिया में विविधता और बहुलता का दायरा घट रहा है। लोकतंत्र का दूसरा नाम है-विविधता और बहुलता। जाहिर है कि यह रिपोर्ट एक तकनीकी रिपोर्ट है। इससे ज्यादा यह कहने में समर्थ भी नहीं हो सकती है। लेकिन एक संकेत तो इस रिपोर्ट ने दे ही दिया है कि मीडिया की आंतरिक सेहत कैसी है। यही हमारी चिंता का विषय भी है।

सवाल है कि मीडिया में एकाधिकारी प्रवृत्ति की होड़ क्यों लगी है? इसका जवाब कौन नहीं जानता! इसमें दो प्रवित्तियाँ काम कर रही हैं। पहली का संबंध मुनाफे से है। दूसरी का लक्ष्य है, सत्ता का संरक्षण प्राप्त कर प्रतिद्वंदी को रास्ते से हटा देना। यहीं पर भारत की मीडिया की परंपरा का सवाल राह रोककर खड़ा हो जाता है। हमारे संविधान ने एक लोक कल्याणकारी राज्य की कल्पना की है। संविधान निर्माताओं का यह सपना था कि लोग खुशहाल हों और बेहतर जिंदगी का उन्हें अवसर मिले। सरकार को इस रास्ते पर चलने के लिए जो प्रेरित, संचालित और जरूरत पड़ने पर जनमत का दबाव डालने में समर्थ हो सकता है, वह मीडिया है। यही मीडिया का पारंपरिक और सामाजिक दायित्व है। इस दायित्व की ट्राई की रिपोर्ट में प्रत्यक्ष चर्चा तो नहीं है लेकिन जो तथ्य सामने आए हैं वे किसी को भी चिंता में डालने के लिए काफी हैं। यह काम ट्राई का है भी नहीं। यह काम मीडिया आयोग का है।

ट्राई ने खतरे की घंटी बहुत पहले बजा दी थी। उसे सुनने और सावधान हो जाने और उसे दूर करने का बज्र संकल्प करने

ट्राई ने खतरे की घंटी बहुत पहले बजा दी थी। उसे सुनने और सावधान हो जाने और उसे दूर करने का बज्र संकल्प करने का जिम्मा भारत सरकार का है। ट्राई ने बताया कि कुछ ही घराने हैं जो टीवी चैनल, रेडियो, अखबार और ऑनलाइन में अपना पसारा फैलाए हुए हैं। इसे ही एकाधिकार कहते हैं। जहाँ एकाधिकार होगा वहाँ प्रतिस्पर्धा नहीं रहेगी। तो लोकतंत्र का क्या होगा

का जिम्मा भारत सरकार का है। ट्राई ने बताया कि कुछ ही घराने हैं जो टीवी चैनल, रेडियो, अखबार और ऑनलाइन में अपना पसारा फैलाए हुए हैं। इसे ही एकाधिकार कहते हैं। जहाँ एकाधिकार होगा वहाँ प्रतिस्पर्धा नहीं रहेगी। तो लोकतंत्र का क्या होगा? मीडिया के महासमुद्र में प्रिंट के अंश को इससे समझा जा सकता है कि न्यूज पेपर रजिस्ट्रार के यहाँ छपने वाले की संख्या कितनी है। वह हर साल बढ़ रही है। कुछ साल पहले जो संख्या करीब 70 हजार अखबार और पत्र पत्रिकाओं की थी वह आज दोगुनी हो गई है। 31 मार्च, 2020 का आँकड़ा सबसे ताजा है। इसमें अखबार और पत्रिकाओं की पूरी संख्या 1,43,423 है। बीते एक साल में 1,498 नए रजिस्टेशन हुए हैं। इसमें 54,873 अखबार हिंदी के हैं। अंग्रेजी के 19,766 हैं। जिन प्रिंट संस्थानों ने सालाना अपनी रिपोर्ट दी है उनकी संख्या 32,883 है। जिनमें आधा हिंदी के हैं।

ट्राई की रिपोर्ट में अनुमान लगाया गया था कि मीडिया में मुनाफा का अनुपात 17 प्रतिशत रहेगा। कोरोना की महामारी से पहले यही रफ्तार थी। इस दौरान कोई अध्ययन नहीं हुआ है। लेकिन जहाँ पूरी अर्थव्यवस्था में भारी भूकंप है वहां मीडिया में उसका दुष्प्रभाव उस स्तर पर नहीं है। एक अनुमान है कि इस समय भी मीडिया में मुनाफा और खासकर प्रिंट में 7 प्रतिशत बना हुआ है। बुनियादी सवाल तो यह है कि क्या इन मीडिया घरानों से देश में लोकतांत्रिक चेतना का विस्तार हो रहा है? क्या लोगों को अपने अधिकारों से मीडिया अवगत करा रही है। क्या मीडिया साधारण आदमी की आवाज बन पा रहा है। क्या वह उस नींव पर खड़ा है जिस पर भारत की पत्रकारिता की शान बनी। क्या वह उन सामाजिक और लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा कर पा रहा है। यह तर्क बेमानी है कि परिस्थितियाँ बदल गई हैं। पत्रकारिता के शाश्वत मूल्य को बदली परिस्थिति में भी कसौटी के रूप में ही देखना चाहिए।

यह भी देखने की जरूरत है कि मुनाफे से प्रेरित मीडिया क्या अपना मूल काम सही तरीके से कर पा रही है। अगर वह अपना मूल काम करे तो नागरिक को निर्णय करने में मदद मिलेगी। उसके विवेक पर कोई आँच नहीं आएगी। ट्राई की रिपोर्ट में छिपा सत्य यह है कि मीडिया में इन दिनों एक सामाजिक बुराई आ गई है। मीडिया एक सार्वजनिक संस्था होती है। इसीलिए उसे चौथा खंभा भी कहते हैं। वह इन दिनों कारपोरेट घरानों का खंभा हो गया है। हम जानते हैं कि कारपोरेट घराने एक ही लक्ष्य से प्रेरित होते हैं। वह मुनाफा होता है। उनकी कार्यशैली में तटस्थता, निष्पक्षता और लोकतांत्रिक मूल्यों का अभाव होता है।

इसीलिए हमारी मीडिया में कम से कम ये ग्यारह रोग लग गए हैं। एक-पेड न्यूज। दो-पेड चैनल। तीन-कारपोरेट और पोलिटिकल लॉबिंग। चार-खबरों में राजनीतिक भेदभाव। पाँच-गैर जिम्मेदाराना रिपोर्टिंग और सनसनी पर जोर। छः-गैर बराबरी को बढ़ावा। सात-विदेशी पूँजी का दुष्प्रभाव। आठ-खबरों को दबाना। नौ-मानवाधिकार की उपेक्षा। दस-एकाधिकारी घरानों की मनमर्जी और सरकार पर धौंस। ग्यारह-फेक न्यूज। जिससे मीडिया की साख पर विपदा के बादल छा गए हैं। मीडिया इन रोगों के कारण अमावस की रात काट रहा है। उसे पूर्णिमा के चाँद की प्रतीक्षा है। ट्राई की रिपोर्ट और दूसरी रिपोर्टें इन रोगों की पहचान करती हैं। मीडिया आयोग की जरूरत निदान और समाधान के लिए है, अगर उसका गठन हो और उसे ये संदर्भ

जाँच के लिए दे दिए जाएँ।

संसदीय लोकतंत्र हमने अपनाया है। यह शासन व्यवस्था प्रमुख रूप से दल प्रणाली और स्वतंत्र प्रेस से संचालित होती है। जिसमें जवाबदेही की केंद्रीय भूमिका होती है। आज दल प्रणाली जितनी खोखली हो गई है। उससे ज्यादा स्वतंत्र प्रेस पर सवाल खड़े हो गए हैं। जिस किसी को भी 'पेड न्यूज' संबंधी बीमारी को जानना हो तो उसे सूचना प्रौद्योगिकी संबंधी संसद की स्थाई समिति की 47वीं रिपोर्ट को एक धर्मग्रंथ की तरह पढ़ना चाहिए। लोग धर्मग्रंथ इसलिए पढ़ते हैं कि वे खुद को जान और समझ सकें। संसद की यह रिपोर्ट मीडिया की आंतरिक और अद्यतन स्थितियों की गहरी पड़ताल करती है। हर दृष्टि से रिपोर्ट अत्यंत महत्वपूर्ण है। मीडिया को आइना दिखाने वाली यह रिपोर्ट क्या भारत सरकार के मन को बदल सकी है?

इस रिपोर्ट की कई विशेषताएँ हैं। स्थाई समिति ने 'पेड न्यूज' पर जल्दीबाजी में रिपोर्ट नहीं दी है। इसने तीन साल अध्ययन में लगाए। हर पहलू से जाँचने और परखने के गहरे प्रयास को रिपोर्ट में पढ़ा जा सकता है। हालाँकि स्थाई समिति के अध्यक्ष राव इंद्रजीत सिंह तब कांग्रेस के सदस्य थे। फिर भी उन्होंने स्थाई समिति का दायित्व का यथोचित निर्वाह किया है। जहाँ पर समिति को सरकार के रवैये से शिकायत है वहाँ उसे स्पष्ट रूप में व्यक्त किया गया है। पूरी रिपोर्ट पढ़ने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि 'पेड न्यूज' के बारे में जानकारी जितनी है, उससे कहीं ज्यादा इसका फैलाव हो गया है। इसे रोकने के लिए सरकार को जो कदम उठाने चाहिए उससे वह बच रही है। क्या सरकार का ढुलमुल रवैया मीडिया के एकाधिकारी घरानों के दबाव के कारण है? इसका भी जवाब 'हाँ' में रिपोर्ट में जगह-जगह मिल जाता है। प्रभाष परंपरा न्यास के समारोह में राव इंद्रजीत सिंह इसी विषय पर 15 जुलाई, 2013 को बोले। उनके भाषण ने अपनी सार्थक छाप छोड़ी। उनका यह कहना बहुत मायने रखता है कि सरकार पिछले कई सालों से 'पेड न्यूज' रोकने के सुझावों पर कुंडली मारे बैठी हुई है। इसका विवरण रिपोर्ट में मिल जाता है। मीडिया की साख गिरी है। ऐसा क्यों हुआ? यह कब से हुआ है? इन दो सवालों के जवाब रिपोर्ट में विस्तार से हैं। साफ है कि एक ऐसा दौर भी रहा है जब लोग सच जानने के लिए मीडिया का सहारा लेते थे। आजादी से पहले मीडिया ने स्वतंत्रता संग्राम को बढ़ाया। ऊँचे आदर्श प्रस्तुत किए। आजादी के बाद कई दशकों तक मीडिया का विकास स्वस्थ पद्धति से होता रहा। लेकिन कब और क्यों वह सिलसिला टूटने लगा? इसके बारे में रिपोर्ट करीब-करीब चुप है। इसका कारण यह लगता है कि समिति ने इस विषय को अपने काम के दायरे से बाहर माना। साफ है कि यह एक अलग विषय है जिसकी गहरी छानबीन जरूरी है।

समिति के अध्ययन का विषय 'पेड न्यूज' है। रिपोर्ट के इस अंश से हम जान सकते हैं कि 'पेड न्यूज' कब से चलन में है। 'समिति नोट करती है कि स्वतंत्रतापूर्व काल में मीडिया का विकास स्वस्थ पद्धति से हुआ था तथा कुछ एक दशकों तक यह इसी प्रकार कार्य करता रहा तथा इसके अधिक शक्तिशाली होते ही इसका ह्रास होना आरंभ हो गया। सभी यह जान गए कि यह लोगों तक पहुँचने का एकमात्र माध्यम है, क्योंकि इसकी साख बहुत अधिक थी। इस पृष्ठभूमि में जो प्रत्याशी चुनाव लड़ रहे थे वे यह जान गए कि अन्य स्रोतों जैसे विज्ञापन तथा प्रचार के अन्य साधनों को भुगतान करने से मीडिया को येन-केन-प्रकारेण प्रभावित करना अधिक लाभप्रद होगा, इस प्रकार इस कदाचार को बढ़ावा मिला।' समिति ने पाया है कि पिछले दो दशकों के दौरान मीडिया में कारपोरेट घराने बने हैं और बढ़े हैं। वे सिर्फ मुनाफे से प्रेरित हैं मीडिया की स्वतंत्रता, स्वायत्तता और साख में इसलिए कमी आई है, क्योंकि संपादक की संस्था नगण्य हो गई है। 'पेड न्यूज' एक रोग है। भ्रष्टाचार तो है ही। मीडिया संस्थानों के भ्रष्ट हो जाने और नाजायज मुनाफा कमाने का इससे सटीक उदाहरण दूसरा नहीं हो सकता।

'पेड न्यूज' के अनेक प्रकार हैं। इस बारे में समिति ने विस्तार से जानकारी दी है। अब यह काम सरकार का है कि वह इससे निपटने के लिए एक तंत्र बनाए। समाचार और विज्ञापन के बीच अंतर जैसे-जैसे कम हुआ है वैसे-वैसे 'पेड न्यूज' बढ़ा है। 'पेड न्यूज' के धंधे में सभी शामिल हैं। अखबार, रेडियो, टेलीविजन के चैनल और इंटरनेट। समिति की सलाह मानकर सरकार यह प्रबंध कर सकती है कि विज्ञापन का जो अंतर कम हो गया है, वह दूर किया जा सके और उसके लिए एक तंत्र बने। पहली जरूरत यह है कि 'पेड न्यूज' की एक व्यापक परिभाषा हो। यह काम कौन करे? जब मीडिया पूरी तरह 'पेड न्यूज' के धंधे में लिप्त हो तो यह काम सरकार का है कि वह पहल करे। यह एक कानून से संभव है। समिति ने सरकार को इसके लिए कदम उठाने की सलाह दी है और कहा है कि वह अपनी कार्रवाई से अवगत कराए।

सबसे बड़ी समस्या यह है कि 'पेड न्यूज' को प्रमाणित कैसे किया जाए? इस बारे में समिति ने विचार कर कुछ सुझाव दिए हैं उसका सुझाव है कि 'मंत्रालय एक नियामक निकाय बनाए।' यह निकाय शिकायतों पर विचार करे। परिस्थितिजन्य साक्ष्य के अलावा कवरेज पैटर्न पर वह निकाय ध्यान दे। समिति ने इस पहलू पर

स्वतंत्रतापूर्व काल में मीडिया का विकास स्वस्थ पद्धति से हुआ था तथा कुछ एक दशकों तक यह इसी प्रकार कार्य करता रहा तथा इसके अधिक शक्तिशाली होते ही इसका ह्रास होना आरंभ हो गया। सभी यह जान गए कि यह लोगों तक पहुँचने का एकमात्र माध्यम है, क्योंकि इसकी साख बहुत अधिक थी। इस पृष्ठभूमि में जो प्रत्याशी चुनाव लड़ रहे थे वे यह जान गए कि अन्य स्रोतों जैसे विज्ञापन तथा प्रचार के अन्य साधनों को भुगतान करने से मीडिया को येन-केन-प्रकारेण प्रभावित करना अधिक लाभप्रद होगा, इस प्रकार इस कदाचार को बढ़ावा मिला

भी ध्यान दिया है और तथ्य एकत्र किए हैं कि 'पेड न्यूज' के कारण क्या हैं। वह इस नतीजे पर पहुँची है कि मीडिया के संपादकों की भूमिका का क्षय हुआ है। इस अर्थ में संसद की यह पहली रिपोर्ट है जो संपादक संस्था के क्षरण पर चिंता प्रकट कर रही है। जो रोग मीडिया को लगा है उसका यह एक लक्षण है। उससे यह समझा जा सकता है कि लोकतंत्र की रक्षा और उसे मजबूती दिलाने के लिए बनी मीडिया ही मर्यादाहीन हो गई है। आजादी के बाद पहले और दूसरे मीडिया आयोग की सिफारिशों पर मीडिया के लिए आंतरिक मर्यादाएँ बनी थीं। वे टूट गई हैं। पहली बार उनकी ओर संसद की इस समिति ने स्पष्ट शब्दों में ध्यान खींचा है। यह बताया है कि बाजारवाद के इस दौर में पत्रकारों की आजादी छिन गई है। उसे बिना बहाल किए गाड़ी पटरी पर नहीं आ सकती। समिति ने भी 'मीडिया आयोग' की आवश्यकता बताई है। जिसे रिपोर्ट के इस अंश को पढ़कर समझना सरल है। 'मीडिया कंपनियों और कारपोरेट एंटिटीज के बीच निजी संधियाँ 'पेड न्यूज' की सर्वाधिक खतरनाक अभिव्यक्ति है। निजी संधियों को मीडिया कंपनी और गैर मीडिया कंपनी के बीच एक समझौता के रूप में माना जाता है। जिसमें गैर मीडिया कंपनी अपने कुछ शेयर मीडिया कंपनी को विज्ञापन, स्थान और अनुकूल कवरेज देने के बदले प्रदान करता है। यह परिदृश्य पत्रकारिता की नैतिकता का सरेआम उल्लंघन करता है। इससे 'पेड न्यूज' की बुराई पैदा होती है।'

'पेड न्यूज' नाजायज मुनाफे का धंधा है इसे कालाबाजारी भी कह सकते हैं। समिति ने अपनी जाँच में क्रास मीडिया होल्डिंग को भी बड़ा कारण माना है। इससे एकाधिकार बढ़ता है। सूचना के मुक्त प्रवाह में बाधा उत्पन्न होती है। एक बड़ी विचित्र-सी बात है कि 'पेड न्यूज' को रोकने के लिए जब भी कानूनी प्रावधान करने के सुझाव आते हैं, तब सरकार और मीडिया घरानों का एक ही तर्क होता है। उसकी भाषा अलग रहती है, सार एक होता है। यह कि प्रेस की स्वतंत्रता बनी रहनी चाहिए। इसलिए स्वनियमन को रामबाण बताया जाता है। समिति ने भी अपनी जाँच में पाया कि स्वनियमन आँख का धोखा है। इसके उदाहरण रिपोर्ट में हैं। स्थायी समिति की रिपोर्ट में इसका उल्लेख तो नहीं है, लेकिन यह कहना उचित होगा कि अंग्रेजी अखबार द हिंदू अपवाद है। उसमें एक खबरपाल (रीडर्स एडीटर) का पद बनाया गया है। जो पाठकों की शिकायतों की जाँच करता है।

'पेड न्यूज' नाजायज मुनाफे का धंधा है इसे कालाबाजारी भी कह सकते हैं। समिति ने अपनी जाँच में क्रास मीडिया होल्डिंग को भी बड़ा कारण माना है। इससे एकाधिकार बढ़ता है। सूचना के मुक्त प्रवाह में बाधा उत्पन्न होती है। एक बड़ी विचित्र-सी बात है कि 'पेड न्यूज' को रोकने के लिए जब भी कानूनी प्रावधान करने के सुझाव आते हैं, तब सरकार और मीडिया घरानों का एक ही तर्क होता है। उसकी भाषा अलग रहती है, सार एक होता है। यह कि प्रेस की स्वतंत्रता बनी रहनी चाहिए। इसलिए स्वनियमन को रामबाण बताया जाता है

प्रौद्योगिकी मंत्रालय की जो बारहवीं रिपोर्ट अगस्त 2015 में आई वह बताती है कि 47वीं रिपोर्ट पर सूचना और प्रसारण मंत्रालय ने क्या-क्या कदम उठाए। इस स्थाई समिति के अध्यक्ष अनुराग सिंह ठाकुर थे। जिसके सदस्यों में लालकृष्ण आडवाणी भी थे। 47वीं रिपोर्ट में संसद की स्थाई समिति ने सिफारिश की थी कि मीडिया की वस्तुस्थिति का अध्ययन करने के लिए वह मीडिया आयोग बनाए। इस दिशा में निर्णय कर संसद को तीन महीने में रिपोर्ट दे। अनुराग सिंह ठाकुर समिति ने अपनी रिपोर्ट में इस बात पर अप्रसन्नता प्रकट की है कि सूचना प्रसारण मंत्रालय ने मीडिया आयोग के गठन की दिशा में कोई कदम नहीं उठाया है। मीडिया आयोग के गठन पर भारत सरकार का रवैया पहले जैसा ही है। कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। इसके कारणों की तह में जाने से कई बातें स्पष्ट हो जाती हैं। पहली यह कि भारत सरकार ने इसे न करने लायक काम समझ लिया है।

लेकिन मीडिया की साख तभी कायम होगी जब इन प्रश्नों पर नीति और नियमन का निर्णय होगा। भारतीय प्रेस परिषद को वैधानिक दृष्टि से शक्ति संपन्न बनाना। कार्रवाई और दंड के अधिकारों से लैस करना, प्रेस स्वामित्व स्थिति का गंभीर अध्ययन, एकाधिकार और केंद्रीकरण को समाप्त करने के लिए राष्ट्रीय कानून, समाचार-विचार और विज्ञापन में समानुपातिक संतुलन स्थापित करना/ कानून बनाना, एक व्यक्ति या एक समूह या परिवार को एक ही माध्यम रखने का अधिकार, राष्ट्रीय और बड़े प्रेस प्रतिष्ठानों में प्रबंधक और संपादक के बीच प्रबुद्ध वर्ग या नागरिक समाज के प्रतिनिधियों के न्यास मंडल की स्थापना करवाना, संपादक संस्था को पुनर्जीवित करना। प्रबंधक, ब्रांड मैनेजर और विज्ञापनदाताओं के कार्यक्षेत्रों का वैधानिक रूप से निर्धारण और संपादन, कार्यक्षेत्र की स्वतंत्रता की बहाली, प्रेस और उद्योग-व्यापार को सख्ती से 'डीलिंक' करवाना, स्थानीय लघु व मझोले समाचार पत्रों को सुरक्षा, विदेशी शक्तियों व पूँजी द्वारा भारतीय अभिमत को प्रभावित करने की कोशिशों की रोकथाम, भाषाई समाचार एजेंसियों की पुनर्स्थापना, कस्बों व ग्रामीण क्षेत्रों में पत्रकारिता शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्था, प्रेस विकास आयोग की स्थापना। भाषाई प्रेस पर विशेष ध्यान, डी.ए.वी.पी., पी.आई.बी., आर.एन.आई. और प्रदेशों के जनसंपर्क कार्यालय आदि के कार्यों की विवेचनात्मक समीक्षा आवश्यक है, संस्करणों की संख्या व सीमाक्षेत्र निर्धारण, सोशल ऑडिटिंग की व्यवस्था। प्रेस की जवाबदारी निर्धारण, पत्रकारों की सुरक्षा, स्वतंत्रता और स्थायित्व की व्यवस्था, पूर्व के दोनों आयोगों के सुझावों की समीक्षा और अधूरे कार्यों को पूरा कराने का उत्तरदायित्व, प्रेस में विदेशी पूँजी नियोजन की अनुमति की जाँच और भविष्य में इसके रोकथाम के उपाय, मनमोहन सिंह सरकार द्वारा मनोरंजन क्षेत्र में 74 से 100 प्रतिशत और प्रेस में 26 से 49 प्रति की विदेशी पूँजी नियोजन का मार्ग

साफ करने की परिस्थितियों और विदेशी दबावों का अध्ययन, राष्ट्रीय प्रेस आयोग के साथ-साथ क्षेत्रीय आयोगों के गठन की आवश्यकता, प्रेसपत्ति, प्रबंधक (विज्ञापन, वितरण मैनेजर आदि) तथा मान्यता प्राप्त संपादक और अन्य वरिष्ठ पदों (संयुक्त संपादक) स्थानीय संपादक, ब्यूरो प्रमुख, चीफ रिपोर्टर आदि) पर आसीन पत्रकार प्रति तीसरे वर्ष अपनी चल-अचल संपत्ति की घोषणा करें।

इस समय दो विवादों पर बहस जारी है। पहला विवाद है जिसका संबंध सुदर्शन टी. वी. के प्रोग्राम 'बिंदास बोल' से शुरू हुआ है। दूसरे का संबंध रिपब्लिक टी.वी. के टी.आर.पी. में हेराफेरी के आरोप से जुड़ा हुआ है। पहले विवाद पर भारत सरकार ने एक हलफनामा सुप्रीम कोर्ट में दिया। जिसमें सरकार ने माना है कि प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में नियमन के उल्लंघन की घटनाएँ ज्यादा नहीं हैं। लेकिन डिजिटल मीडिया में अराजकता है। भारत सरकार ने डिजिटल मीडिया को अपने हलफनामे में समानांतर मीडिया कहा है। इन दो मसलों के अलावा जो तीसरी बहस इस समय जो है, उसका संबंध 'प्रेस और पत्रिका पंजीकरण विधेयक, 2019' से है। इस प्रस्तावित विधेयक में डिजिटल मीडिया को भी शामिल किया गया है। स्वच्छंद डिजिटल मीडिया में इस पर आग लगी हुई है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की सरकार अपने निर्णयों के लिए जानी जाती है, न कि समस्याओं को टालने के लिए। जो विधेयक प्रस्तावित है, उस पर सुझाव सूचना प्रसारण मंत्रालय को बड़े पैमाने पर मिल गए हैं। अगर यह विधेयक संसद में आता है और पारित होता है तो पहली बार पी.आर.बी. कानून, 1867 में परिवर्तन होगा। इससे सुधार की दिशा में उठा कदम मानना चाहिए। मेरी जानकारी अगर सही है तो कह सकता हूँ कि भारत सरकार जल्दी ही मीडिया काउंसिल बनाने का निर्णय करने जा रही है। अगर ऐसा हुआ तो मीडिया में नीति और नियमन की पुरानी माँग काफी हद तक पूरी हो सकती है। एक ही छतरी के तहत पूरी मीडिया रहेगी। उसके अनुरूप संस्थाओं, नियमों और नियमन के नए दौर को देश देख सकेगा जिसका लंबे समय से इंतजार किया जा रहा है। इससे छपे शब्दों का जादू लौटेगा और पत्रकारों के बोले कथन की साख बेहतर बनेगी। फिर भी मीडिया की वस्तुस्थिति का समग्रता में अध्ययन का प्रश्न बना ही रहेगा जब तक भारत सरकार मीडिया आयोग का गठन जाँच आयोग कानून के तहत नहीं करती।

सदंर्भ एवं टिप्पणियां

1. राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का अभिभाषण, 16 मई, 1952, जिसमें उन्होंने प्रेस आयोग बनाने की आवश्यकता का उल्लेख किया
2. पहले प्रेस आयोग की रिपोर्ट
3. दूसरे प्रेस आयोग की रिपोर्ट
4. प्रेस परिषद के अध्यक्ष पी.बी. सावंत का मीडिया काउंसिल संबंधी ड्राफ्ट
5. ट्राई (टेलीकॉम रेगुलेटरी अथारिटी ऑफ इंडिया) की मीडिया स्वामित्व पर रिपोर्ट 2009
6. ट्राई (टेलीकॉम रेगुलेटरी अथारिटी ऑफ इंडिया) की मीडिया स्वामित्व पर रिपोर्ट 2012
7. ट्राई (टेलीकॉम रेगुलेटरी अथारिटी ऑफ इंडिया) की मीडिया स्वामित्व पर रिपोर्ट 2013
8. सूचना प्रौद्योगिकी संबंधी स्थाई समिति (2012-13), 15वीं लोकसभा, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, पेड न्यूज से संबंधित मुद्दे पर 47वाँ प्रतिवेदन, मई 2013
9. सूचना प्रौद्योगिकी संबंधी स्थाई समिति (2012-13), 15वीं लोकसभा, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, पेड न्यूज से संबंधित मुद्दे पर 47वाँ प्रतिवेदन पर 12वीं कार्रवाई रिपोर्ट, अगस्त 2015
10. ए.एस. पनीरसेलवन का स्वनियमन पर हिंदू अखबार में 25 जनवरी 2021 का लेख पेज नंबर 7 पर
11. वायर में अनिरुद्ध निगम का प्रेस रजिस्ट्रेशन विधेयक के ड्राफ्ट पर लेख
12. मसौदा प्रेस और पत्रिका पंजीकरण विधेयक, 2019
13. प्रिंट मीडिया पर रजिस्ट्रार ऑफ न्यूज पेपर ऑफ इंडिया की रिपोर्ट, 31 मार्च 2018
14. दि हाईलाइट्स ऑफ दि इंडियन प्रेस इन 2019-20 (31 मार्च 2020)
15. मीडिया आयोग क्यों जरूरी है- रामबहादुर राय, प्रथम प्रवक्ता, 1 जून 2013
16. पेड न्यूज के जंजाल में फंसी मीडिया- रामबहादुर राय, साहित्य अमृत, अगस्त 2015
17. मीडिया का अंडरवर्ल्ड, पेड न्यूज, कारपोरेट और लोकतंत्र- दिलीप मंडल
18. इंडियाज न्यूज पेपर रिवोल्यूशन, रॉबिन जेफ्री
19. मीडिया मिशन से बाजारीकरण तक, रामशरण जोशी
20. मीडिया के एकाधिकार को ध्वस्त करने की जरूरत, प्रणंजाय गुहा ठकुराता
21. मीडिया इथिक्स: ट्रुथ, फेयरनेस एंड ऑब्जेक्टिविटी 'मेकिंग एण्ड ब्रेकिंग न्यूज', प्रणंजाय गुहा ठकुराता
22. 'पेड न्यूज' को बढ़ावा देती मनमोहन सरकार-रामबहादुर राय, यथावत 16-31 अगस्त 2013
23. पुस्तक-काली खबरों की कहानी.... रिपोर्ट जो दबा दी गई-रामबहादुर राय, संपादक
24. प्रेस विधि एवं अभिव्यक्ति स्वातंत्रय, डॉ. हरबंश दीक्षित, भारत का संविधान, परिशिष्ट-1 पेज 191
25. सिक्सटीन स्टोर्मी डेज: द स्टोरी ऑफ द फर्स्ट अमेंडमेंट टू द कांस्टीट्युशन ऑफ इंडिया, अध्याय-6, त्रिपुरदमन सिंह, पेज 192
26. चिरंतन भारत: इंडिया फर्स्ट फाउंडेशन का मासिक प्रकाशन, 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता बहुमूल्य है, उसे अक्षुण्ण रखिए', जगदीश शरण वर्मा, दिसंबर 2009 पेज 54
27. साहित्य अमृत: साहित्य एवं संस्कृति का संवाहक, मासिक 'मीडिया विशेषांक', अगस्त 2015, पेड न्यूज के जंजाल में फँसी मीडिया, रामबहादुर राय, पेज 38

उमेश उपाध्याय

मीडिया में टेक्नोलॉजी भस्मासुर या कल्पवृक्ष

"बायोटेक और इन्फोटेक की मौजूदा क्रांति का नेतृत्व इंजीनियरों, उद्यमियों और वैज्ञानिकों के हाथों में है। अपने निर्णयों के राजनीतिक परिणामों को ये शायद ही समझ पाते हैं, क्योंकि ये किसी का भी प्रतिनिधित्व नहीं करते। क्या समय नहीं आ गया है कि विश्व की संसदें (चुनी हुई विधायिकाएँ) और (राजनीतिक) दल अब इसकी कमान संभालें।"

-युवाल नोह हरारी[1]

"अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, हिंसा फैलाने की स्वतंत्रता नहीं है।"

-जोनाथन ग्रीनब्लेट (न्यूयोर्क टाइम्स, 6 जनवरी 2021)[2]

आइये कुछ पलों के लिए भविष्य में चलते हैं।

फरवरी 2025 :

कंधे पर लैपटॉप बैग लटकाए अविनाश ने न्यूयार्क के अपमार्केट ईस्टविलेज की अपनी सोलहवीं मंजिल के फ्लैट के बाहर घंटी के बटन को दबाया ही था कि अंदर से मीठी सी आवाज आई, "कौन? अविनाश, अभी खोलती हूँ।"

अविनाश ने बाहर से ही कहा, "हाँ, भावना, मैं ही हूँ।"

इतना कहते ही दरवाजा खुदबखुद खुल गया। बैग को सोफे के बगल वाली मेज पर रखकर अविनाश जूते उतार ही रहा था कि फिर से आवाज आई "क्या बात है? आज कुछ ज्यादा ही थके हुए लग रहे हो, अविनाश?"

"हाँ, तुम ठीक कह रही हो, आज कुछ ज्यादा ही काम था ऑफिस में," धीमी आवाज में अविनाश बुदबुदाया।

"देखो, तुम्हारा शुगर लेवल भी अभी कुछ कम है। टी मेकर पर तुम्हारी गर्मागर्म चाय तैयार है। शुगर लेवल के हिसाब से आज थोड़ी अधिक मीठी बनी है।" वह आवाज बोली।

अविनाश उठा और अपने स्टूडियो अपार्टमेंट की किचनेट से जाकर टी मेकर के नीचे ताजा तैयार गरमागरम चाय का प्याला उठा लाया। चाय एकदम परफेक्ट थी। चाय की एक बड़ी सी सुकून भरी चुस्की लेने के बाद ज्यों ही उसने अपने सिर को सोफे के सिरहाने टिकाया, उसके म्यूजिक सिस्टम से मद्धम आवाज में लता मंगेशकर की आवाज में गीत बज उठा "तुम न जाने किस जहां में खो गए....."

अविनाश जब भी थका होता तो 50 के दशक का एस. डी. बर्मन का ये गाना उसे बड़ा सुकून देता था। आज उसे यों भी भावना की बहुत याद आ रही थी।

भावना उसकी पत्नी जो न्यूयार्क से हजारों मील दूर भारत के शहर गुड़गांव में उनकी नन्हीं सी जान सलोनी के साथ रह रही है। अविनाश एक आईटी इंजीनियर है और काम के कारण कई बार महीनों न्यूयॉर्क में रहना उसकी मजबूरी है। भावना दिल्ली विश्वविद्यालय में पढ़ाती है सो पति के साथ आ नहीं सकती।

तो फिर जब वह दरवाजे के बाहर खड़ा था तो उसे भावना की आवाज कैसे सुनाई दी?

वो कौन था जिसने उसकी चाय तैयार की और उसके मन की स्थिति को पढ़कर उसके अनुकूल गाना भी चला दिया?

ये सब किया 'मशीनी बुद्धि' पर आधारित उसके घर के स्वचालित सिस्टम ने। अविनाश के घर आने के क्रम को अगर सिलसिलेवार तरीके से देखा जाए तो आप पाएंगे कदम-कदम पर एक कंप्यूटर प्रोग्राम उसके घर को संचालित कर रहा था।

जब वह कार पार्किंग में पहुँचा था, तो फोन

प्रौद्योगिकी के विकास के साथ-साथ मनुष्य का जीवन धीरे-धीरे मशीनों के नियंत्रण में चला गया है। मीडिया अधिकांशतः तकनीकी से ही नियंत्रित हो रही है और आने वाले समय में इस पर अनिवार्यतः तकनीकी नियंत्रण स्थापित हो जाएगा। तब क्या होगा, एक आकलन

के जीपीएस से जुड़े उसके घर के कंप्यूटर को पता चल चुका था कि अविनाश पहुँचने ही वाला है। यों भी उसकी कलाई पर बँधी एपल वॉच उसके सारे सिस्टम से जुडी हुई थी। 5 जी आने के बाद बिग डेटा में भी लेटेंसी खत्म हो गई थी सो उसके हर सिस्टम में सेकंड के सौवें हिस्से तक का तारतम्य बना हुआ था। दरवाजे के बाहर खड़े हुए सबसे पहले कंप्यूटर ने वहाँ के कैमरे को आदेश दिया था कि रेटिना का स्कैन करे और बताए कि दरवाजे पर खड़ा व्यक्ति अविनाश ही है। स्कैन से जब पता चल गया कि वह अविनाश ही था तो दूसरी परत की सुरक्षा जाँच के तहत कंप्यूटर ने ही भावना की आवाज में उससे पूछा था, "आ गए, अविनाश?" और जब अविनाश ने जवाब दिया था तो उसकी आवाज का ध्वनि परीक्षण करने के बाद ही कंप्यूटर ने दरवाजे पर लगे स्वचालित मेकैनिकल सिस्टम को आदेश दिया था और बगैर चाबी के ही दरवाजा खुल गया था।

अविनाश की आँखों की पुतली और उसकी त्वचा का स्कैन उसके सोफे पर बैठते ही हो गया था। जिससे कंप्यूटर को पता चला था कि अविनाश का एनर्जी लेवल उसके खून में शुगर का स्तर कम होने से नीचे चला गया है।

अविनाश अपनी पत्नी से बेहद प्यार करता है। इसी कारण उसने अपने न्यूयार्क वाले 'स्मार्ट घर' को चलाने वाले कंप्यूटर प्रोग्राम का नाम भी भावना ही रख दिया था। पत्नी की आवाज के नमूने कंप्यूटर में फिट कर दिए थे इसलिए उसे वही आवाज कंप्यूटर से भी सुनाई देती थी। पत्नी से हजारों मील दूर अविनाश को पत्नी का वर्चुअल साथ लगातार मिल रहा है। ये अलग बात है कि ये 'वर्चुअल' नजदीकी भावना के प्रति उसकी चाहत को अकेलेपन के पलों में और बढ़ा देती है। और उसे लगता है कि वह उसी पल दौड़ कर पत्नी को गले लगा ले।

आपको शायद लग रहा है कि ये कोई साइंस फिक्शन है। जी नहीं, ये सब अब किसी कवि की ख्यालों की उड़ान नहीं है। ये आज नहीं तो बल्कि अगले दो चार बरसों में यथार्थ रूप में होने जा रहा है। इसके कई हिस्से आज स्मार्ट घरों में बाकायदा चालू हैं ही।

आपको यकीन नहीं होता तो फिर 2025 से लौट चलते हैं सितंबर 2019 में। आज की सचाई को जानने के लिए ये जरूरी भी है।

सितम्बर 2019

कम्पनी के काम से अविनाश गुड़गांव से चेन्नई आया हुआ है। अगले महीनों में दशहरा और दीपावली के त्योहार आने वाले हैं। छह महीने पहले उसकी शादी हुई थी। पर उसके बाद से आज तक अविनाश ने भावना के लिए अकेले जाकर कभी साड़ी नहीं खरीदी। उसे लगा कि चटकीले रंग की कांजीवरम साड़ी में उसकी गौरवर्णा भावना खूब खिलेगी। टी नगर के नल्ली साड़ीज के शोरूम पर चटख लाल और पीले रंग वाली पारंपरिक पटोला डिजाइन की साड़ी को लेकर अविनाश ने अपना क्रेडिट कार्ड स्वाइप किया ही था कि उसके फोन की घंटी बज उठी।

अविनाश अभी स्टोर के अंदर ही था। दूसरी तरफ से आवाज सुनाई दी "सर ये एबीसी बैंक से कॉल है। क्या आपने अभी चेन्नई में नल्ली साड़ीज में कुछ पेमेंट किया है?"

एक हाथ से साड़ी के पैकिट को सँभालता हुआ और दूसरे हाथ से अपने पर्स में क्रेडिट कार्ड को रखता हुआ अविनाश हल्का सा झल्ला उठा था। उसे एयरपोर्ट जाने में देर जो हो रही थी।

"हाँ भई, मैंने अभी पेमेंट किया है।" तकरीबन चिल्ला कर अविनाश बोला।

दूसरी तरफ से आवाज आई "थैंक यू फॉर कन्फर्मिंग। हैप्पी शॉपिंग एंड हैव ए गुड डे सर।"

ऐसे कॉल आना अब सामान्य सी बात है। सामान्य से दिखने वाले इस कॉल के पीछे एक पूरा का पूरा स्वचालित सिस्टम काम करता है जो कुछ ही पलों मे आपके खरीद व्यवहार की विवेचना करके आपको आगाह करने की कोशिश करता है। इसमें कंप्यूटर और इंटरनेट का एक पूरा जाल सक्रिय होता है। आर्टिफिशियल इटेलिजेंस और मशीनी बुद्धि का इस्तेमाल करके कंप्यूटर ये पता कर लेता है कि आपने रूटीन से हटकर कुछ असामान्य किया है। इसी कारण आपको अकसर बैंक से फोन तभी आता है जब आप 'पैटर्न' से हटकर कोई खरीदारी करते हैं। 'पैटर्न' यानि आवृत्ति की कुछ सेकंड में संगणना, उसकी समालोचना और फिर उसके आधार पर कुछ निश्चित निष्कर्ष निकालना। सिर्फ निष्कर्ष निकालकर रह जाना नहीं, बल्कि उस निष्कर्ष के आधार पर कुछ एक्शन लेना। यही तो है बिग डेटा पर आधारित आर्टिफिशियल इटेलिजेंस।

वैसे आप थोड़ा गहराई से सोचकर देखें तो हमारे आसपास हो रही घटनाओं की हमारी बुद्धि अपने स्मृतिकोष में संचित अनुभवों के आधार पर गणना करती है। वह निष्कर्ष ही हमारी क्रिया अथवा प्रतिक्रिया का आधार बनता है। क्रिया-प्रतिक्रिया की इसी आवृत्ति में हमारे सामान्य जीवन का अधिकांश समय निकल जाता है। शरीर की तंत्रिकाओं के माध्यम से हमारी बुद्धि, मन और इंद्रियों में लगातार संवाद बना रहता है। कई क्रियाकलाप तो सिर्फ आवृत्तियों पर आधारित है। इनके लिए बुद्धि को कोई जोर नहीं लगाना पड़ता और वे स्वयमेव ही हो जाते दिखाई देते हैं। जैसे ब्रश करना, मक्खी आने पर हाथ का चलना और भोजन लेने पर मुँह का खुलना आदि।

व्यक्ति से लेकर समष्टि तक जीवन का सामान्य कार्य व्यवहार इंसान और प्रकृति की क्रिया-प्रतिक्रिया की आवृत्तियों से ही

हमारे आसपास हो रही घटनाओं की हमारी बुद्धि अपने स्मृतिकोष में संचित अनुभवों के आधार पर गणना करती है। वह निष्कर्ष ही हमारी क्रिया अथवा प्रतिक्रिया का आधार बनता है। क्रिया-प्रतिक्रिया की इसी आवृत्ति में हमारे सामान्य जीवन का अधिकांश समय निकल जाता है। शरीर की तंत्रिकाओं के माध्यम से हमारी बुद्धि, मन और इंद्रियों में लगातार संवाद बना रहता है। कई क्रियाकलाप तो सिर्फ आवृत्तियों पर आधारित है। इनके लिए बुद्धि को कोई जोर नहीं लगाना पड़ता और वे स्वयमेव ही हो जाते दिखाई देते हैं

चलता है। यह भी कहा जा सकता है कि क्रिया और प्रतिक्रिया के क्रम की अनवरत आवृत्ति ही जीवन है। लेकिन मानव शरीर और मशीन में एक मौलिक अंतर है; वह है मानव के पास इंद्रियों के अतिरिक्त मन, भाव, हृदय और विचार जैसे तत्वों का होना। पर सवाल है कि ये तत्व आज तो मशीन के पास नहीं हैं पर क्या भविष्य में कभी कंप्यूटर के पास भी ये स्वतंत्र रूप से आ सकते हैं? इसका उत्तर विद्वान हाँ और नहीं दोनों में ही देते हैं। ये एक बड़ी और अलग बहस का मुद्दा है।

फिलहाल बात करते हैं मशीनी बुद्धि यानि आर्टिफिशियल इटेलिजेंस के मौजूदा या भविष्य में हो सकने वाले विभिन्न उपयोगों पर। अगर कल्पनाशक्ति को अलग रख दिया जाए तो मशीन में मनुष्य से अधिक स्मरण क्षमता और गणना शक्ति है। अब तो ऐसे कंप्यूटर आ गए हैं जिनमें तकरीबन अपरिमित मात्रा में ऐसी ताकत है और जब ये कंप्यूटर बड़े नेटवर्क से जुड़ जाते हैं तो इनकी गणना शक्ति लगभग असीमित हो जाती है। यानि कल्पनाशक्ति के अलावा वे सारे काम जिनमें स्मृति की गणना कर तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते हैं, मशीन किसी भी मनुष्य से बेहतर कर सकती है। मशीन इटेलिजेंस सॉफ्टवेअर के उपयोग से ऐसे अनेकों कार्य पिछले कुछ वर्षों में आदमी से हटकर कंप्यूटर के पास चले गए हैं। मशीन के द्वारा किए गए ये कार्य कहीं अधिक बेहतर हो गए हैं, गलतियों की संभावना नगण्य हो गई है और इस कारण ये किफायती भी हो गए हैं।

अगर हम अपने आसपास देखें तो पाएंगे कुछ दशक पहले जो काम मनुष्यों के हाथ में थे अब उन्हें कंप्यूटर कर रहे हैं। जैसे बैंकों में नोट गिनना, खाते से पैसे निकालना, रेलवे का आरक्षण, विमानों का परिचालन, सिनेमा टिकिटों की बिक्री, मतगणना, यहाँ तक कि अब आपके पंडित जी भी जब कुंडलियाँ मिलाते हैं तो वहाँ अकसर कंप्यूटर ही काम कर रहा होता है।

आने वाले समय में मीडिया, कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा और संवाद के मामले में मशीनी बुध्दि अधिकाधिक नजर आएगी। दो क्षेत्रों के उदाहरण से ये बात अच्छे से समझाई जा सकती है। Nasscom के द्वारा

अगर कल्पनाशक्ति को अलग रख दिया जाए तो मशीन में मनुष्य से अधिक स्मरण क्षमता और गणना शक्ति है। अब तो ऐसे कंप्यूटर आ गए हैं जिनमें तकरीबन अपरिमित मात्रा में ऐसी ताकत है और जब ये कंप्यूटर बड़े नेटवर्क से जुड़ जाते हैं तो इनकी गणना शक्ति लगभग असीमित हो जाती है। यानि कल्पनाशक्ति के अलावा वे सारे काम जिनमें स्मृति की गणना कर तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते हैं, मशीन किसी भी मनुष्य से बेहतर कर सकती है। मशीन इटेलिजेंस सॉफ्टवेअर के उपयोग से ऐसे अनेकों कार्य पिछले कुछ वर्षों में आदमी से हटकर कंप्यूटर के पास चले गए हैं

आयोजित एक स्पर्धा में कुछ समय पहले सैमसंग ने एक ऐसे सेंसर का प्रदर्शन किया जो बिना आपकी जानकारी के आपके फोन के द्वारा ही लगातार आपका रक्तचाप ले सकता है। आपके रक्तचाप का उतार-चढाव आपकी पुरानी स्वास्थ्य जानकारी के साथ अगर ऑनलाइन जोड़ दिया जाए हो यह हृदय रोग के खतरों से आपको काफी पहले आगाह कर देगा। यही नहीं, इमरजेंसी की अवस्था में स्वचालित सिस्टम आपकी जान की रक्षा के लिए एक वरदान साबित होगा। इसी तरह आपके ई.सी.जी. आदि टेस्ट को भी मशीनी दिमाग अधिक फुर्ती और कौशल के साथ पढ़ सकता है।

अगर मीडिया की बात करें तो हमारे देखते ही देखते यू ट्यूब, गूगल, ट्विटर, फेसबुक आदि ने किस तरह से हमारी रूचियों पर आधारित कंटेट को हमें परोसना शुरू कर दिया है, उसे हम सब जानते हैं। हमारी रुचि, पुरानी सर्च, आवृत्ति की आदतों के आधार पर अब कंटेट के अपडेट हमारे फोन और कंप्यूटर पर इतनी सहजता से आते हैं कि अब हमें ये अटपटा भी नहीं लगता। थोड़ा जोर डालेंगे तो हम जान जाएंगे कि इसके पीछे कंप्यूटर, डिजिटल नेटवर्क, मशीन और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का एक जटिल तंत्र काम करता है। यह सब हमारी दिनचर्या और आदत का अंग कब बन गया, हमें पता ही नहीं चला। लेकिन ध्यान देने की बात है कि मीडिया संसार में मशीन का यह दखल सिर्फ सर्च तक ही सीमित नहीं रह गया है।

जानकारों के अनुसार एक न्यूज रूम में पत्रकारों के कई काम कंप्यूटर अगले दो चार सालों में करने लगेगा। ये काम हैं- सब एडिटिंग, समाचार का सार लिखना, भाषाई रूपांतरण, लिखे शब्दों का आवाज में परिवर्तन या इसका विपरीत आदि। कंप्यूटर इनमें से कई कार्यों को अधिक त्वरित गति से तथा और अधिक सफाई से कर पाएगा। कोविड के दौरान इनमें से कई काम तो कंप्यूटर के हाथ में चले ही गए हैं। टेक्स्ट से आवाज और आवाज से टेक्स्ट में रूपांतरण का काफी काम अब सॉफ्टवेयर ही कर रहे हैं। इसी तरह भाषाई अनुवाद का काम भी बड़ी हद तक मशीनों के हाथ में जा ही चुका है।

यहाँ ये कहना भी सही है कि मशीन की अपनी सीमा है। कंप्यूटर इन संपादकीय कामों में नई सोच या विचार नहीं डाल सकता। फिलहाल मशीन में भाव, कल्पना और स्वतंत्र निर्णय क्षमता नहीं है। इसलिए कुछ काम ऐसे जरूर रहेंगे जो मशीन नहीं कर पाएगी। परंतु न्यूज रूम में काफी सारे काम ऐसे हैं जो आवृत्ति पर आधारित हैं। यों भी नवीन कल्पनाशीलता वाले काम पूरे काम का महज एक छोटा ही हिस्सा होते हैं। इन्हें छोड़कर बाकी सब काम धीरे-धीरे मशीनों पर स्थानांतरित हो जाएंगे। इसमें शक की कोई गुंजाइश नहीं रहनी चाहिए। हम पिछले कुछ ही बरसों में बैंकिंग, टेलीकॉम, उड्डयन और वित्त आदि क्षेत्रों में अपनी आँखों के आगे ऐसा होते हुए देख चुके हैं।

यानि जिन क्रियाकलापों में बुध्दि के सिर्फ गणितीय आकलन की जरूरत होती है वे सभी काम कंप्यूटर या तो कर रहा है या करने की क्षमता रखता है। मशीन इंटेलिजेंस का ये उपयोग बुद्धि आधारित गणनाओं में पिछले दो दशक में तेजी से बढ़ा है। पूरी दुनिया में काफी मात्रा में संसाधन अब मशीन इंटेलिजेंस से आगे जाकर आर्टिफिशियल

इंटेलिजेंस पर नई खोजों पर लग रहे हैं। 2017 में इस शोध पर 6.4 बिलियन डॉलर लगाए गए। उससे पिछले साल ये राशि सिर्फ 3.8 बिलियन डॉलर ही थी। भारत अभी इस शोध में पीछे है, पर 2017 में भारत में 73 मिलियन डॉलर इस शोध पर लगे जबकि 2016 में ये राशि 44 मिलियन ही थी। भारत इस तरह के शोध करने वाले देशों में अब दसवाँ देश बन गया है।

मीडिया के क्षेत्र में भी इंटरनेट के उपयोग के बाद तेजी से टेक्नोलॉजी का दखल बढ़ा है। बड़े डिजिटल/सोशल मीडिया संस्थान अब एल्गोरिथम के माध्यम से हमारी कंटेंट पढ़ने, सुनने और देखने की रुचि तो जान ही रहे हैं। अब वे इसे हमारी रुचि को प्रभावित करने के लिए भी इस्तेमाल कर रहे हैं। हमें आज जो कंटेंट परोसा जा रहा है, उस पर कहने को तो हमारा अधिकार है परंतु धीरे-धीरे ये अधिकार अब हमारे हाथ से निकल कर मशीनों के पास जाता जा रहा है। इन मशीनों को संचालित करती है बड़ी कंपनियों द्वारा निर्धारित एल्गोरिथम। जब हम आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस यानि आभासी समझदारी की बात करते हैं तो उसका मायने होता है मशीन में आए बिग डेटा को समझने, छाँटने, उसे व्यक्ति विशेष को परोसने और उस पर आधारित निर्णय लेने की क्षमता। ये एल्गोरिथम स्वयं संचालित कंप्यूटर प्रोग्राम हैं जो लगातार अपने आपको और निपुण भी बनाते जाते हैं। यानि ये एल्गोरिथम स्वयं अब अपने से बेहतर एल्गोरिथम बनाने लगी हैं।

पर प्रश्न यह है कि इसका कितना असर मीडिया में संपादकीय दिशा और इसके निर्णयों पर पड़ेगा? सोशल और डिजिटल मीडिया में एल्गोरिथम आज उत्तरोत्तर ये तो तय कर ही रही हैं कि पाठक/श्रोता या दर्शक को क्या परोसा जाएगा। पर सवाल है कि क्या एल्गोरिथम आगे ये भी तय करेंगी कि भविष्य में कंटेंट कैसा होगा? बिग डेटा आधारित एल्गोरिथम हमारे आज के जीवन का सच है। लेकिन महत्वपूर्ण ये है कि आभासी समझदारी का ये सारा तंत्र संचालित करने के नियम उपनियम कौन तय करेगा? क्या इसका निर्धारण लाभ की मंशा से चलाई जाने वाली कंपनियाँ और उसके अधिकारी करेंगे या फिर संविधान और मान्य परंपराओं पर आधारित चलने वाली व्यवस्था? इस प्रश्न से यों तो सारे विश्व को जूझना है। पर भारत जैसे प्रजातांत्रिक समाजों के भविष्य की रूपरेखा को तय करने में मुद्दा अब प्रमुख भूमिका निभाएगा।

तात्कालिक मुद्दों पर इन मीडिया संस्थानों का दखल अब कोई दबी-छिपी बात नहीं है। इनकी बिग डेटा की संगणना की क्षमता, ग्राहकों की संख्या और उपयोगकर्ताओं से बिना सीधे पैसे लिए कंटेंट परोसने की प्रणाली ने बहुराष्ट्रीय संस्थानों को बेहद शक्तिशाली बना दिया है। अपनी राजनीतिक सोच के अनुसार अब ये लोकतांत्रिक समाजों में 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' जैसे अधिकारों का नारों के रूप में सुविधा के अनुसार इस्तेमाल कर रहे हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एक मौलिक अधिकार है और इसके बगैर लोकतंत्र का कोई मतलब नहीं रह जाता यह एक प्रस्थापित मूल्य है। लेकिन इसका इस्तेमाल आप अपनी सुविधा और मौके के हिसाब से नहीं कर सकते। टेक्नोलॉजी की ताकत का इस्तेमाल एक खास तरह का नैरेटिव चलाने के लिए करना अवसरवादिता ही है। ऐसा अभी हाल में अमेरिका और भारत में देखने में आया।

इस 6 जनवरी को अमेरिका में वहाँ की संसद के प्रांगण 'कैपिटल हिल' में हिंसा की घटनाएँ हुई। उस समय हिंसा फैलाने के आरोप में तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के ट्विटर अकाउंट को ब्लॉक कर दिया गया। माना गया कि ट्रंप ने एक वीडियो के जरिये अपने समर्थकों को हिंसा के लिए उकसाया। यही नहीं. बाकी कई अन्य ट्विटर अकाउंट भी इस आधार पर ब्लॉक या स्थगित कर दिए गए। यूट्यूब, फेसबुक व अन्य सोशल मीडिया कंपनियों ने भी ऐसा ही किया।

ये भी कहा गया कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सही संदर्भ में देखना आवश्यक है। अमेरिका में जब कोहराम हुआ तो वहाँ चारों ओर से सोशल मीडिया पर लगाम लगाने की आवाज उठाई गई। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के 'लिबरल' यानि उदारवादी पैरोकारों ने जोर-शोर से कहा कि बोलने की आजादी के नाम पर समाज में विद्वेष फैलाने की छूट किसी को नहीं दी जा सकती। इन मुद्दों पर पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति ओबामा के विशेष सहायक रहे जोनाथन ग्रीनब्लेट ने स्पष्ट कहा, "अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, हिंसा फैलाने की स्वतंत्रता नहीं है।" उन्होंने कहा, "राष्ट्रपति (ट्रंप) ने सोशल मीडिया के जरिये जहर फैलाया है।" श्री ग्रीनब्लेट, जो इस समय अमेरिका की एंटी डिफेमेशन लीग के मुख्य कार्यकारी अधिकारी हैं, ने कहा, "सोशल मीडिया कंपनियों पर ये लाजिमी है कि वे सख्त कार्रवाई करते हुए इसे रोकें।"[3]

उस समय ट्विटर ने राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप का अकाउंट ब्लॉक करते हुए कहा कि "ट्रंप का एकाउंट 12 घंटे तक ब्लॉक रहेगा, और यदि उन्होंने चुनाव परिणामों को अस्वीकार करने वाली और उन ट्ववीट्स को डिलीट नहीं किया जो हिंसा फैलाने जैसी लगती हैं, तो ये रोक आगे बढ़ा दी जाएगी।" साथ ही इस बयान में ट्विटर ने ये भी कहा कि "यदि ट्रंप ट्विटर की हिंसात्मक धमकियों और चुनाव संबंधित झूठे प्रचार की नीति का उल्लंघन जारी रखते हैं तो उनका अकॉउंट स्थायी रूप से बंद कर दिया जाएगा।"[4]

लेकिन क्या ट्विटर अपने इन सिद्धांतों का पालन दुनिया में हर जगह करता है? भारत में क्या हुआ? लाल किले पर, जो कि भारत की अस्मिता और राष्ट्रीय गौरव का प्रतीक है, 26 जनवरी के दिन दंगाइयों ने राष्ट्रीय

6 जनवरी को अमेरिका में वहाँ की संसद के प्रांगण 'कैपिटल हिल' में हिंसा की घटनाएँ हुई। उस समय हिंसा फैलाने के आरोप में तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के ट्विटर अकाउंट को ब्लॉक कर दिया गया। माना गया कि ट्रंप ने एक वीडियो के जरिये अपने समर्थकों को हिंसा के लिए उकसाया। यही नहीं. बाकी कई अन्य ट्विटर अकाउंट भी इस आधार पर ब्लॉक या स्थगित कर दिए गए। यूट्यूब, फेसबुक व अन्य सोशल मीडिया कंपनियों ने भी ऐसा ही किया

ध्वज का अपमान किया। क्या ट्विटर तथा अन्य सोशल मीडिया संस्थानों ने दिल्ली के लाल किले में 26 जनवरी को हुई हिंसा को लेकर वैसा कोई कदम उठाया, जैसा उन्होंने अमेरिका में किया था? क्या ट्विटर/फेसबुक ने हिंसा और विद्वेष फैलाने वाले अकाउंट को ब्लॉक करने की चेष्टा तक की?

और तो और, भारत में तो #ModiPlanningFarmerGenocide जैसा हैशटैग चलाया गया। इस हैशटैग का हिंदी में अर्थ है कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी किसानों के नरसंहार की योजना बना रहे हैं। अब इससे विद्वेषपूर्ण, हिंसा भड़काने और उकसाने वाला और नितांत झूठा प्रचार क्या हो सकता है? ट्विटर की ऊपर उद्धृत की गई जो घोषित नीति है यह उसके एकदम विपरीत है। भारत में नए कृषि कानूनों को लेकर एक वर्ग आंदोलन कर रहा है। कुछ दिन पहले 26 जनवरी को हिंसा हो चुकी है। लाल किले और तिरंगे के अपमान पर समाज उद्वेलित है। ऐसे में इस तरह के हैशटैग के पीछे की मंशा समझने के लिए आपको कोई बड़ा विद्वान होने की आवश्यकता नहीं है। होना तो ये चाहिए था कि ट्विटर की एल्गोरिथम इसे स्वयं ही पकड़ लेती। इसके बाद उसकी संपादकीय टीम इस पर कार्रवाई करती। ऐसा तो नहीं हुआ बल्कि ट्विटर ने अमेरिका घटना से उलट इसे 'खबरीला कंटेंट' बताया।

भारत सरकार ने ट्विटर को लिखित आदेश देकर किसानों के नरसंहार वाले इस हैशटैग #ModiPlanningFarmerGenocide को चलाने वाले 257 ट्विटर अकाउंट पर कार्रवाई करने के लिए कहा। कुछ घंटे के लिए तो ट्विटर ने इनमें से कुछ एकाउंट को ब्लॉक किया। लेकिन फिर पलटी मारते हुए ट्विटर के अधिकारियों ने कहा कि इसे वह 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का' मुद्दा मानते हैं। और इस हैशटैग को चलने वाले एकाउंट को पुन: बहाल कर दिया। ट्विटर ने ये भी कहा कि ये हैशटैग 'न्यूजवर्दी' यानि खबरीला है। यानि ट्विटर यहाँ शिकायतकर्ता, अभियुक्त, वकील और न्यायाधीश - चारों भूमिकाएँ खुद निभाने लगा। अर्थात हर नियम-कायदे से परे। ये अलग बात है कि दबाव के बाद इन एकाउंट को फिर बंद किया गया। हालाँकि इन्हें जियो टैगिंग के जरिये सिर्फ भारत में ही ब्लॉक किया गया। बाकी जगह ये ट्विटर एकाउंट चालू रखे गए।

युवाल नोव हरारी एक बुनियादी सवाल भी उठाते हैं। उनका सवाल है कि क्या ऐसा वक्त आ सकता है जब मशीनें बुध्दि के साथ-साथ मन का काम भी करने लगें। इसे जरा समझने की जरूरत है। आज कंप्यूटर काम करते हैं मनुष्य द्वारा दी गई एल्गोरिदम के आधार पर। शुरू में सामान्य सी गणितीय गणनाओं के लिए बनाई गई ये एल्गोरिदम जटिल से जटिल होती गई हैं। पहले एल्गोरिदम सिर्फ गणना करती थीं और वैज्ञानिक उनका मतलब या अभिप्रेत निकाल कर निष्कर्ष पर पहुँचते थे

इसका मतलब साफ है कि एल्गोरिथम के पीछे भारत में एक अलग सोच और कायदे का पालन ट्विटर ने किया और अमेरिका में इस कंपनी इसे एक अलग तरीके से देखा। हिंसा फैलाकर विधि द्वारा स्थापित लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में इस तरह की दोहरी नीति अपनाने की क्या वजह हो सकती है? यह बुद्धिजीवियों, कानून निर्माताओं और नीति निर्धारकों के लिए मंथन का विषय है।

इस घटना से कई बुनियादी सवाल पैदा होते हैं।

पहला सवाल यह है कि क्या ट्विटर जैसी सोशल मीडिया कंपनियाँ, जो लाभ के लिए काम करती हैं, उनको यह अधिकार है कि वे अपनी सुविधा के अनुसार ये तय करें कि किसी लोकतांत्रिक देश में क्या नैरेटिव यानि विमर्श चलेगा?

दूसरा प्रश्न है कि क्या ये कंपनियाँ भारत के कानून, भारतीय संसद, जनता द्वारा चुनी हुई सरकार और भारत की व्यवस्था से ऊपर हैं? यह बात भारत जैसी अन्य लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं पर भी लागू होती है।

तीसरा सवाल कि क्या ये कंपनियाँ मुद्दई, वकील, मुजरिम और मुंसिफ - सारी भूमिका खुद ही अदा करेंगी?

चौथा और सबसे बड़ा सवाल क्या भारत जैसे लोकतांत्रिक राष्ट्र की सार्वभौम सत्ता से ऊपर इन मीडिया संस्थानों को कोई अधिकार है?

इस मुद्दे की बृहत मीमांसा युवा चिंतक युवाल नोह हरारी ने अपनी पुस्तक 21 Lessons for the 21st Century में की है। वे कहते हैं कि बायोटेक और इन्फोटेक की क्रांति अब मानव को ऐसी ताकत देने लगी है कि वह अपने मनोमस्तिष्क को भी अपने इच्छा से नियंत्रित कर सकेगा। वे लिखते हैं, "पिछले समय में हम (मानवता) वो ताकत हासिल कर चुके हैं जिससे हमने अपने आसपास की दुनिया को 'मैनिपुलेट' कर के पृथ्वी की सूरत को ही बदल दिया है।" ये अलग बात है कि विकास के नाम पर किए गए इन परिवर्तनों को हम पूरी तरह नहीं समझते थे। इसी कारण ये परिवर्तन आज पर्यावरण की तबाही के रूप में फलित हुए हैं।

युवाल नोव हरारी एक बुनियादी सवाल भी उठाते हैं। उनका सवाल है कि क्या ऐसा वक्त आ सकता है जब मशीनें बुध्दि के साथ-साथ मन का काम भी करने लगें। इसे जरा समझने की जरूरत है। आज कंप्यूटर काम करते हैं मनुष्य द्वारा दी गई एल्गोरिदम के आधार पर। शुरू में सामान्य सी गणितीय गणनाओं के लिए बनाई गई ये एल्गोरिदम जटिल से जटिल होती गई हैं। पहले एल्गोरिदम सिर्फ गणना करती थीं और वैज्ञानिक उनका मतलब या अभिप्रेत निकाल कर निष्कर्ष पर पहुँचते थे। अब कंप्यूटर आपको सिर्फ निष्कर्ष ही निकालकर नहीं देते बल्कि उसके आधार पर होने वाली एक्शन या क्रिया भी संचालित करने लगे हैं। जटिलतम होती एल्गोरिदम के बीच क्या सुपर कंप्यूटर स्वयं अपनी नई एल्गोरिदम नहीं विकसित कर सकते? अगर ऐसा हुआ तो एक सीमित मात्रा में कल्पनाशीलता का अंश कंप्यूटर में विकसित होने की संभावना से पूरी तरह इंकार नहीं किया जा सकता।

इसके परिणामों की भयावहता का अनुमान लगाया जा सकता है। 1993 में स्टीवन स्पीलबर्ग की साइंस फिक्शन फिल्म

जुरासिक पार्क का उदाहरण देना यहाँ ठीक रहेगा। शताब्दियों पहले लुप्त हो चुके डाइनासोर के डी.एन.ए. की खोज करके वैज्ञानिकों द्वारा फिर से डाइनासोर पैदा करने की कोशिश इस फिल्म में बखूबी दिखाई गई है। लेकिन अथक परिश्रम के बाद पैदा किए गए ये डाइनासोर किस तरह से उन्हें पुनर्जीवित करने वाले वैज्ञानिकों के लिए ही खतरा बन जाते हैं, ये इस फिल्म में बेहद सजीव और प्रभावी ढंग से दिखाया गया है।

अब सोचिए कि अगर मशीनों में ऐसी क्षमता पैदा हो गई तो मानव सभ्यता का क्या होगा? यह शायद आज कपोलकल्पना लगे परंतु आज से कुछ दशक पहले तो मोबाइल फोन भी एक कल्पना ही लगता था। कुछ साल पहले की ही बात है जब दो चार जीबी मेमोरी की क्षमता वाले एक कंप्यूटर रखने के लिए कुछ सौ वर्ग फीट जगह की आवश्यकता पड़ती थी। परंतु आज आपकी जेब में रखा जाने वाला डेढ़ दो सौ ग्राम का मोबाइल फोन उन कंप्यूटरों से अधिक प्रभावी तथा क्षमतावान हो गया है। इसलिए इन दोनों संभावनाओं को पूरी तरह से नकार देना संभवत: आगे वाली वास्तविकताओं से मुँह मोड़ना होगा। मशीन और आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस जिसे हम सुविधा के लिए मशीनी बुद्धि कह रहे हैं क्या-क्या कारनामे कर सकती है उसका पूरा अंदाजा लगाना आज मुश्किल है।

इन एल्गोरिथम के आधार पर बड़े-बड़े सोशल और डिजिटल मीडिया संस्थान आज ये तय कर रहे हैं कि किसी देश में किस मुद्दे पर कौन सा आंदोलन चलेगा। कौन से मुद्दे को बढ़ावा दिया जाएगा और किसे दफना दिया जाएगा। मिस्र में अरब स्प्रिंग से लेकर अमेरिका के 'ब्लैक लाइफ मैटर्स' और भारत के तथाकथित कृषि कानून विरोधी आंदोलन तक में इन मीडिया संस्थानों की दखल साफ दिखाई देती है। लोकतंत्र में आंदोलन होना स्वाभाविक है। विरोध लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं का एक मूल तत्व है। लेकिन आंदोलन चलाने, मुद्दे तय करने का काम, राजनीतिक दलों, सामाजिक संस्थाओं और जनता का है। अंतरराष्ट्रीय मीडिया संस्थान परदे के पीछे से उनके संचालन का काम नहीं कर सकते। उनके कामकाज और एल्गोरिथम के तरीकों में पारदर्शिता की आवश्यकता है। वे चुनी हुई सरकारों से ऊपर नहीं हो सकते। इन संस्थानों को परदे के पीछे डिजिटल हुक्मरान बनकर लोकतांत्रिक समाजों में विमर्श को तय करने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

चीन में राष्ट्रपति शी जिनपिंग ने अपने देश में ब्लॉग लिखने वालों को निर्देश दिया है कि वे स्वास्थ्य, आर्थिक विषयों, शिक्षा और न्यायिक मामलों पर लिखने से पहले सरकार की अनुमति अवश्य लें। इससे पहले सिर्फ राजनीतिक, सामरिक व अन्य रणनीतिक विषयों पर ही ये बाध्यता थी। शी जिनपिंग ने ऐसा 'डिजिटल सार्वभौमिकता' बनाए रखने के अपने सिद्धांत के तहत ऐसा किया है

यहाँ एक ताजा घटना का उल्लेख करना ठीक रहेगा। इसी सप्ताह चीन में राष्ट्रपति शी जिनपिंग ने अपने देश में ब्लॉग लिखने वालों को निर्देश दिया है कि वे स्वास्थ्य, आर्थिक विषयों, शिक्षा और न्यायिक मामलों पर लिखने से पहले सरकार की अनुमति अवश्य लें। इससे पहले सिर्फ राजनीतिक, सामरिक व अन्य रणनीतिक विषयों पर ही ये बाध्यता थी। शी जिनपिंग ने ऐसा 'डिजिटल सार्वभौमिकता' बनाए रखने के अपने सिद्धांत के तहत ऐसा किया है।[5]

चीन तो खैर एक तानाशाही व्यवस्था है। पर डिजिटल सार्वभौमिकता के मुद्दे की अनदेखी अब और नहीं की जा सकती। भारत जैसे लोकतांत्रिक समाजों में ये डिजिटल सार्वभौमिकता किसके पास रहेगी? लाभ के लिए काम करने वाले तथा किसी के प्रति भी उत्तरदायी नहीं टेक मीडिया संस्थानों के मालिकों के पास या फिर जनता द्वारा चुनी संसद के पास? इसी संदर्भ में हरारी का ये कथन महत्वपूर्ण बन जाता है कि "बायोटेक और इन्फोटेक की मौजूदा क्रांति का नेतृत्व इंजीनियरों, उद्यमियों और वैज्ञानिकों के हाथों में हैं। अपने निर्णयों के राजनीतिक परिणामों को ये शायद ही समझ पाते हैं, क्योंकि ये किसी का भी प्रतिनिधित्व नहीं करते। क्या समय नहीं आ गया है कि विश्व की संसदें (चुनी हुई विधायिकाएँ) और (राजनीतिक) दल अब इसकी कमान संभालें।"

इस लेख में शुरू के किरदारों की तरफ लौटें तो अविनाश और भावना का जीवन अधिक सुविधासंपन्न होने के साथ ही बहुत जटिलता की तरफ भी बढ़ रहा है।

हमारा अविनाश वर्चुअल यानि मायावी और असल भावना के संसार में कहीं खो तो नहीं जाएगा? मायावी और असल दुनिया का ये खेल कहीं एक द्वंद्व में तो नहीं बदल जाएगा? अगर मीडिया की दुनिया की और देखें तो 'फेक नैरेटिव' जमीन से जुड़े असली विमर्श को कहीं ले तो नहीं उड़ेगा?

टेक्नोलॉजी मानवता के लिए एक बड़ी उपलब्धि है। लेकिन वह एक भस्मासुर न बनकर कल्पवृक्ष बने, ये उत्तरदायित्व मानवता की मौजूदा पीढ़ी का है।

संदर्भ

1. Harari, Yuval Noah; 21 Lessons for 21st Century, Jonathan Cape (2018), p.7
2. https://www.nytimes.com/2021/01/06/technology/capitol-twitter-facebook-trump.html)
3. https://www.nytimes.com/2021/01/06/technology/capitol-twitter-facebook-trump.html)
4. https://www.nytimes.com/2021/01/06/technology/capitol-twitter-facebook-trump.html
5. https://apnews.com/article/taiwan-china-coronavirus-pandemic-blogging-50170ca73ed1f25ae769723e86c4d169

भारत में वैचारिक पत्रकारिता : धुरी और द्वंद्व

हितेश शंकर

पत्रकारिता की प्रतिबद्धता को लेकर प्रश्न बार-बार उठते रहे हैं, लेकिन भारत में वैचारिक पत्रकारिता का लंबा इतिहास भी है। अतीत के झरोखे से वर्तमान और भविष्य की आवश्यकताओं एवं संभावनाओं पर एक दृष्टि

आज पत्रकारिता पर ढेर सारे प्रश्न उठते हैं। 'बिकाऊ मीडिया' से लेकर 'पकाऊ मीडिया' तक ये वो लांछन हैं जिन्होंने केवल मीडिया की साख में सुराख ही नहीं किया बल्कि जिसे सत्य और तथ्य का दुर्ग कहा जाता था, उस पूरे गढ़ के भुरभुरे होने की आशंका समाज के मन में भर दी।

समाज की आशंकाएं, इसके सवाल अकारण नहीं हैं।

यह प्रश्न क्यों उठते हैं, जब हम इस पर विचार करते हैं तो इस क्रम में सामने कुछ और मोड़ दिखाई पड़ते हैं। भारतीय समाज और सरोकार की पत्रकारिता कैसे विकसित हुई, इसकी भाव-भूमि क्या थी, आज की पत्रकारिता में क्या परिवर्तन आये हैं, इन परिवर्तनों के कारण आज पत्रकारिता के जुड़ाव के विषय क्या हैं, पत्रकारिता में दबाव क्या हैं या यूँ कहें कि पत्रकारिता के मुख्य कार्य क्या होने चाहिए, इनके बीच पत्रकारिता कैसी होनी चाहिए? यह कुछ समीचीन जिज्ञासाएं हैं। प्रश्न यह है कि ब्रेकिंग न्यूज के दबाव से मुक्त होने के बाद पत्रकारिता में विचार कहाँ हैं? और सबसे बड़ा प्रश्न यह कि विचार की आवश्यकता क्यों हैं?

इन जिज्ञासाओं को शांत करने के लिये पत्रकारिता इतिहास के 'हिन्द महासागर' में डुबकी लगाते हैं तो भारतीय पत्रकारिता की नींव में 'राष्ट्रीय विचार' का ठोस, प्रबल शिलालेख हमें मिलता है।

भारत में पत्रकारिता : विदेशी पहल से देशज वैचारिक मोड़ तक

हिन्दी पत्रकारिता की कहानी भारतीय राष्ट्रीयता की कहानी है। हिन्दी पत्रकारिता के आदि उन्नायक जातीय चेतना, युगबोध और अपने सामाजिक दायित्व के प्रति पूर्ण सचेत थे। कदाचित् इसीलिए विदेशी सरकार की दमन-नीति का उन्हें शिकार होना पड़ा था। यूं तो भारत में प्रथम समाचारपत्र निकालने का श्रेय 'जेम्स ऑगस्टस हिक्की' को मिला। किन्तु इसमें भारतीय सरोकार की पत्रकारिता का भाव कम, और बांह मरोड़ने का चाव अधिक दिखता है। उसने वर्ष 1780 में 'बंगाल गजट' का प्रकाशन किया, किन्तु इसमें कम्पनी सरकार की आलोचना की गई थी, यहाँ तक कि उसने तत्कालीन वायसराय वॉरेन हेस्टिंग्स की पत्नी को भी नहीं बख्शा जिस कारण ईस्ट इंडिया कंपनी ने उसे ब्रिटेन वापस भेज दिया। वर्ष 1818 में ब्रिटिश व्यापारी 'जेम्स सिल्क बर्किघम' ने 'कलकत्ता जनरल' का सम्पादन किया। बर्किघम वह पहला प्रकाशक था, जिसने प्रेस को जनता के प्रतिबिम्ब के स्वरूप में प्रस्तुत किया।

भारतीय पत्रकारिता की परंपरा का मूल या गुणसूत्र (डीएनए) राष्ट्रप्रेम रहा है। भारत में पत्रकारिता राष्ट्रवाद की अलख के साथ ही शुरू हुई। हिक्की के बरक्स जो भारतीय पत्रकारिता शुरू हुई, उसका मूल तत्व यही था। राजा राममोहन राय की प्रेरणा से गंगाधर भट्टाचार्य ने 1816 में कलकत्ता से 'बंगाल गजट' का प्रकाशन प्रारंभ किया। किसी भी भारतीय द्वारा प्रकाशित होनेवाला वह पहला पत्र था। राम मोहन राय की ही प्रेरणा से 4 दिसंबर 1821 को ताराचंद दत्त तथा भवानीचरण बंद्योपाध्याय ने बांग्ला साप्ताहिक 'संवाद कौमुदी' का प्रकाशन प्रारंभ किया। राजा राममोहन राय ने 'संवाद कौमुदी' को सती प्रथा के खिलाफ अभियान बना डाला।

राजा राम मोहन राय ने 20 अप्रैल, 1822 को

कलकत्ता से ही फारसी भाषा का 'मिरात उल अखबार' निकालना शुरू किया। इसके पहले संपादकीय मंतव्य में राममोहन राय ने लिखा - 'इस पत्र के प्रकाशन से मेरा अभिप्राय यह है कि जनता के समक्ष ऐसी बातें प्रस्तुत की जायें जिनसे उनके अनुभवों में वृद्धि हो, सामाजिक प्रगति हो, सरकार को जनता की स्थिति मालूम रहे और जनता को सरकार के कामकाज और नियम-कानूनों की जानकारी मिलती रहे।'[3]

तिलक ने दो समाचार पत्र, 'मराठा' एवं 'केसरी' की शुरुआत की। साल 1881 में 'केसरी' अखबार का पहला अंक प्रकाशित हुआ। इन अखबारों में तिलक के लेख ब्रिटिश शासन की क्रूर नीतियों और अत्याचारों का खुलकर विरोध करते थे। उनके समाचार पत्रों में विदेशी-बहिष्कार, स्वदेशी का उपयोग, राष्ट्रीय शिक्षा और स्वराज आंदोलन जैसे महत्वपूर्ण विषयों को आधार बनाया गया। अपने इन्हीं स्पष्ट और विद्रोही लेखों के कारण वे कई बार जेल भी गए

हिंदी का पहला साप्ताहिक और दैनिक : ध्येय और मूल्यबोध

हिंदी का पहला साप्ताहिक 'उदंत मार्तंड' कानपुर के वकील युगल किशोर शुक्ल द्वारा कलकत्ता से 30 मई 1826 को प्रकाशित किया गया परन्तु 18 सितम्बर 1928 में इसे बंद भी करवा दिया गया। उन्होंने ऐसे समय में हिंदी भाषा में पत्र निकालने का साहस दिखया जब ब्रिटिश शासन में भारतीयों के हित में कुछ भी लिखना बड़ी चुनौती थी।'[4] उदंत मार्तंड का ध्येय वाक्य था-'***हिंदुस्थानियों के हित का हेत***'। इस वाक्य में भारत की पत्रकारिता का मूल्यबोध स्पष्ट दिखता है। पत्रकारिता का उद्देश्य या कहें मूल्यबोध, भारतीय लोक के हितों की रक्षा होना चाहिए।

इसके बाद हिंदी का पहला दैनिक 'समाचार सुधावर्षण' भी कलकत्ता से ही 8 जून, 1854 को निकला जिसके संपादक श्याम सुंदर सेन थे। इस अखबार के संपादक श्याम सुंदर सेन भारतीय समाचार पत्रों की आजादी के अनन्य सेनानी थे। 'समाचार सुधावर्षण' ने लगातार ब्रिटिश सेना के अत्याचारों की खबर साहस के साथ प्रकाशित की। 26 मई 1857 के अंक में अखबार ने लिखा - "हाल ही में अँग्रेजों ने हमारे धर्म को नष्ट करने का प्रयास किया। अत: ईश्वर उन पर क्रुद्ध है। ऐसा आभास मिलता है कि ब्रिटिश साम्राज्य का अब अंत आ गया। सच्ची बात तो यह है कि युद्ध में दम आ रहा है और अनेक क्षेत्रों की जनता सेना में मिल रही है।"[5]

5 जून, 1857 के अंक में 'समाचार सुधावर्षण' ने लिखा कि मेरठ और दिल्ली के विद्रोह ने गवर्नर को इतना भयभीत कर दिया है कि उसने अपने सुरक्षा कर्मियों की संख्या बढ़ा दी और राजनिवास के सभी रास्तों को प्रतिदिन रात आठ बजे बंद करने का आदेश दिया। गवर्नर की दयनीयता का आलम यह है कि वह प्रतिदिन दमदम, बैरकपुर में जाकर सिपाहियों से दोनों हाथ जोड़कर कहता-मैं ऐसा कुछ नहीं करूंगा जिससे आपके धर्म को ठेस पहुँचे। उन समाचारों से ब्रिटिश सरकार इतनी डर गई कि गवर्नर जनरल ने 12 जून 1857 को श्याम सुंदर सेन पर मुकदमा चलाने का निश्चय किया।

1857 (प्रथम स्वतंत्रता संग्राम) के बाद : स्वतंत्रता का पथ प्रकाश करते विचार

1857 ई. के संग्राम के बाद भारतीय समाचार पत्रों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई और अब वे अधिक मुखर होकर सरकार के आलोचक बन गए। 1858 में अंग्रेज नील बागान मालिकों ने बंगाल के धान किसानों को उनके खेतों में नील की खेती करने के लिए मजबूत करने लगे जिसके खिलाफ किसानों ने विद्रोह कर दिया। 1860 तक अधिकांश नील कारखाने बंद हो गए। हिंदू पैट्रियाट के संपादक हरिश्चंद्र मुखर्जी ने इस विद्रोह में प्रमुख भूमिका निभायी थी।

लॉर्ड लिटन की साम्राज्यवादी प्रवृत्ति के ख़िलाफ भारतीय अखबारों ने मोर्चा लेना शुरू कर दिया। लिटन ने 1878 ई. में 'देशी भाषा समाचार पत्र अधिनियम' द्वारा भारतीय समाचार पत्रों की स्वतन्त्रता नष्ट कर दी। 'वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट' तत्कालीन लोकप्रिय एवं महत्त्वपूर्ण राष्ट्रवादी समाचार पत्र 'सोम प्रकाश' को लक्ष्य बनाकर लाया गया था। दूसरे शब्दों में यह अधिनियम मात्र 'सोम प्रकाश' पर लागू हो सका। लिटन के वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट से बचने के लिए 'अमृत बाजार पत्रिका' (समाचार पत्र), जो बंगला भाषा की थी, अंग्रेजी साप्ताहिक में परिवर्तित हो गई। सोम प्रकाश, भारत मिहिर, ढाका प्रकाश, सहचर आदि के ख़िलाफ मुकदमे चलाये गए। इस अधिनियम के तहत समाचार पत्रों को न्यायलय में अपील का कोई अधिकार नहीं था। इस घृणित अधिनियम को लॉर्ड रिपन ने 1882 ई. में रद्द कर दिया।'[6]

नवजागरण और वैचारिक पत्रकारिता : परस्पर पूरक कदमताल

1875 के बाद की भारतीय पत्रकारिता कई स्तरों पर चली रही। एक स्तर था भाषा का विकास जिसके अग्रदूत भारतेंदु हरिश्चंद्र थे तो दूसरी ओर भारतीय नवजागरण का स्तर जिसके अग्रदूत लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक थे। किंतु समग्र तौर पर देखें तो यह नवजागरण और कुछ नहीं वैचारिक पत्रकारिता का राष्ट्रीय उद्घोष और व्याप ही है।

तिलक ने दो समाचार पत्र, 'मराठा' एवं 'केसरी' की शुरुआत की। साल 1881 में 'केसरी' अखबार का पहला अंक प्रकाशित हुआ। इन अखबारों में तिलक के लेख ब्रिटिश शासन की क्रूर नीतियों और अत्याचारों का खुलकर विरोध करते थे। उनके समाचार पत्रों में विदेशी-बहिष्कार, स्वदेशी का उपयोग, राष्ट्रीय शिक्षा और स्वराज आंदोलन जैसे महत्वपूर्ण विषयों को आधार बनाया गया। अपने इन्हीं स्पष्ट और विद्रोही लेखों के कारण वे कई बार जेल भी गए। इसके बावजूद, तिलक पत्रकारिता के लिए पूर्णत: समर्पित रहे और हमेशा अपने विचारों और उसूलों पर अडिग रहे।[7] 'स्वराज, स्वाधीनता, बहिष्कार, स्वदेशी' ये शब्द तिलक जी के राष्ट्रीयता से ओतप्रोत

मुखर पत्रकारिता की देन है। तिलक की पत्रकारिता ने ही स्वतंत्रता आन्दोलन को व्यापक बनाया।

महामना पंडित मदन मोहन मालवीय ने 1886 में कालाकांकर से प्रकाशित हिंदोस्थान समाचारपत्र के संपादक का कार्यभार संभाला। मालवीय जी के कुशल संपादन में हिंदोस्थान राष्ट्र की वाणी बन गया। उसे उनकी प्रखर लेखनी ने एक राष्ट्रवादी पत्र के रूप में देश में स्थापित कर दिया। मालवीय जी ने अपनी पत्रकारिता के माध्यम से जो मूल्य स्थापित किए, वे आज भी हमें मार्ग दिखाते हैं। उस दौर की पत्रकारिता का मूल स्वर राष्ट्रवाद ही था।[8] मालवीय जी ने वर्ष 1889 में अंग्रेजी पत्र इंडियन ओपीनियन का भी संपादन किया और वर्ष 1907 में एक हिन्दी साप्ताहिक 'अभ्युदय' का भी प्रकाशन शुरू किया। बंगाल के विभाजन से समूचा भारत ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध उठ खड़ा हुआ। देशभक्त भारतीयों की भावनाओं को संकलित तथा अभिव्यक्त करने के लिए एक अंग्रेजी दैनिक की शुरुआत करने की अनिवार्य आवश्यकता महसूस हुई। फलस्वरूप मालवीय जी के प्रयासों के कारण 24 अक्तूबर 1909 को 'द लीडर' समाचारपत्र अस्तित्व में आया।

वर्ष 1900 से प्रकाशित प्रमुख हिंदी पत्रिका सरस्वती के संपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी कहते हैं 'राजनीति को सुसंस्कृत बनाने के लिए आवश्यक है कि हमारे राष्ट्र निर्माता साहित्य पढ़ें। समाज के विचारों और साहित्य की संवाहिका का नाम ही पत्रकारिता है जिससे राष्ट्रवाद का जन्म तथा नवोत्थान का भाव जनता में स्वत उत्पन्न होता है।'[9]

स्वराज के संपादकों ने तो राष्ट्रप्रेम में अभिभूत होकर राष्ट्रीय जनजागरण को इतना पुख्ता स्वर प्रदान किया कि उनमें से कई को कई बार राजद्रोह के अपराध में जेल जाना पड़ा। देश और समाज में राष्ट्रवाद का शंखनाद और संदेश देना पत्रकारिता का ही कार्य था। इसलिए इन लोगों ने सुधारवादी दृष्टिकोण को प्रचारित करते हुए बाल विवाह, पर्दा प्रथा, विधवा विवाह, स्त्री शिक्षा आदि समस्याओं पर न केवल गहनता से विचार किया वरन् समरसता की स्थापना द्वारा समाज को पुष्ट करके राजनीतिक जागरण पैदा करना ही अपना कर्तव्य समझा।[10]

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान दीनबंधु सीएफ एंड्रयूज ने सुझाव पर लाला लाजपत राय एक राष्ट्रवादी दैनिक पत्र के प्रकाशन के निमित्त जुट गए। शीघ्र ही लाला लाजपत राय और उनके सहयोगियों ने अक्टुबर, 1904 में समाचार पत्र 'द पंजाबी' का शुभारंभ कर दिया। 'द पंजाबी' ने अपने प्रथम संस्करण से ही आभास करा दिया कि उसका उद्देश्य मात्र एक दैनिक पत्र बनना नहीं बल्कि ब्रिटिश साम्राज्य से भारतमाता की मुक्ति के लिए देश के जनमानस को जाग्रत करना और राजनीतिक चेतना पैदा करना है। 'द पंजाबी' ने यह भी सुनिश्चित कर दिया कि स्वतंत्रता आंदोलन में मीडिया की भूमिका और उसका सरोकार क्या होना चाहिए। 'द पंजाबी' के अलावा लाजपत राय ने यंग इंडिया, यूनाइटेड स्टेट ऑफ अमेरिका, ए हिंदूज इन्प्रेशंस एंड स्टडी, इंगलैंड डैट टू इंडिया, पोलिटिकल फ्यूचर ऑफ इंडिया जैसे ग्रंथों के माध्यम से जनता को आजादी की लड़ाई के लिए प्रेरित किया और राष्ट्रवादी पत्रकारिता की नींव डाली।[11]

दक्षिण अफ्रीका पहुँचने पर महात्मा गांधी ने 'इंडियन ओपीनियन' के माध्यम से दक्षिण अफ्रीकी और भारतीयों को ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति जागृत करने का कार्य किया। यहाँ महात्मा गांधी ने पत्रकारिता की शुरुआत डरबन में 'संपादक के नाम पत्र' लिखकर की थी जब उनसे कोर्ट में पगड़ी उतारने को कहा गया था और उन्होंने ऐसा करने से इनकार कर दिया था। इस विरोध के साथ शुरू हुई पत्रकारिता बाद में 'इंडियन ओपीनियन', 'नवजीवन', 'हरिजन' आदि के प्रकाशन तथा और कई अखबारों में लेख लिखने के साथ बढ़ती गई। 'यंग इण्डिया' के 3 अप्रैल, 1924 के अंक में गाँधी लिखते हैं : 'मैं भारत की आजादी के लिए प्रयत्न क्यों कर रहा हूँ? इसलिए कि मेरा स्वदेशी धर्म मुझे सिखाता है कि इस देश में मेरा जन्म हुआ है। इस देश की संस्कृति मुझे विरासत में मिली है, इसलिए मैं अपनी माता की सेवा करने का ही अधिक-से-अधिक पात्र हूँ और मेरी सेवा पर पहला हक इस जन्म-भूमि का है, परन्तु मेरी स्वदेश-भक्ति मुझे दुसरे देश की सेवा से विमुख नहीं करती।'[12]

स्वतंत्रता पश्चात पत्रकारिता का राष्ट्रभाव

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात पत्रकारिता कमोबेश राष्ट्र के नवनिर्माण के उपक्रम में ही जुटी रही। इस क्रम में सत्ता अधिष्ठान और लोक एकरूप हो गया था। परंतु कुछ लोग थे जो स्वतंत्रता की खुमारी बीतने के बाद के आगत को भाँप कर राष्ट्रवादी चेतना के प्रसार के निरंतर यज्ञ को आवश्यक मानते थे। ऐसे लोगों में प्रमुख थे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के पंडित दीनदयाल उपाध्याय।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय को राजनीतिज्ञ, चिंतक और विचारक के साथ ही सही मायनों में स्वतंत्रता पश्चात की राष्ट्रवादी पत्रकारिता का पुरोधा कहा जा सकता है। वामपंथियों के बढ़ते प्रभाव के कारण भारतीय विचारधारा को संचार माध्यमों में उचित स्थान नहीं मिल पा रहा था, अपितु राष्ट्रीय विचार के प्रति नकारात्मकता वातावरण बनाने के प्रयत्न किए जा रहे थे। देश को उस समय संचार माध्यमों में ऐसे सशक्त विकल्प की आवश्यकता थी, जो कांग्रेस और वामपंथियों से इतर दूसरा पक्ष भी जनता को बता सके। पत्रकारिता की ऐसी धारा, जो पाश्चात्य नहीं अपितु भारतीयता पर आधारित हो। दीनदयाल उपाध्याय ने अपनी दूरदर्शी सोच से पत्रकारिता में ऐसी ही भारतीय धारा

दक्षिण अफ्रीका पहुँचने पर महात्मा गांधी ने 'इंडियन ओपीनियन' के माध्यम से दक्षिण अफ्रीकी और भारतीयों को ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति जागृत करने का कार्य किया। यहाँ महात्मा गांधी ने पत्रकारिता की शुरुआत डरबन में 'संपादक के नाम पत्र' लिखकर की थी जब उनसे कोर्ट में पगड़ी उतारने को कहा गया था और उन्होंने ऐसा करने से इनकार कर दिया था

दीनदयाल उपाध्याय जी के लेखन व पत्रकारिता में लोकतंत्र को चरणबद्ध रूप से निखारने के साथ-साथ उसे भारतीयता के उस दर्शन से संतुलित करने के बौद्धिक उपाय-प्रयोग मिलते हैं जो समाज को अराजकता-उपद्रव से दूर आर्थिक, सामाजिक, प्रशासनिक और सबसे बढ़कर मानसिक-आध्यात्मिक सन्तोष दे सकते हैं

का प्रवाह किया। उन्होंने राष्ट्रीय विचार से ओत-प्रोत मासिक पत्रिका 'राष्ट्रधर्म', साप्ताहिक समाचारपत्र 'पाञ्चजन्य' (हिंदी), 'ऑर्गेनाइजर' (अंग्रेजी) और दैनिक समाचारपत्र 'स्वदेश' प्रारंभ कराये। उन्होंने जब विधिवत पत्रकारिता (1947 में राष्ट्रधर्म के प्रकाशन से) प्रारंभ की, तब तक पत्रकारिता ध्येयवादी या कहिए 'मिशन' मानी जाती थी। पत्रकारिता राष्ट्रीय जागरण का माध्यम थी। पाञ्चजन्य में भी दीनदयालजी 'विचारवीथी' स्तम्भ लिखते थे जबकि अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित ऑर्गेनाइजर में वह 'पॉलिटिकल डायरी' के नाम से स्तम्भ लिखते थे। उनके लेखन में तत्कालीन परिस्थितियों पर बेबाक टिप्पणी के अलावा राष्ट्रजीवन की दिशा दिखाने वाला विचार भी समाविष्ट होता था।[13] दीनदयालजी ने समाचार पत्र-पत्रिकाएं ही प्रकाशित नहीं करायीं, बल्कि उनकी प्रेरणा से कई लोग पत्रकारिता के क्षेत्र में आए और आगे चलकर इस क्षेत्र के प्रमुख हस्ताक्षर बने। इनमें पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी, पूर्व उप प्रधानमंत्री लालकृष्ण आडवाणी, देवेंद्र स्वरूप, महेशचंद्र शर्मा, यादवराव देशमुख, राजीव लोचन अग्निहोत्री, वचनेश त्रिपाठी, महेन्द्र कुलश्रेष्ठ, गिरीश चंद्र मिश्र आदि प्रमुख हैं। ये सब पत्रकारिता की उसी पगडंडी पर आगे बढ़े, जिसका निर्माण दीनदयाल उपाध्याय ने किया।

सरकार से बड़े हैं सांस्कृतिक सरोकार

1947 में भारत विभाजन के साथ ही ब्रिटिश दासता का अंत हुआ। तब यह माना जा रहा था की राष्ट्रीय आंदोलन में आहुति देने का पत्रकारिता का दायित्व पूरा हुआ उस समय पाञ्चजन्य, राष्ट्रधर्म, स्वदेश, ऑर्गेनाइजर आदि पत्र-पत्रिकाओं को प्रारंभ करना कुछ लोगों के लिए चौंकाने वाला था।

स्वशासन की देहरी पर खड़े भारत में पत्रकारिता का यह कदम इस बात का उद्घोष था कि - सरकारें बदलने पर भी जीवित, जाग्रत समाज-संस्कृतियों के सरोकार नहीं बदलते।

समाज लक्षित पत्रकारिता के यह ऐसे प्रयोग थे जहाँ विज्ञापन के लिए सरकार का मुंह ताकने की बजाय समाज की चेतना जगाने तथा लोकतंत्र की सांस्कृतिक अवधारणा के दर्पण में प्रशासन के प्रबोधन का भी विचार निहित था।

केवल प्रश्न करने की बजाय उत्तर देने वाली पत्रकारिता

दीनदयाल उपाध्याय जी के लेखन व पत्रकारिता में लोकतंत्र को चरणबद्ध रूप से निखारने के साथ-साथ उसे भारतीयता के उस दर्शन से संतुलित करने के बौद्धिक उपाय-प्रयोग मिलते हैं जो समाज को अराजकता-उपद्रव से दूर आर्थिक, सामाजिक, प्रशासनिक और सबसे बढ़कर मानसिक-आध्यात्मिक सन्तोष दे सकते हैं।

चूंकि इस पत्रकारिता का बौद्धिक आधार सर्वसमन्वयकारी दर्शन रहा इसलिए इसे किसी भी भूगोल और कालखंड की कसौटी पर कसा जा सकता है। पत्रकारिता के माध्यम से समाज हितकारी समाधान प्रस्तुत करने की क्षमता इन लेखकीय-पत्रकारीय प्रयोगों में सहज ही देखी जा सकती है।

आंदोलन के नाम पर अराजकता और उपद्रवी जिद का निराकरण :

दूसरों की बात सुनना या उनके मत का आदर करना एक बात है किन्तु दूसरे के सामने झुकना बिल्कुल भिन्न बात। दूसरे की इच्छा के सामने झुकने की तैयारी में एक खतरा सदैव बना रहता है जो सज्जन एवं धर्मभीरु होते हैं वह तो सदैव अपनी बात का आग्रह छोड़कर दूसरों की बात मान लेते हैं, किंतु जो दुर्जन एवं दुराग्रही हैं वह अपनी जिद मनवा कर समाज के अगुआ बन जाते हैं और धीरे-धीरे लोकतंत्र विकृत रूप में उपस्थित होकर समाज के लिए कष्टदायक हो जाता है।

इसी अराजकता और जिद का सामना करने के लिए दीनदयाल जी का दर्शन लोकमत परिष्कार का विचार देता है। जिस समाज में यह परिष्कार का काम चलता रहेगा वहां सहिष्ण, संयमशील व्यक्तियों का मंडल निरंतर बढ़ता चला जाएगा, यदि एकाध अपवाद रहा भी तो वह अपना वर्चस्व नहीं जमा सकेगा-

- दीनदयाल उपाध्याय (राष्ट्रजीवन की दिशा पुस्तक 1971)

अराजकता नहीं विकास क्रम -

सभी इकाइयां सत्य हैं। हमारी आत्म चेतना का जैसे जैसे विस्तार होगा, वैसे वैसे हमारे साक्षात्कार का विकास होगा। सभी सत्य है, इस कारण दूसरे का तिरस्कार नहीं, उनका परित्याग नहीं और निषेध नहीं होगा। जैसे बीज से अंकुर और अंकुर से पौधा निकलता है तथा वहीं से शाखाएं एवं पल्लव निकलते हैं, उसमें से फूल और फल निकलते हैं। हर एक का आकार अलग है, अंकुर अलग है, पौधा अलग है, फूल अलग हैं, फल अलग है, एक दूसरे का कोई संबंध नहीं दिखता - प्रतीत होता है कि यह अत्यंत अराजक स्थिति है -लेकिन यह अराजक ना होकर एक विकास क्रम है। बीज और अंकुर में कोई विरोध नहीं सबसे छोटी इकाई से लेकर सबसे बड़ी इकाई तक एकात्मता है। सभी अपने-अपने दायरे में सत्य हैं। कोई एक दूसरे विरोध नहीं करता। यह भारतीय विचार पद्धति की विशेषता है।

(एकात्म मानव दर्शन की व्याख्या करते हुए प्रख्यात स्वदेशी चिंतक, स्वर्गीय दत्तोपंत ठेंगड़ी जी का कथन)

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का यह विचार कि - राजनीतिक शक्ति का प्रजा में विकेंद्रीकरण करके जिस प्रकार शासन की संस्था का निर्माण किया जाता है उसी प्रकार आर्थिक शक्ति का भी प्रजा में विकेंद्रीकरण करके अर्थव्यवस्था का निर्माण एवं संचालन होना चाहिए- आर्थिक पत्रकारिता के भारतीय आयामों की ही रूपरेखा नहीं खींचता अपितु

विश्व स्तर पर अपनाने योग्य मापदंड व दर्शन सामने रखता है।

दीनदयाल जी की इस वैचारिक स्पष्टता के कारण ही पाञ्चजन्य की पत्रकारिता में समस्या की बजाय समाधान, दोषारोपण की बजाय प्रबोधन के प्रयास दिखते हैं।

'योजना बदलो' शीर्षक से उन्होंने पांच धारावाहिक आलेख लिखे। वे पाश्चात्य 'वाद' (इज़्म) परंपरा के ढांचे से बंधकर सोचने की बजाय भारतीय परंपरा एवं परिस्थिति को समझकर व्यवहारिक आयोजन के पक्ष में थे। उन्होंने कहा भारतीय अर्थव्यवस्था की समस्याओं के लिए 2 शब्दों का निदान पर्याप्त है पहला है 'स्वदेशी' तथा दूसरा है 'विकेंद्रीकरण' दीनदयाल जी ने कश्मीर के भारत विलय में उत्पन्न की गई बाधाओं के खिलाफ देशभर में सत्याग्रह आयोजित किया।

राष्ट्रवादी चेतना पर कुठाराघात का षड्यंत्र

भारतीय या यूँ कहें हिंदी पत्रकारिता में बड़ा और नकारात्मक परिवर्तन 1975 के बाद आया जब तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने आपातकाल लगाकर पत्रकारिता पर जबरदस्त अंकुश लगाया और पत्रकारों को प्रताड़ित किया। इसकी आड़ में आयातित विचारधारा के साथ पत्रकारिता में पैठ बना चुके वामपंथियों ने सत्ता प्रतिष्ठान के विरोध को ही पत्रकारिता बताना शुरू किया। दरअसल, इसके पीछे रणनीति भारतीय गणराज्य को कमजोर करना था। इसके तहत भारतीय संस्कृति, परंपरा, स्वदेशी, स्वपरिधान, स्वभाषा और स्वधर्म को दकियानूसी, पिछड़ा और हास्यास्पद बताने का क्रम शुरू हुआ। अर्थात स्वतंत्रता पूर्व के पत्रकारीय नायकों ने अपनी पत्रकारिता के माध्यम से भारतीयों में आत्मसम्मान और जागरण का भाव उत्पन्न कर जो राष्ट्रवाद की अलख जगायी थी, उस पर कुठाराघात करने का षड्यंत्र शुरू हो गया। पत्रकारिता की नयी परिभाषाएँ गढ़ी जाने लगीं जिसमें भारतीय पत्रकारिता के मूल डीएनए राष्ट्रवाद को बाहर कर दिया गया और पत्रकारिता को राष्ट्र और राष्ट्र की संस्कृति से अलग बताया जाने लगा।

इस बीच, सोवियत संघ का साम्यवादी ढाँचा टूटने के बाद पूँजी का प्रभुत्व बढ़ने लगा और समाचारपत्र निकालने का उद्देश्य राष्ट्रीय चेतना के विकास के बजाय लाभ कमाना बनने लगा। पूँजी विरोधी होने के बावजूद यह स्थिति वामपंथियों के लिए अनुकूल थी क्योंकि पूँजी से उत्पन्न व्यक्तिवाद सामूहिक राष्ट्रवादी चेतना के विरुद्ध जाता दिखा और समाचारपत्र कारोबार का रूप धारण करने लगे। इससे आयातित विचारधारा के लोगों को सहूलियत हुई और राष्ट्रवादी चेतना के बरक्स अराजकता का प्रसार उनके लिए अनुकूल हो गया। इस भाव को भुनाते हुए सत्ता प्रतिष्ठान विरोधी के नाम पर अराजकता वादी ऐसे तत्व सामने आ गए, जिनकी विचारधारा आयातित थी, पत्रकारिता का स्वरूप भारतीय नहीं था।

पत्रकारिता की वर्तमान स्थिति

वर्तमान पत्रकारिता पर दृष्टि डालें तो पत्रकारीय माध्यमों का दायरा बढ़ा है। पहले समाचारपत्र ही सूचना और विचार के माध्यम थे। सुबह-सुबह एक समाचारपत्र आता था जिससे लोकसत्ता (जनता) नये घटनाक्रम से परिचित होती थी। इस एकरूपता को सांध्य दैनिकों ने तोड़ा। इस दौरान श्रव्य माध्यम यथा आकाशवाणी पर भी समाचार आते रहे लेकिन वह भी समय-समय पर और संक्षिप्त रहा और समाचारपत्रों की प्रासंगिकता को इससे कोई आघात नहीं पहुँचा। फिर दृश्य माध्यम आये और टीवी पर रात को एक घंटे के समाचार बुलेटिन की शुरुआत हुई जिसने समाचारपत्रों की एकरसता को तोड़ा। इसके बाद निजी समाचार चैनलों का प्रादुर्भाव हुआ और चौबीस घंटे समाचारों का दौर आया। इसमें सबसे पहले समाचार (ब्रेकिंग न्यूज) प्रस्तुत करने की होड़ हुई। परंतु मोबाइल और डिजिटल माध्यम आने से समाचारपत्रों की सूचना देने के प्राथमिक दायित्व की प्रासंगिकता पर असर पड़ा। जब पाकिस्तान के एबटाबाद में ओसामा बिन लादेन को पकड़ने के लिए अमेरिका ने कार्रवाई की तो एक गैर-पत्रकारीय व्यक्ति ने अपने ब्लैकबेरी मोबाइल से सोशल मीडिया पर सूचना दी कि वहाँ आसमान में कुछ हेलीकॉप्टर मँडराते देखे गए। इससे लोक पत्रकारिता (सिटीजन जर्नलिज्म) शुरू हो गई और ब्रेकिंग न्यूज स्थापित समाचार माध्यमों पर आने से पहले सोशल मीडिया पर छाने लगे।

क्या हो समाचारपत्रों की भूमिका

ऐसे में समाचारपत्रों की भूमिका अब क्या हो, यह एक समीचीन विषय हो गया है। इसका उत्तर ढूँढें तो देखते हैं कि आज समाचारपत्रों की पत्रकारिता चार हिस्सों में बँटी है - पत्रकारिता (सूचना देना), विज्ञापन, जनसंपर्क और प्रपंच (प्रोपेगेंडा। इसमें बाद के तीन कारोबार की दृष्टि से प्रमुख तत्व हैं और पहला हिस्सा पत्रकारिता महज सूचना देने तक सीमित हो गया है। इनके बीच समाचारपत्रों से सरोकार और विचार लापता हो गए हैं।

हिंदी अखबारों और पत्रिकाओं के इस वैचारिक संकट का अनुमान पत्रकार शिरोमणि बाबूराव विष्णु पराड़कर ने 95 साल पहले लगा लिया था। तभी उन्होंने 1925 में वृंदावन के हिंदी संपादक सम्मेलन में कहा था, 'आने वाले वर्षों में समाचार-पत्र व पत्रिका निकालना बड़े-बड़े सेठ-साहूकारों का काम होगा। समाचार-पत्रों की प्रसार संख्या लाखों करोड़ों में होगी। ये रंग-बिरंगी होंगे। उत्कृष्ट साज-सज्जाओं से सुसज्जित होंगे। परन्तु इन सबके बावजूद भी समाचार-पत्र प्राणहीन होंगे।' पराड़कर जी की यह भविष्यवाणी आज अधिकांशत: सच

वर्तमान पत्रकारिता पर दृष्टि डालें तो पत्रकारीय माध्यमों का दायरा बढ़ा है। पहले समाचारपत्र ही सूचना और विचार के माध्यम थे। सुबह-सुबह एक समाचारपत्र आता था जिससे लोकसत्ता (जनता) नये घटनाक्रम से परिचित होती थी। इस एकरूपता को सांध्य दैनिकों ने तोड़ा। इस दौरान श्रव्य माध्यम यथा आकाशवाणी पर भी समाचार आते रहे लेकिन वह भी समय-समय पर और संक्षिप्त रहा और समाचारपत्रों की प्रासंगिकता को इससे कोई आघात नहीं पहुँचा

साबित होने लगी है।[14]

अब प्रश्न है कि जब समाचारपत्रों से सूचना देने का कार्य सोशल मीडिया की ओर चला गया है तो समाचारपत्रों को क्या दायित्व लेने चाहिए। यह दायित्व आकलन, विश्लेषण, सरोकार और विचार के हो सकते हैं। यह सरोकार और विचार ही हैं जो भारतीय पत्रकारिता के उद्भव से ही इसके मूल में रहे हैं या पत्रकारिता के डीएनए रहे हैं। तो फिर यह सरोकार और विचार क्या हों? सरोकार के प्रश्न पर आने पर लोग इसकी आड़ में अराजकता का विचार लेकर आते हैं। यह अराजकतावादी विचारधारा भारतीय पत्रकारिता के मूल डीएनए के विपरीत है लेकिन विचार और सरोकार के नाम पर इस अराजकता को ही स्थापित करने के प्रयास किए जाते हैं। इसे इस तरह बताया जाता है कि पत्रकारिता का दायित्व सत्ता प्रतिष्ठान का विरोध करना है। इसका उदाहरण स्वतंत्रता पूर्व की पत्रकारिता द्वारा तत्कालीन ब्रिटिश सरकार का विरोध करने के रूप में दिया जाता है। इसकी आड़ में सरकार के विरुद्ध नक्सलियों तक की पैरोकारी को उचित ठहराया जाता है और मानवाधिकार की आड़ में आतंकियों और देशद्रोही शक्तियों के दानवाधिकारों की पैरोकारी की जाने लगती है और देश विकास के बजाय अवनति के मार्ग पर और समाज मूल्यहीनता के मार्ग चल पड़ता है।

वैचारिक पत्रकारिता का उद्देश्य भारतीय विचारधारा को आगे बढ़ाने का, भारत के समाज, रिवाजों में आई विकृतियों को दूर करने का, भारत के लोक को शैक्षिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्तर पर उन्नत करने का होना चाहिए। भारतीय संस्कृति की मूल विशेषताएँ सत्य, स्वाभिमान, संतोष और सहिष्णुता हैं। वैचारिक पत्रकारिता इन संदर्भों में लोकमानस को बलवती करने की दृष्टि से होनी चाहिए

किन बिंदुओं पर हो वैचारिक पत्रकारिता

इससे बचाव क्या है? स्वतंत्रता से पूर्व मुख्य सरोकार देश को स्वतंत्र कराना था। वह लक्ष्य पूरा होने के बाद अब क्या? प्रश्न बहुत कठिन नहीं है। देश की सर्वांगीण स्वतंत्रता (राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, शैक्षिक स्वतंत्रता), एकता और अखंडता को अक्षुण्ण बनाये रखना और इस देश के लोक का चहुँमुखी विकास ही वर्तमान में पत्रकारिता का सबसे प्रमुख सरोकार हो सकता है।

पत्रकारिता देश तोड़ने का औजार भी हो सकती है और समाज को जोड़ने का माध्यम भी। दीनदयाल जी के शब्दों में कहें तो-

'समाज जितना यह समझता जाएगा कि राज्य को चलाने की जिम्मेदारी उसकी है उतना ही वह संयमशील बनता जाएगा। जिस दल को लगता है कि कल हमारे कंधों पर राज्य संचालन का भार आ सकता है, वह कभी अपने वादों में और व्यवहार में गैर जिम्मेदार एवं असंयत नहीं होगा। फिर जनता के ऊपर तो राज्य चलाने की जिम्मेदारी सदैव ही रहती है।'

वैचारिक पत्रकारिता का उद्देश्य भारतीय विचारधारा को आगे बढ़ाने का, भारत के समाज, रिवाजों में आई विकृतियों को दूर करने का, भारत के लोक को शैक्षिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्तर पर उन्नत करने का होना चाहिए। भारतीय संस्कृति की मूल विशेषताएँ सत्य, स्वाभिमान, संतोष और सहिष्णुता हैं। वैचारिक पत्रकारिता इन संदर्भों में लोकमानस को बलवती करने की दृष्टि से होनी चाहिए। अहिंसा भारत का संस्कार रहा है - गीता में भगवान श्रीकृष्ण कह गए हैं - "अहिंसा परमो धर्मः धर्म हिंसा तथैव चः।" ऐसे मूलाधारों के सही भावार्थ को लोक तक पहुँचाने की पत्रकारिता होनी चाहिए ताकि हर भारतीय स्वयं में शक्तिमान बने और राष्ट्र को एक बार पुनः परम वैभव तक पहुँचाने में अपनी भूमिका निभा सके।

संदर्भ :

1. https://mobi.bharatdiscovery.org/india/भारत_में_समाचारपत्रों_का_इतिहास#gsc.tab=0
2. भारतीय प्रेस और पत्रकारिता के अग्रदूत : राजा राममोहन राय, संतोष शुक्ला, मीडिया नवचिंतन, अप्रैल-जून, 2016
3. भारतीय पत्रकारिता: नींव के पत्थर, डा. मंगला अनुजा, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, संस्करण-1996, पृष्ठ-15
4. डॉ. प्रभात कुमार सिंघल, https://www.prabhasakshi.com/trending/hindi-journalism-194-years-old
5. भारतीय पत्रकारिता: नींव के पत्थर, डा. मंगला अनुजा, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, संस्करण-1996, पृष्ठ-72
6. https://mobi.bharatdiscovery.org/india/भारत_में_समाचारपत्रों_का_इतिहास#gsc.tab=0
7. निशा डागर, https://hindi.thebetterindia.com/11342/lokmanya-tilak-started-kesari-newspaper/
8. प्रो. संजय द्विवेदी, निदेशक, भारतीय जनसंचार संस्थान, नयी दिल्ली, राष्ट्रवादी पत्रकारिता के ध्वजवाहक: पं. मदनमोहन मालवीय, प्रवक्ता, फरवरी, 2011
9. रामविलास शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, पृष्ठ संख्या 360
10. कैलाशनाथ पाण्डेय, हिंदी पत्रकारिता, पृष्ठ 392-393
11. अरविंद जयतिलक, स्वतंत्रता आंदोलन में मीडिया की भूमिका और उसके सरोकार, समाचार4मीडिया, मई, 2016
12. सम्पूर्ण गाँधी वांग्मय, खंड 23, पृष्ठ 363
13. लोकेन्द्र सिंह राजपूत, पत्रकारिता में शुचिता, नैतिकता और आदर्श के हामी दीनदयालजी, प्रवक्ता, 25 सितंबर, 2020
14. दैनिक हिंदुस्तान, दिसंबर, 2009

अशोक कुमार टंडन

भारत में समाचार एजेंसियों की उत्पत्ति और विकास

समाचार समय पर प्रसारित करना किसी भी मीडिया का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य होता है। प्रतिस्पर्धा के कारण यह और महत्वपूर्ण हो जाता है और किसी भी मीडिया के संवाददाताओं का तंत्र इतना व्यापक नहीं होता कि वह दुनिया भर की खबरें एकत्र कर सके। ऐसे में मीडिया के लिए समाचार एजेंसियों की भूमिका अनिवार्य हो जाती है

सूचना शक्ति है और इसका प्रसारण करने वाले साधन शक्ति को बरकरार रखने व उसेका विस्तार करने का हमेशा ही एक शक्तिशाली हथियार रहे हैं। औद्योगिक क्रांति काल के बाद ज्यादातर साम्राज्यवादी ताकतों ने यही किया। एशिया, अफ्रीका और लातीनी अमेरिका में उपनिवेशवादी शासकों ने दुनिया भर में अपने-अपने उपनिवेशों पर नियंत्रण का विस्तार व संरक्षण करने और मजबूत करने हेतु संदेशों तथा सूचना के प्रसारण के लिए समाचार संस्थाओं (आरंभ में वायर सर्विसेज अथवा न्यूज पूल्स कहलाने वाली) को उतारा, बढ़ावा और प्रोत्साहन दिया और उनका उपयोग किया।

रॉयटर्स (ब्रिटिश), एएफपी (एजेंसी फ्रांस प्रेस) (फ्रेंच), डीपीए (डेश्यूशे प्रेस एजेंसी) (जर्मनी), स्पेनिश न्यूज एजेंसी और यूनाइटेड प्रेस इंटरनेशनल (यूपीआई) और एसोसिएटेड प्रेस (एपी) - दोनों अमेरिकी - वायर सर्विसेज के रूप में, या जिन्हें हम आज ट्रांसनेशनल न्यूज एजेंसीज कहते हैं, उस रूप में स्थापित होने वाली शुरुआती समाचार संस्थाएँ हैं। सन् 1857 के भारत के पहले स्वतंत्रता संग्राम के बाद, भारत और लंदन के बीच संदेशों/सूचना/समाचारों के प्रसारण के लिए अंग्रेजों को संचार के कारगर माध्यमों की जरूरत महसूस हुई। भारत में रॉयटर्स न्यूज एजेंसी को अंग्रेज लेकर आए, मुख्य रूप से राज एवं लंदन की ब्रिटिश सरकार के बीच महत्वपूर्ण सूचना/संदेशों/समाचारों के वितरण के लिए। नवीनतम तकनीकी के अभाव के चलते यह सुनिश्चित करने के लिए कि रॉयटर्स अपंग नहीं था, अंग्रेजों ने सन् 1870 में लंदन से बंबई तक समुद्र के भीतर तार बिछाया। इसी ने ब्रिटिश भारत में टेलीग्राफ को जन्म दिया। यह केवल अंग्रेजों के लिए उपलब्ध था और रॉयटर्स को स्थानीय समाचार पत्रों को अपने समाचार प्रसारित करने की मनाही थी।

सन् 1904 में कलकत्ते के एक उत्साही पत्रकार केशव चंद्र रॉय (जो के. सी. रॉय के नाम से जाने जाते थे) ने भारत के एक से अधिक समाचारपत्रों के लिए किफायती मूल्य पर समाचार साझा करने की अवधारणा दी। वह उन भारतीय संवाददाताओं में शामिल थे जो ब्रिटिश दरबार के कलकत्ते से उठकर उसकी ग्रीष्मकालीन राजधानी शिमला स्थानांतरित होने पर हर बार सरकारी समाचार को कवर करने के लिए वहाँ जाया करते थे। इस तरह संग्रह किए गए अपने समाचारों को वह सात अथवा आठ भारतीय अंग्रेजी दैनिक समाचारपत्रों को बेचा करते थे। अपनी निजी समाचार संग्रह व्यवस्था को रॉय ने एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडिया (एपीआई) का नाम दिया था। इसीलिए रॉय को भारत में समाचार संस्थाओं के जनक के रूप में जाना जाता है। बढ़ते समय के साथ एपीआई किसी सहायता के बिना एक महत्वपूर्ण स्थानीय समाचार संस्था बन गई। भारत के समाचारों को विदेशों में प्रसारित करने के लिए, शुरू में रॉयटर्स ने के. सी. रॉय के साथ काम करना शुरू किया, पर आगे चलकर इस ब्रिटिश वायर सर्विस ने रॉय की एपीआई खरीद ली और इसे रॉयटर की भारतीय शाखा बना दिया ताकि एक उभरती भारतीय समाचार संस्था से मिल रही हर होड़ अथवा चुनौती को खत्म कर सके।

सन् 1947 में आजादी के समय रॉयटर्स से अन्य सभी औपनिवेशिक संगठनों की तरह देश छोड़ देने और अपने कारोबार अपनी भारतीय शाखा एपीआई समाचार एजेंसी के हवाले कर देने को कहा गया। पर रॉयटर्स ने ऐसा करने

से मना कर दिया। रॉयटर के टेलीप्रिंटर का नवीकरण जुलाई 1947 में होना था। सरदार बल्लभभाई पटेल, जो आजाद भारत के पहले सूचना एवं प्रसारण मंत्री भी थे, ने रॉयटर्स को चेतावनी दी और अपने प्रसारण लाइसेंस के रद्द हो जाने के भय से इस ब्रिटिश समाचार संस्था ने न चाहते हुए भी भारत और अपनी भारतीय शाखा छोड़ दी। आगे चलकर एपीआई राष्ट्रीय समाचार एजेंसी के रूप में उभर कर सामने आई और प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया (भारतीय प्रेस ट्रस्ट/पीटीआई) कहलाई।

भारतीय समाचारपत्रों के सात प्रकाशकों के एक समूह में 27 अगस्त, 1947 को पीटीआई को एक लिमिटेड कंपनी के रूप में शामिल किया गया, जिसने 1949 में एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडिया (एपीआई) की बागडोर अपने हाथ में ले ली। सन् 1948 में पीटीआई-रॉयटर्स के समझौते के अनुरूप, इस भारतीय समाचार एजेंसी को ब्रिटेन की मूल कंपनी के 12500 शेयर खरीदने पड़े ताकि भारतीय समाचारपत्रों के ग्राहकों को दुनिया के समाचार उपलब्ध कराए जाते रहें। रॉयटर्स से अंतरराष्ट्रीय समाचार प्राप्त करने हेतु पीटीआई को उसके शेयर खरीदने के लिए धन की तत्काल जरूरत थी। धन संग्रह करने के लिए उसने डिबेंचर जारी किए। सरदार पटेल ने बड़ौदा के शासक को भारी संख्या में डिबेंचर खरीदने के लिए राजी कर लिया। अंतरराष्ट्रीय समाचार प्राप्त करने के लिए 14 जनवरी, 1949 को पीटीआई ने धन भेजकर रॉयटर्स के साथ साझेदारी कायम कर ली।

संसद मार्ग पर स्थित रॉयटर्स-एपीआई के कार्यालय पीटीआई को किराये पर दे दिया गया। ब्रिटेन/रॉयटर्स द्वारा छोड़े गए भारी संख्या में सीमेंस टेलीप्रिंटर्स और द्वितीय विश्व युद्ध की पुरानी मशीनें तथा पुराने टाइपराइटर पीटीआई के हवाले कर दिए गए। जब हिंदुस्तान टेलीप्रिंटर्स ने आधुनिक टेलीप्रिंटर्स तैयार किए, तब पीटीआई को आसान भुगतान के आधार पर ये उपकरण उपलब्ध कराए गए। दूरसंचार के देशी और अंतरराष्ट्रीय विभाग ने रिआयती मूल्य पर संचार सुविधाएँ उपलब्ध कराते हुए पीटीआई को विशेष छूट दी। किंतु संचार के रिआयती शुल्क भी बहुत अधिक थे और आर्थिक संकट से ग्रस्त पीटीआई उनका भुगतान नहीं कर सकती थी, जबकि उसके पिछले कर्ज दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे थे।

आजादी के पहले भी, जवाहरलाल नेहरू ने आजाद भारत में एक अंतरराष्ट्रीय समाचार संस्था की स्थापना की परिकल्पना की थी। सन् 1946 में समाचारपत्र संपादक सम्मेलन की एक सभा में बोलते हुए नेहरू ने भारतीय समाचारपत्र-स्वामी समिति से आगे आने और इस सपने को साकार करने की अपील की थी। किंतु उनका वह सपना आज तक साकार नहीं हो पाया है। सन् 1946-47 में संसद में पटेल, जो उस समय अस्वस्थ थे, की ओर से एक सवाल के जवाब में बोलते हुए प्रधानमंत्री नेहरू ने कहा था कि भारत में सरकारी कार्यालयों और एआईआर को समाचार सेवाएँ मुहैया कराने के लिए रॉयटर्स व एपीआई समाचार संस्थाओं को 1,45,568 रुपये का भुगतान कर दिया गया है। संसद में नेहरू ने कहा कि रॉयटर्स यूएनओ में भारतीय प्रतिनिधियों को समाचार नहीं दे रहा और जम्मू व कश्मीर के बारे में गलत खबरें प्रसारित कर रहा है और हमने विधिवत सूचना देकर रॉयटर्स के भुगतान को रोकने का फैसला किया है।

पीटीआई-रॉयटर्स समझौते के नवीकरण के समय, सरकार ने एक सख्त कदम उठाया। तत्कालीन सूचना एवं प्रसारण मंत्री डॉ. बी. वी. केसकर ने 13 अगस्त, 1952 को पीटीआई के प्रबंधन कुछ इस प्रकार लिखा :

"सरकार पीटीआई से आशा करती है कि वह अधिक से अधिक आत्मनिर्भर हो, अन्य अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों के वश में नहीं बल्कि उनके बराबर खड़ी हो और किसी अंतरराष्ट्रीय संघ का कोई अधीनस्थ हिस्सा भी न बने। इस दृष्टि से हम इस प्रस्तावित नए समझौते को अत्यंत असंतोषजनक पाते हैं, एक बढ़ती राष्ट्रीय संस्था के रूप में पीटीआई के लिए अशुभ। यदि हमें लगे कि पीटीआई ने किसी ऐसे समझौते में कदम रख दिया है जो उस स्थिति को क्षति पहुँचाए, जिसे प्राप्त करने की हम उससे आशा करते हैं, और किसी विदेशी अथवा अंतरराष्ट्रीय तंत्र की गुलाम हो जाए, तो हम इस पर गंभीरता से विचार कर सकते हैं कि हम पीटीआई को दी जा रही सुविधाएँ और सहयोग कहाँ तक जारी रख सकते हैं, जो हम उसे अब तक देते रहे हैं।"

चार दिनों के बाद, नेहरू ने भी पीटीआई को लिखा, "बतौर प्रधान मंत्री, मैं पीटीआई और रॉयटर्स के बीच साझेदारी समझौतों में हस्तक्षेप करना नहीं चाहता। किंतु स्वभाववश, इसके व्यापक प्रभावों के कारण इसमें मेरी गहरी अभिरुचि है। मैं चाहता हूँ कि भारत में राष्ट्रीय समाचार संस्थाओं का विकास हो और इसे ध्यान में रखते हुए मैं हर प्रस्ताव पर विचार करना चाहूँगा।"

पीटीआई के अध्यक्ष के रूप में रामनाथ गोयनका ने रॉयटर की 40000 पौंड से 30000 पौंड पर लाने की कड़ी सौदेबाजी की। उन्होंने प्रधानमंत्री नेहरू को लिखा कि रॉयटर्स की माँग बहुत ज्यादा थी और पीटीआई फ्रांसीसी समाचार संस्था एएफपी के साथ एक समझौते पर विचार कर रही थी। पीटीआई के निदेशक मंडल ने अंततः रॉयटर्स के साथ समझौते को जारी रखने की सहमति दी और चार वर्षों के एक ठेके पर 30000 जीबीपी का भुगतान किया। नेहरू इससे खुश नहीं थे।

पीटीआई को, जिसे सन् 1947 में पहले ही संसद मार्ग पर एक कार्यालय दिया

यदि हमें लगे कि पीटीआई ने किसी ऐसे समझौते में कदम रख दिया है जो उस स्थिति को क्षति पहुँचाए, जिसे प्राप्त करने की हम उससे आशा करते हैं, और किसी विदेशी अथवा अंतरराष्ट्रीय तंत्र की गुलाम हो जाए, तो हम इस पर गंभीरता से विचार कर सकते हैं कि हम पीटीआई को दी जा रही सुविधाएँ और सहयोग कहाँ तक जारी रख सकते हैं, जो हम उसे अब तक देते रहे हैं

जा चुका था, छठे दशक के आरंभ में उसी भूखंड पर एक छह मंजिला भवन के निर्माण के लिए बहुत आसान शर्तों पर, जैसे कि अखिल भारतीय रेडियो और कुछ अन्य सरकारी विभागों आदि को लंबे पट्टे/किराए पर कुछ कमरे देना आदि, एक करोड़ का ऋण/ अनुदान दिया गया। पीटीआई को अपनी बड़ी भूमिका के कारण एक बड़े बजट की जरूरत थी और सन् 1954 में उसके प्रबंधन ने पुनः नेहरू को एक पत्र लिखा, जिसमें समाचारपत्रों से वांछित अंशदान (चंदा) प्राप्त करने में उनसे सहायता का आग्रह किया गया। सितंबर 1952 में नेहरू ने न्यायमूर्ति जी. एस. राजाध्यक्ष की अध्यक्षता में पहले प्रेस कमीशन का गठन किया। आचार्य नरेंद्र देव, डॉ. सी. पी. रामास्वामी अय्यर, डॉ. जाकिर हुसैन, डॉ. वी. के. आर. वी. राव, पी. एच. पटवर्धन, जे. नटराजन और चलपति राव इसके अन्य 10 सदस्य थे। सन् 1954 में कमीशन ने अपनी रिपोर्ट पेश की। इसने आजाद भारत में समाचार संस्थाओं के कार्यकलाप को लेकर महत्वपूर्ण अनुशंसाएँ कीं।

पहले प्रेस कमीशन की कुछ अनुशंसाओं और अवलोकनों के कुछ तथ्य इस प्रकार थे: "समाचार संस्थाओं को केवल स्वयं को पूर्वाग्रह से दूर रखना और अपने समाचारों की सत्यनिष्ठता, वस्तुनिष्ठता, और बोधगम्यता के सिद्धांतों का सख्ती से पालन करना ही नहीं, बल्कि जनता को यह भी दिखाना चाहिए कि समाचार संस्थाएँ इस प्रणाली की देखरेख कर रही हैं। अपनी रिपोर्ट में इस पहले प्रेस कमीशन ने पीटीआई की सहायता के कुछ उपायों की अनुशंसा भी की ख उसकी कार्यप्रणाली में सुधार, ऑल इंडिया रेडियो के बढ़े हुए भुगतान समेत और केंद्र सरकार द्वारा आसान शर्तों पर एक ब्याजमुक्त दीर्घकालिक ऋण समेत। उसने पीटीआई के तय शुल्कों के एआईआर द्वारा भुगतान की अनुशंसा की - देश में प्रत्येक रेडियो सेट के लिए दस आना वार्षिक दर पर रॉयल्टी के रूप में।

दूसरे प्रेस कमीशन का गठन मोरारजी देसाई की जनता सरकार ने वर्ष 1978 में की। सर्वोच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश न्यायमूर्ति पी. के. गोस्वामी इसके अध्यक्ष थे, और आगे चलकर सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति के. के. मैथ्यू ने उनका स्थान लिया। अन्य बातों के अलावा, इसकी शर्तों में "प्रचलित समाचार संस्थाओं की संरचना और कार्यकलाप" शामिल थे।

भारत में जब कंप्यूटर आया, तो राजीव गाँधी ने पीटीआई को नई तकनीकी पर कार्य संचालन शुरू करने के लिए आसान शर्तों पर चार करोड़ का ऋण/ अनुदान दिया। विदेश मंत्रालय का विदेश प्रचार विभाग अपने सांस्थानिक बुलेटिनों, विश्व की प्रमुख राजधानियों में अपने अभियानों की पत्रिकाओं के प्रकाशन जैसी परियोजनाओं का कार्य देते हुए पीटीआई को निरंतर प्रोत्साहन देता रहा है। नॉन-एलाइंड न्यूज पूल (एनएएनपी) के प्रबंधन के लिए पीटीआई को धन प्रदान किया गया

दूसरे प्रेस कमीशन ने भी वर्ष 1979 में अपनी रिपोर्ट में कहा, "समाचार संस्थाएँ केवल समाचार पत्रों ही नहीं, बड़े जनसमुदाय की सेवा भी करती हैं, इसलिए हमारा मानना है कि सार्वजनिक दायित्व का प्रावधान होना चाहिए।" इसकी सिफारिश के अनुरूप पीटीआई के बोर्ड पर कुछ लघु एवं मझोले समाचार पत्रों को स्थान दिया गया। पहले कमीशन में पीटीआई को उसके गठन के समय से होने वाले घाटों पर भी विचार किया गया और हिस्सेदार समाचार पत्रों पर उनके अपने 'चंदों के बढ़ते बकायों' को लेकर आरोप भी लगाया गया और उनसे बकायों की वसूली में ढिलाई के लिए पीटीआई के प्रबंधन की आलोचना की गई। न्यूजपेपर इकोनॉमिक्स की तथ्यान्वेषी समिति ने वर्ष 1975 में अपनी रिपोर्ट में लिखा कि दैनिक समाचार पत्र जो समाचार प्रकाशित करते हैं उसके लिए वे मुख्यतः समाचार संस्थाओं पर निर्भर करते हैं और यह कि "किसी समाचार पत्र द्वारा चंदे के भुगतान की राशि उसकी उत्पादन लागत का एक मामूली अंश होती है।"

पहले प्रेस कमीशन ने पीटीआई के 'गलत प्रबंधन' और 'भाई-भतीजाबाद' तथा खातों के निरीक्षण में ढिलाई के आरोपों पर गौर किया। इसकी रिपोर्ट ने निदेशक मंडल के लिए कई शर्तें पारित कीं और 'संसद के एक अधिनियम के तहत स्थापित अथवा राष्ट्रपति के एक चार्टर के तहत कार्यरत किसी सार्वजनिक कॉर्पोरेशन' में पीटीआई के हस्तांतरण में सभी सहायता को सशर्त बना दिया। 'सेवा की बढ़ती मांगों को पूरा करने की एक सुगठित योजना' के अभाव के चलते अपने पर लगे आरोप से परेशान पीटीआई बोर्ड सन् 1956 में सार्वजनिक जीवन से कुछ प्रमुख लोगों को अपने सदस्यों में शामिल करने पर सहमत हुई।

भारत में जब कंप्यूटर आया, तो राजीव गाँधी ने पीटीआई को नई तकनीकी पर कार्य संचालन शुरू करने के लिए आसान शर्तों पर चार करोड़ का ऋण/ अनुदान दिया। विदेश मंत्रालय का विदेश प्रचार विभाग अपने सांस्थानिक बुलेटिनों, विश्व की प्रमुख राजधानियों में अपने अभियानों की पत्रिकाओं के प्रकाशन जैसी परियोजनाओं का कार्य देते हुए पीटीआई को निरंतर प्रोत्साहन देता रहा है। नॉन-एलाइंड न्यूज पूल (एनएएनपी) के प्रबंधन के लिए पीटीआई को धन प्रदान किया गया। एशिया-प्रशांत समाचार एजेंसी संगठन (ऑर्गेनाइजेशन ऑफ एशिया-पैसिफिक न्यूज एजेंसीज/ओएएनए) के प्रबंधन के लिए सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय (आई एंड बी) ने पीटीआई को धन मुहैया कराया।

सरकार के विभिन्न विभाग, सार्वजनिक क्षेत्र की संस्थाएँ और वित्तीय संस्थान तथा कॉर्पोरेट घराने पीटीआई की विशेष सेवा, खेल सेवा, स्कैन सेवा, स्टॉक स्कैन सेवा, विज्ञान सेवा, अर्थ सेवा और कॉर्पोरेट सेवा को नियमित रूप से प्रोत्साहन देते रहे हैं। पीटीआई के कर्मचारियों के वेतन के एक बड़े भाग का भुगतान आज भी बाजार दर के उसी किराए से किया जाता है, जो उसे उसी स्थल पर स्थित भवन के पाँच फ्लैटों से मिलता है।

जून 1975 में, जब तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी ने आपातकाल लगाया, सभी चार

समाचार संस्थाओं - पीटीआई, यूएनआई, हिंदुस्तान समाचार और समाचार भारती - को मिलाकर एक संस्था 'समाचार' का गठन कर दिया गया। सभी एजेंसियों को अपने विशाल बकायों का भुगतान तत्काल करने अथवा विलय प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करने को कहा गया। वर्ष 1977 में जब जनता पार्टी की सरकार बनी, तब उसने कुलदीप नैयर समिति का गठन किया, जिसने अपनी रिपोर्ट में समाचार के विघटन और पूर्व की स्थिति पुनः बहाल करने की अनुशंसा की।

वर्ष 1978 में जनता सरकार ने भी दूसरे प्रेस कमीशन का गठन किया। इसमें आकाशवाणी और दूरदर्शन द्वारा समाचार संस्थाओं को दिए जाने वाले चंदे की प्रणाली का अध्ययन किया गया और समाचार संस्थाओं के लिए एक यथार्थवादी सदस्यता सूत्र की अनुशंसा की गई।

प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया

भारत की सबसे बड़ी समाचार एजेंसी, प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया/भारतीय प्रेस ट्रस्ट/ पीटीआई) देश के समाचारपत्रों के स्वामित्व वाला एक लाभनिरपेक्ष साझा सहकारी संगठन है, जिसे उसके अपने सभी ग्राहकों को सच्चे और निष्पक्ष समाचार मुहैया कराने का आदेश है। 27 अगस्त, 1947 को स्थापित पीटीआई ने 1 फरवरी 1949 से कार्य करना शुरू किया। पीटीआई अंग्रेजी व हिंदी भाषाओं में अपनी समाचार सेवाएँ पेश करती है। भाषा इसी संस्था की हिंदी समाचार सेवा है। भारत में 500 समाचार पत्रों के अतिरिक्त अन्य देशों में भी पीटीआई के भारी संख्या में ग्राहक हैं। पीटीआई की इनसैट उपग्रह पर एक ट्रांसपांडर के माध्यम से आज अपनी उपग्रह वितरण प्रणाली है, जो देश में कहीं भी अपने ग्राहकों तक सीधे तौर पर पहुँचती है। फोटो सेवा उपग्रह के अतिरिक्त डायल-अप प्रणाली से भी उपलब्ध होती है। आज पीटीआई http://www.ptinews.com पर अपनी सेवा का प्रसारण कर रही है। 400 पत्रकारों समेत 1500 से अधिक कर्मचारियों के साथ, पीटीआई के देश भर में 100 से अधिक ब्यूरो और बीजिंग, बर्लिन, कोलंबो, ढाका, दुबई, इस्लामाबद, लंदन, मास्को, न्यूयॉर्क तथा वॉशिंगटन समेत विश्व के विभिन्न प्रमुख शहरों में विदेशी संवाददाता हैं। इसके अतिरिक्त, देश में लगभग 500 स्ट्रिंगर हैं जो समाचार जुटाने सहयोग करते हैं, जबकि 20 संवाददाता विश्व के अन्य भागों से समाचार पहुँचाते हैं।

समाचार एवं फोटो सेवाओं के अतिरिक्त संस्था कुछ और सेवाएँ भी मुहैया कराती है, जिनमें मेलर पैकेजेज ऑफ फीचर, ग्राफिक्स, साइंस सर्विस, इकॉन सर्विस और डाटा इंडिया तथा न्यूज-स्कैन स्टॉकस्कैन जैसी स्क्रीन आधारित सेवाएँ शामिल हैं। इसकी एक दूरदर्शन सेवा - पीटीआई-टीवी भी है, जिसमें फीचर के साथ-साथ नियत कार्य के आधार पर कॉर्पोरेट डाक्यूमेंटरी का भी प्रसारण किया जाता है।

पीटीआई ने भारत में अपने समाचार वितरण के लिए एसोसिएटेड प्रेस और फ्रांस मीडिया एजेंसी से समझौता कर रखा है। भारत में पीटीआई के माध्यम से एपी की फोटो एवं अंतरराष्ट्रीय व्यावसायिक सूचना सेवाओं का वितरण भी किया जाता है। पीटीआई सिंगापुर में पंजीकृत एशिया पल्स इंटरनेशनल का एक साझेदार है, जिसका गठन एशिया के देशों में आर्थिक विकास और व्यवसाय के अवसरों का इंटरनेट पर एक आँकड़ा कोष मुहैया कराने के ध्येय से एशिया के पाँच मीडिया संगठनों के साथ मिलकर उसने स्वयं किया है। पीटीआई कॉर्पोरेट व सरकारी प्रेस विज्ञप्तियों के वितरण के लिए गठित एशिया-प्रशांत क्षेत्र की 12 समाचार संस्थाओं के एक सहकारी संगठन एशियानेट का भी एक साझेदार है। पीटीआई निर्गुट देशों के पूल ऑफ न्यूज एजेंसीज और ऑर्गेनाइजेशन ऑफ एशिया-पैसिफिक न्यूज एजेंसीज का एक प्रमुख साझेदार है। इसका एशिया, अफ्रीका के देशों से संबद्ध कई समाचार संस्थाओं के साथ इसका द्विपक्षीय समाचार आदान-प्रदान समझौता भी है।

पीटीआई ने भारत में अपने समाचार वितरण के लिए एसोसिएटेड प्रेस और फ्रांस मीडिया एजेंसी से समझौता कर रखा है। भारत में पीटीआई के माध्यम से एपी की फोटो एवं अंतरराष्ट्रीय व्यावसायिक सूचना सेवाओं का वितरण भी किया जाता है। पीटीआई सिंगापुर में पंजीकृत एशिया पल्स इंटरनेशनल का एक साझेदार है, जिसका गठन एशिया के देशों में आर्थिक विकास और व्यवसाय के अवसरों का इंटरनेट पर एक आँकड़ा कोष मुहैया कराने के ध्येय से एशिया के पाँच मीडिया संगठनों के साथ मिलकर उसने स्वयं किया है

यूनाइटेड न्यूज ऑफ इंडिया

वर्ष 1954 में पहले प्रेस कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में पीटीआई के मुकाबले एक और समाचार संस्था के महत्व पर बल दिया। कुछ समाचार पत्रों के स्वामी आगे आए और वर्ष 1961 में यूएनआई का गठन किया। समाचार पत्र स्वामियों की शीर्ष संस्था आईईएनएस (इंडियन एंड ईस्टर्न न्यूजपेपर सोसाइटी), जिसे अब आईएनएस (इंडियन न्यूजपेपर्स सोसाइटी) कहा जाता है, ने पीटीआई के एकाधिपत्य को समाप्त करने के लिए भारत में दूसरी समाचार संस्था के रूप में यूएनआई की स्थापना करने का निर्णय लिया। इस समाचार संस्था को नई दिल्ली में रफी मार्ग स्थित एक बंगला प्रदान किया गया।

यूनाइटेड न्यूज ऑफ इंडिया (यूएनआई) की स्थापना 21 मार्च, 1961 को हुई और आज यह एशिया की सबसे बड़ी समाचार संस्थाओं में से एक है, जिसके भारत और अन्य देशों में 90 ब्यूरो हैं। भारत और अन्य देशों में, विशेष रूप से खाड़ी देशों में, इसके 1,000 से अधिक सदस्य हैं। भारत के सभी प्रमुख नगरों और महानगरों तथा विश्व की कई मुख्य राजधानियों में इसके संवाददाता हैं। रॉयटर्स समेत अन्य देशों की कई समाचार संस्थाओं से यूएनआई समाचारों का आदान-प्रदान करती है।

हिंदुस्तान समाचार

आजादी के बाद सभी भारतीय भाषाओं में

समाचार एवं सूचना के प्रसारण को बढ़ावा देने के लिए शीघ्र ही आरएसएस समेत राष्ट्रवादी संगठनों को एक बहुभाषी समाचार संस्था की आवश्यकता महसूस हुई। वर्ष 1948 में, शिवराम शंकर आप्टे ने मुंबई में भारत की एक अग्रणी बहुभाषी समाचार संस्था के रूप में हिंदुस्तान समाचार की स्थापना की। भारतीय भाषाओं में समाचार मुहैया कराने के प्रति समर्पित सहकारी क्षेत्र में एकमात्र समाचार संस्था के रूप में हिंदुस्तान समाचार वर्ष 1975 तक चलता रहा।

वर्ष 1957 में एक सहकारी समिति के रूप में दिल्ली में इसका पंजीकरण हुआ और इसका संचालन मुखय रूप से श्रमजीवी पत्रकार करते रहे। हिंदुस्तान समाचार देवनागरी टेलीप्रिंटर्स के समाचारों की छपाई और अधिकांश राज्यों की राजधानियों में अपने केंद्रों समेत भारत भर में प्रसारण सफलतापूर्वक करता रहा। इसने नेपाल, मॉरिशस और थाईलैंड में संवाददाताओं की बहाली भी की।

वर्ष 1975 में जब इंदिरा गाँधी ने आपात काल की घोषणा की, तब उस समय प्रचलित सभी समाचार संस्थाओं - पी. टी. आई., हिंदुस्तान समाचार, यू. एन. आई. और समाचार भारती - को समाचार के रूप में विलय के लिए विवश किया गया। वर्ष 1977 में, जनता सरकार ने इन सभी संस्थाओं को अलग कर दिया। हिंदुस्तान समाचार की उसके पूर्ववर्ती रूप में पुनर्स्थापना की गई। जनता सरकार कुछ समय तक उसकी कुछ-कुछ सहायता करती रही। तंगी से प्रभावित ज्यादातर पत्रकार हिंदुस्तान समाचार छोड़कर चले गए। वर्ष 1980 में कांग्रेस पुनः सत्ता में आई। ए. आई. आर. को दी जाने वाली सेवाएँ और आगे चलकर अन्य सुविधाएँ वापस लेकर उसने हिंदुस्तान समाचार को दबाना शुरू किया। वर्ष 1985 में सहकारी समितियों के केंद्रीय पंजीयक ने हिंदुस्तान समाचार की प्रबंध समिति को भंग कर दिया और आगे चलकर वर्ष 1986 में समिति को बंद करने की एक सूचना जारी कर दी। पंजीकार ने इस पर कोई कार्यवाही नहीं की। हिंदुस्तान समाचार समिति के एक सदस्य ने उच्च न्यायालय में बंद करने की सूचना को चुनौती दी। उच्च न्यायालय ने बहुराज्यीय सहकारी समिति अधिनियम, 1984 की धारा 77 व धारा 99 के तहत पंजीकार को बंद करने की कार्यवाही करने को कहा। पंजीकार ने कार्यवाही नहीं की। वर्ष 2001 में केंद्रीय पंजीकार ने बंद करने की सूचना वापस ले ली। एन. डी. ए. सरकार ने हिंदुस्तान समाचार को पुनः चालू करने की अनुमति दे दी। पी. टी. आई. और यू. एन. आई. के सेवा कर से मुक्त रखा गया किंतु हिंदुस्तान समाचार के आवेदन को नामंजूर कर दिया गया। सरकार के इस निर्णय के विरुद्ध हिंदुस्तान समाचार ने दिल्ली उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका दायर की। लंबित रिट याचिका की सं. है : सी सं. 2343, 2014। हिंदुस्तान समाचार समिति के सदस्यों और पदाधिकारियों ने भारत की एक मुख्य समाचार संस्था के रूप में हिंदुस्तान समाचार का पुनरुत्थान करने के ध्येय के साथ फिर से कार्य शुरू किया। हिंदुस्तान समाचार की मुखय विशेषता इसका बहुभाषायी स्वरूप है। कम से कम समय में सभी भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों तक पहुँचना एक भारी चुनौती थी। हिंदुस्तान समाचार की साख उसकी धरोहर है। एक समाचार संस्था के रूप में हिंदुस्तान समाचार की विश्वनीयता एक दशक अथवा उससे अधिक समय तक बंद रहने के बाद भी बरकरा थी। प्रबंधन को अनेकानेक और नानारूप समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था : दिल्ली अथवा अन्य नगरों में कार्य करने के लिए कोई स्थान नहीं था। पुराने कार्यालयों को खाली करा लिया गया था अथवा उन पर कब्जा कर लिया गया था। पिछले पत्रकार छोड़ कर चले गए थे। ए. आई. आर. के साथ समाचार आपूर्ति के करार या तो समाप्त कर दिए गए थे या फिर उनकी अवधि समाप्त हो गई थी।

संस्था का कार्य शुरू करने के लिए भी कोई धन उपलब्ध नहीं था। पूर्व कर्मचारियों के वेतन, पी. एफ. से संबंधित देनदारियाँ बाकी पड़ी थीं। नया प्रबंधन कार्य शुरू करने के लिए कृतसंकल्प था। हिंदुस्तान समाचार ने सितंबर, 2001 में दिल्ली और मुंबई में कार्य करना शुरू किया - आरंभ में हिंदी और मराठी में। समाचार पत्रों से संपर्क किया गया और उन्होंने समाचारों के लिए चंदा देना शुरू किया।

- गुजराती, असमिया, बांगला, उड़िया और नेपाली में समाचार का प्रकाशन आरंभ।
- हिंदुस्तान समाचार की वेबसाइट : www.hindusthansamachar.com
- भारत की अधिकांश भाषाओं में समाचार प्रकाशन।
- भारत में 100 से ज्यादा शहरों में संवाददाता।
- 20 से ज्यादा केंद्र 24 घंटे कार्यरत।

अन्य सेवाएँ इस प्रकार हैं :

- न्यूज स्कैन सर्विस -- लोगों, संस्थानों और सरकारों के लिए 24 घंटे समाचार स्कैन सेवा।
- बैंक अथवा अस्पताल जैसे सार्वजनिक स्थलों पर 24 घंटे न्यूज कियॉस्क।
- अपनी पुनर्स्थापना के समय से हिंदुस्तान समाचार ने 14 वर्ष पूरे कर लिए हैं।
- हिंदुस्तान समाचार ने इस क्षेत्र में अपना पैर मजबूती से जमा रखा है किंतु अभी इसे और आगे जाना है।
- दिल्ली और राज्यों में एन. डी. ए. सरकार हिंदुस्तान समाचार को पी. टी. आई. और यू. एन. आई. के बराबर दर्जा दिलाना चाहिए और समुचित स्थान प्राप्त करने में इसकी सहायता भी करनी चाहिए।

सहयोग :

प्रसार भारती -- आकाशवाणी, डीडी वन एवं दूरदर्शन के अन्य चैनेल।
सेवा कर से मुक्ति हेतु वित्त मंत्रालय;
स्थान हेतु आवास एवं विकास मंत्रालय
अन्य समाचार संस्थाओं को दी जाने वाली सुविधाएँ।

संदर्भ

1. पहले और दूसरे प्रेस कमीशन की रिपोर्ट तथा पीटीआई का एक प्रकाशन 'दि पीटीआई स्टोरी' दि रिपोर्ट्स
2. ऑफ दि फर्स्ट एंड सेकंड प्रेस कमिशंस एंड एन ऑफिसियल पीटीआई पब्लिकेशन 'दि पीटीआई स्टोरी'

भारत में मीडिया शिक्षा के सौ वर्ष

प्रो. संजय द्विवेदी

भारत में मीडिया शिक्षा कितनी सफल या विफल है, यह एक अलग प्रश्न है। इसके बावजूद उसकी आवश्यकता तो है ही, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। भारत में मीडिया शिक्षा के इतिहास और उसकी प्रासंगिकता पर एक दृष्टि

एक वक्त था जब लोगों का मानना था कि पत्रकार पैदा होते हैं और पत्रकारिता पढ़ा कर सिखाई नहीं जा सकती। लेकिन अब वक्त बदल गया है। पत्रकारिता और जनसंचार का क्षेत्र आज शिक्षा की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हो गया है।

वर्ष 2020 को लोग चाहे कोरोना महामारी की वजह से याद करेंगे, लेकिन एक मीडिया शिक्षक होने के नाते मेरे लिए ये बेहद महत्वपूर्ण है कि इसी वर्ष भारत में मीडिया शिक्षा के 100 वर्ष पूरे हो चुके हैं। वर्ष 1920 में थियोसोफिकल सोसायटी के तत्वावधान में मद्रास राष्ट्रीय विश्वविद्यालय में डॉक्टर एनी बेसेंट ने पत्रकारिता का पहला पाठ्यक्रम शुरू किया था। लगभग एक दशक बाद वर्ष 1938 में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में पत्रकारिता के पाठ्यक्रम को एक सर्टिफिकेट कोर्स के रूप में शुरू किया गया। इस क्रम में पंजाब विश्वविद्यालय, जो उस वक्त के लाहौर में हुआ करता था, पहला विश्वविद्यालय था, जिसने अपने यहां पत्रकारिता विभाग की स्थापना की। भारत में पत्रकारिता शिक्षा के संस्थापक कहे जाने वाले प्रोफेसर पीपी सिंह ने वर्ष 1941 में इस विभाग की स्थापना की थी। अगर हम स्वतंत्र भारत की बात करें, तो सबसे पहले मद्रास विश्वविद्यालय ने वर्ष 1947 में पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग की स्थापना की।

इसके पश्चात कलकत्ता विश्वविद्यालय, मैसूर के महाराजा कॉलेज, उस्मानिया यूनिवर्सिटी एवं नागपुर यूनिवर्सिटी ने मीडिया शिक्षा से जुड़े कई कोर्स शुरू किए। 17 अगस्त, 1965 को सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने भारतीय जन संचार संस्थान की स्थापना की, जो आज मीडिया शिक्षा के क्षेत्र में पूरे एशिया में सबसे अग्रणी संस्थान है।[1] आज भोपाल में माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, रायपुर में कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय एवं जयपुर में हरिदेव जोशी पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय पूर्ण रूप से मीडिया शिक्षण एवं प्रशिक्षण का कार्य कर रहे हैं।

भारत में मीडिया शिक्षा का इतिहास 100 वर्ष जरूर पूर्ण कर चुका है, परंतु यह अभी तक इस उलझन से मुक्त नहीं हो पाया है कि यह तकनीकी है या वैचारिक। तकनीकी एवं वैचारिकी का द्वंद्व मीडिया शिक्षा की उपेक्षा के लिए जहां उत्तरदायी है, वहां सरकारी उपेक्षा और मीडिया संस्थानों का सक्रिय सहयोग न होना भी मीडिया शिक्षा के इतिहास की तस्वीर को धुंधली प्रस्तुत करने को विवश करता है।[2]

भारत में जब भी मीडिया शिक्षा की बात होती है, तो प्रोफेसर के. ई. ईपन का नाम हमेशा याद किया जाता है। प्रोफेसर ईपन भारत में पत्रकारिता शिक्षा के तंत्र में व्यावहारिक प्रशिक्षण के पक्षधर थे। प्रोफेसर ईपन का मानना था कि मीडिया के शिक्षकों के पास पत्रकारिता की औपचारिक शिक्षा के साथ-साथ मीडिया में काम करने का प्रत्यक्ष अनुभव भी होना चाहिए, तभी वे प्रभावी ढंग से बच्चों को पढ़ा पाएंगे। आज देश के अधिकांश पत्रकारिता एवं जनसंचार शिक्षण संस्थान, मीडिया शिक्षक के तौर पर ऐसे लोगों को प्राथमिकता दे रहे हैं, जिन्हें अकादमिक के साथ-साथ पत्रकारिता का भी अनुभव हो। ताकि ये शिक्षक ऐसा शैक्षणिक माहौल तैयार कर सकें, ऐसा शैक्षिक पाठ्यक्रम तैयार कर सकें, जिसका उपयोग विद्यार्थी आगे चलकर अपने कार्यक्षेत्र में भी कर पाएँ।

पत्रकारिता के प्रशिक्षण के समर्थन में जो

तर्क दिए जाते हैं, उनमें से एक दमदार तर्क यह है कि यदि डॉक्टरी करने के लिए कम से कम एम.बी.बी.एस. होना जरूरी है, वकालत की डिग्री लेने के बाद ही वकील बना जा सकता है तो पत्रकारिता जैसे महत्वपूर्ण पेशे को किसी के लिए भी खुला कैसे छोड़ा जा सकता है? सच तो यह है कि पत्रकारिता का महत्वपूर्ण पेशा होना ही यह सवाल उठाता है कि हर कोई पत्रकार कैसे बन सकता है? आज पत्रकारिता पेशा बनती जा रही है, व्यवसाय बनती जा रही है, लेकिन यह विशिष्ट व्यवसाय है। यही विशिष्टता इस पेशे को दायित्वों से जोड़ती है। व्यवसाय होने के बावजूद आज भी पत्रकारिता जनतंत्र का चौथा स्तंभ है और जरूरी यही नहीं कि यह स्तंभ मजबूत रहे, इस स्तंभ का एक काम यह देखना भी है कि जनतंत्र के बाकी तीनों स्तंभ अपना दायित्व अच्छी तरह से निभाते रहें। यानी पत्रकारिता करने वाला उसके योग्य भी होना चाहिए। यह योग्यता अर्जित करनी होती है। अर्जित करने की क्षमता किसी में भी हो सकती है, लेकिन सवाल इस क्षमता के उपयोग का है। और पत्रकारिता का प्रशिक्षण एक बड़ी सीमा तक यह काम करता है।[3]

दरअसल भारत में मीडिया शिक्षा मोटे तौर पर छह स्तरों पर होती है। सरकारी विश्वविद्यालयों या कॉलेजों में, दूसरे, विश्वविद्यालयों से संबद्ध संस्थानों में, तीसरे, भारत सरकार के स्वायत्तता प्राप्त संस्थानों में, चौथे, पूरी तरह से प्राइवेट संस्थान, पांचवे डीम्ड विश्वविद्यालय और छठे, किसी निजी चैनल या समाचार पत्र के खोले गए अपने मीडिया संस्थान।[4]

इस पूरी प्रक्रिया में हमारे सामने जो एक सबसे बड़ी समस्या है, वो है किताबें। हमारे देश में मीडिया के विद्यार्थी विदेशी पुस्तकों पर ज्यादा निर्भर हैं। लेकिन अगर हम देखें तो भारत और अमेरिका के मीडिया उद्योगों की संरचना और कामकाज के तरीके में बहुत अंतर है। इसलिए मीडिया के शिक्षकों की ये जिम्मेदारी है, कि वे भारत की परिस्थितियों के हिसाब से किताबें लिखें। ऐसी पुस्तकों से विद्यार्थियों को भारतीय मीडिया के हिसाब से स्वयं को तैयार करने में मदद मिलेगी। लेकिन इसके लिए

मीडिया शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए आज मीडिया एजुकेशन काउंसिल की आवश्यकता है। इसकी मदद से न सिर्फ पत्रकारिता एवं जनसंचार शिक्षा के पाठ्यक्रम में सुधार होगा, बल्कि मीडिया इंडस्ट्री की जरुरतों के अनुसार पत्रकार भी तैयार किए जा सकेंगे। आज मीडिया शिक्षण में एक स्पर्धा चल रही है। इसलिए मीडिया शिक्षकों को ये तय करना होगा कि उनका लक्ष्य स्पर्धा में शामिल होने का है, या फिर पत्रकारिता शिक्षण का बेहतर माहौल बनाने का

व्यवहारिक ज्ञान का होना भी आवश्यक है। जिन्होंने कभी रिपोर्टिंग न की हो और वे रिपोर्टिंग की पुस्तक लिखें, तो अच्छी किताबें लिखे जाने की उम्मीद नहीं की जा सकती। हालांकि भारतीय भाषाओं में और भारत की परिस्तिथियों के अनुरूप पाठ्यपुस्तक निर्माण भी हमारे लिए एक बड़ी चुनौती है, लेकिन अगर हम प्रयास करें तो इसका भी समाधान संभव है। एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में लगभग 1500 से ज्यादा मीडिया शिक्षण संस्थान हैं। अगर एक संस्थान एक वर्ष में सिर्फ 2 पुस्तकों का भी निर्माण करे, तो एक वर्ष में लगभग 3,000 किताबें छात्रों के लिए तैयार होंगी। लेकिन अक्सर ये देखा जाता है कि जैसे ही आप भारत केंद्रित पाठ्यक्रम की बात करेंगे, तो लोग विरोध में खड़े हो जाएंगे। ऐसा कहा जाएगा कि भारतीय भाषाओं में ज्ञान की बात नहीं हो सकती, अगर आपको ज्ञान की बात करनी है, तो सिर्फ अंग्रेजी में ही हो सकती है। जबकि जर्मनी में लोग संस्कृत भाषा की पढ़ाई कर रहे हैं। फिर मीडिया या अन्य विधाओं में शिक्षण भारतीय भाषाओं में क्यों नहीं हो सकता।[5]

इस संदर्भ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति का जिक्र करना भी महत्वपूर्ण है। नई शिक्षा नीति भारत की शिक्षा व्यवस्था में एक क्रांतिकारी कदम है। अगर हम इस शिक्षा नीति को सही तरह से अपनाते हैं, तो ये नीति हमें गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की तरफ ले जाएगी। इस शिक्षा नीति से ज्ञान और कौशल के माध्यम से एक नए राष्ट्र का निर्माण होगा। लेकिन इसके लिए हमें जनसंचार शिक्षा में बदलाव करना होगा। हमें पत्रकारिता के नए पाठ्यक्रमों का निर्माण करना होगा, जो आज के समय के हिसाब से हों। हमें अपना विजन बनाना होगा कि पत्रकारिता शिक्षण को हम किस दिशा में लेकर जाना चाहते हैं।

मीडिया शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए आज मीडिया एजुकेशन काउंसिल की आवश्यकता है। इसकी मदद से न सिर्फ पत्रकारिता एवं जनसंचार शिक्षा के पाठ्यक्रम में सुधार होगा, बल्कि मीडिया इंडस्ट्री की जरुरतों के अनुसार पत्रकार भी तैयार किए जा सकेंगे। आज मीडिया शिक्षण में एक स्पर्धा चल रही है। इसलिए मीडिया शिक्षकों को ये तय करना होगा कि उनका लक्ष्य स्पर्धा में शामिल होने का है, या फिर पत्रकारिता शिक्षण का बेहतर माहौल बनाने का। आज के समय में पत्रकारिता बहुत बदल गई है, इसलिए पत्रकारिता शिक्षा में भी बदलाव आवश्यक है। आज लोग जैसे डॉक्टर से अपेक्षा करते हैं, वैसे पत्रकार से भी सही खबरों की अपेक्षा करते हैं। अब हमें मीडिया शिक्षण में ऐसे कोर्स तैयार करने होंगे, जिनमें कंटेट के साथ-साथ नई तकनीक का भी समावेश हो। हमें यह तय करना होगा कि पत्रकारिता का मकसद क्या है। क्या हमारी पत्रकारिता बाजार के लिए है, कॉरपोरेट के लिए है, सरकार के लिए है या फिर समाज के लिए है। अगर हमें सच्चा लोकतंत्र चाहिए, तो पत्रकारिता को अपने लक्ष्यों के बारे में बहुत गहराई से सोचना होगा। मीडिया शिक्षा का काम सिर्फ छात्रों को ज्ञान देना नहीं है, बल्कि उन्हें मीडिया उद्योग के हिसाब से तैयार भी करना है। इसलिए मीडिया शिक्षकों को इस विषय पर ध्यान देना होगा।[6]

न्यू मीडिया आज न्यू नॉर्मल है। हम सब जानते हैं कि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के कारण लाखों नौकरियाँ गई हैं। इसलिए हमें मीडिया शिक्षा के अलग अलग पहलुओं पर ध्यान देना होगा और बाजार के हिसाब

से प्रोफेशनल तैयार करने होंगे। नई शिक्षा नीति में क्षेत्रीय भाषाओं पर ध्यान देने की बात कही गई है। जनसंचार शिक्षा के क्षेत्र में भी हमें इस पर ध्यान देना होगा। मीडिया शिक्षण संस्थानों के लिए आज एक बड़ी आवश्यकता है क्षेत्रीय भाषाओं में पाठ्यक्रम तैयार करना। भाषा वो ही जीवित रहती है, जिससे आप जीविकोपार्जन कर पाएँ और भारत में एक सोची-समझी साजिश के तहत अंग्रेजी को जीविकोपार्जन की भाषा बनाया जा रहा है। ये उस वक्त में हो रहा है, जब पत्रकारिता अंग्रेजी बोलने वाले बड़े शहरों से हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के शहरों और गांवों की ओर मुड़ रही है। आज अंग्रेजी के समाचार चैनल भी हिंदी में डिबेट करते हैं। इसलिए मीडिया शिक्षकों के लिए ये आवश्यक है कि वे हिंदी और अंग्रेजी के अलावा क्षेत्रीय भाषाओं में कोर्स तैयार करें। आप CBSE बोर्ड को देखिए। आज CBSE के पाठ्यक्रम में मीडिया को एक विषय के रूप में पढ़ाया जा रहा है। क्या हम अन्य राज्यों के पाठ्यक्रमों में भी इस तरह की व्यवस्था कर सकते हैं, जिससे मीडिया शिक्षण को एक नई दिशा मिल सके।

अक्सर ये प्रश्न उठाया जाता है कि मीडिया की पढ़ाई का फील्ड में कितना उपयोग होता है। मेरा मानना है कि पत्रकारिता की पढ़ाई किया हुआ एक पत्रकार, अन्य पत्रकारों की तुलना में अपना कार्य ज्यादा कुशल और बेहतर तरीके से करता है। यह सही है कि भारत में अभी प्रैक्टिकल पढ़ाई की जगह किताबी ज्ञान पर ज्यादा फोकस किया जाता है, लेकिन धीरे-धीरे ये परिदृश्य भी बदल रहा है। आज पत्रकारिता की पढ़ाई के दौरान छात्र अखबार प्रकाशित करने से लेकर, न्यूज बुलेटिन और डॉक्यूमेंट्री फिल्में बनाना तक सीख रहे हैं और इस प्रक्रिया में वे फील्ड के लिए तैयार होते हैं। लेकिन इसका मतलब ये नहीं कि किताबी ज्ञान महत्वपूर्ण नहीं है।

जैसे मीडिया के एक क्षेत्र प्रोडक्शन के संबंध में मैं यहाँ दो लेखों और एक किताब का जिक्र करना चाहूँगा, जिसे प्रत्येक मीडिया शिक्षक और पत्रकारिता के विद्यार्थी को अवश्य पढ़ना चाहिए।

पहला है, टी.एस. इलियट का लेख, 'ट्रडिशन एंड इंडिविजुअल टैलेंट' और दूसरा है, एड्रिएन रिच का लेख, 'व्हेन वी डेड अवेकन : राइटिंग ऐज रिवीजन,' और आखिरी है हैरल्ड ब्लूम की किताब - 'द एंग्जाइटी ऑफ इनफ्लुएंस : अ थियरी ऑफ पोएट्री।'

ये सब आपकी रचनात्मक क्षमता में न सिर्फ वृद्धि करेंगे, बल्कि आपको मीडिया के इस महत्वपूर्ण आयाम के एक नए रूप से भी परिचित करवाएंगे।

एक वक्त था जब पत्रकारिता का मतलब प्रिंट मीडिया होता था। अस्सी के दशक में रिलीज हुई अमेरिकी फिल्म Ghostbusters (घोस्टबस्टर्स) में सेक्रेटरी जब वैज्ञानिक से पूछती है कि 'क्या वे पढ़ना पसंद करते हैं? तो वैज्ञानिक कहता है 'प्रिंट इज डेड'। इस पात्र का यह कहना उस समय हास्य का विषय था, परंतु वर्तमान परिदृश्य में प्रिंट मीडिया के भविष्य पर जिस तरह के सवाल खड़े किए जा रहे हैं, उसे देखकर ये लगता है कि ये सवाल आज की स्थिति पर बिल्कुल सटीक बैठता है। आज दुनिया के तमाम प्रगतिशील देशों से हमें ये सूचनाएँ मिल रही हैं कि प्रिंट मीडिया पर संकट के बादल हैं। ये भी कहा जा रहा है कि बहुत जल्द अखबार खत्म हो जाएंगे। वर्ष 2008 में अमेरिकी लेखक जेफ गोमेज ने 'प्रिंट इज डेड' पुस्तक लिखकर प्रिंट मीडिया के खत्म होने की अवधारणा को जन्म दिया था। उस वक्त इस किताब का रिव्यू करते हुए एंटोनी चिथम ने लिखा था कि, "यह किताब उन सब लोगों के लिए 'वेकअप कॉल' की तरह है, जो प्रिंट मीडिया में हैं, किंतु उन्हें यह पता ही नहीं कि इंटरनेट के द्वारा डिजिटल दुनिया किस तरह की बन रही है।" वहीं एक अन्य लेखक रोस डावसन ने तो समाचारपत्रों के विलुप्त होने का, समय के अनुसार एक चार्ट ही बना डाला। इस चार्ट में जो बात मुख्य रूप से कही गई थी, उसके अनुसार वर्ष 2040 तक विश्व से अखबारों के प्रिंट संस्करण खत्म हो जाएंगे।

इस स्थिति में मीडिया शिक्षण संस्थानों को अपने पाठ्यक्रमों में इस तरह के बदलाव करने चाहिए, कि वे न्यू मीडिया के लिए छात्रों को तैयार कर सकें। आज तकनीक किसी भी पाठ्यक्रम का महत्वपूर्ण हिस्सा है। मीडिया में दो तरह के प्रारूप होते हैं। एक है पारंपरिक मीडिया जैसे अखबार व पत्रिकाएं और दूसरा है डिजिटल मीडिया। अगर हम वर्तमान संदर्भ में बात करें...तो सबसे अच्छी बात ये है कि आज ये दोनों प्रारूप मिलकर चलते हैं। आज पारंपरिक मीडिया स्वयं को डिजिटल मीडिया में परिवर्तित कर रहा है। ये परिवर्तन दरअसल, एक कंपनी के ऑपरेशंस को इंटरनेट स्टाइल के ऑपरेशंस में बदलने का है। लेकिन अगर हम इस 'डिजिटल ट्रांसफॉर्म' की बात करें, तो सबसे ज्यादा परेशानी 'कल्चरल ट्रांसफॉर्मेशन' में आती है। इस परिवर्तन में उन लोगों को डिजिटल के बारे में बताना और प्रेरित करना सबसे महत्वपूर्ण है, जो आराम से ट्रेडिशनल कामों में लगे हुए हैं। ये चुनौतीपूर्ण जरूर है, लेकिन देश के अधिकतर मीडिया समूह इस कार्य को कर रहे हैं। अगर देश के प्रमुख मीडिया संस्थान इस प्रक्रिया में लगे हुए हैं, तो क्यों न मीडिया शिक्षण संस्थान अपने छात्रों को 'डिजिटल ट्रांसफॉर्म' के लिए पहले से तैयार करें। एक पत्रकार और मीडिया

इस स्थिति में मीडिया शिक्षण संस्थानों को अपने पाठ्यक्रमों में इस तरह के बदलाव करने चाहिए कि वे न्यू मीडिया के लिए छात्रों को तैयार कर सकें। आज तकनीक किसी भी पाठ्यक्रम का महत्वपूर्ण हिस्सा है। मीडिया में दो तरह के प्रारूप होते हैं। एक है पारंपरिक मीडिया जैसे अखबार व पत्रिकाएं और दूसरा है डिजिटल मीडिया। अगर हम वर्तमान संदर्भ में बात करें...तो सबसे अच्छी बात ये है कि आज ये दोनों प्रारूप मिलकर चलते हैं। आज पारंपरिक मीडिया स्वयं को डिजिटल मीडिया में परिवर्तित कर रहा है

शिक्षक होने के नाते मेरा मानना है कि इस 'डिजिटल ट्रांसफॉर्मेशन' को अगर कोई चला रहा है, तो वो चार 'C' हैं । इन चार 'C' का मतलब है, Content, Communication, Commerce और Context। जब ये चारों 'C' मिलते हैं, तब एक पारंपरिक मीडिया हाउस...डिजिटल मीडिया हाउस में बदलता है। और हमारी जिम्मेदारी है कि हम विद्यार्थियों को इस पूरी प्रकिया से अवगत कराएँ।

आज देश में प्रादेशिक भाषा यानी रीजनल लैंग्वेज के मार्केट का महत्व भी लगातार बढ़ रहा है। KPMG की एक रिपोर्ट 'India's Digital Future : Mass of Niches' में इसे एक प्रमुख विषय के रूप में शामिल किया गया है। इस रिपोर्ट के अनुसार अंग्रेजी भाषा के ऑडियंस का डिजिटल की तरफ मुड़ना लगभग पूरा हो चुका है। ऐसा माना जा रहा है कि वर्ष 2030 तक रीजनल लैंग्वेज मार्केट में यूजर्स की संख्या 500 मिलियन तक पहुँच जाएगी और लोग इंटरनेट का इस्तेमाल स्थानीय भाषा में करेंगे।[7] इस दिशा में मैं भारतीय जनसंचार संस्थान द्वारा किए जा रहे कुछ प्रयासों का भी उल्लेख करना चाहूंगा। आईआईएमसी हिंदी और अंग्रेजी के अलावा, मराठी, उर्दू, मलयालम और ओड़िया भाषा में भी पाठ्यक्रम संचालित करता है। हमारा पूरा प्रयास है कि रीजनल लैंग्वेज मार्केट के हिसाब से हम पत्रकार तैयार कर सकें।

डिजिटल मीडिया का एक और पहलू भी है। आज पत्रकारिता सिर्फ संस्थानों में काम करने वाले पत्रकार ही नहीं कर रहे हैं। अगर आज आपके पास 10 रुपए हैं, बात कहने का तरीका है और आसपास कोई साइबर कैफे है, तो आप लैपटॉप, कंप्यूटर या स्मार्टफोन न होने पर भी पत्रकारिता कर सकते हैं और अगर आपकी बात में दम है, तो आपकी बात लाखों लोगों तक पहुँच सकती है। कोलंबिया ग्रेजुएट स्कूल ऑफ जर्नलिज्म की प्रोफेसर ऐन कूपर ने वर्ष 2008 में अपने एक लेख में यह कहा था कि पत्रकारिता का दायरा अब पत्रकारों से कहीं बड़ा हो चुका है। इंटरनेट और सोशल मीडिया पर हो रहे संवाद को उन्होंने पत्रकारिता का हिस्सा मानते हुए लिखा था कि ख्र "सवाल ये नहीं है कि पत्रकार कौन है, बल्कि सवाल ये है कि पत्रकारिता कौन कर रहा है?" उनका ये मानना था कि जिसके पास भी इंटरनेट कनेक्शन है, वह पत्रकारिता कर सकता है।[8] मीडिया की इस स्वतंत्रता के संदर्भ में ब्रिटेन के जज लार्ड डेनिंग का जिक्र भी महत्वपूर्ण हो जाता है। लार्ड डेनिंग ने कहा था कि 'प्रेस की आजादी का मतलब ये नहीं होता कि प्रेस को किसी की प्रतिष्ठा नष्ट करने, भरोसा तोड़ने या न्याय की धारा को दूषित करने की आजादी दी जा सकती है।'[9]

हमें अपने मीडिया को उसकी जड़ों, संस्कारों और भावनाओं से प्रेरित करने के लिए जनसंचार शिक्षा पर ध्यान देने की जरूरत है। यदि मीडिया में आ रहे युवाओं को जड़ों से ही कुछ ऐसे विचार मिलें, जो उन्हें व्यावसायिकता के साथ-साथ संस्कारों की भी दीक्षा दें, तो शायद हम अपने मीडिया में मानवीय मूल्यों को ज्यादा स्थान दे पाएंगे। आज मीडिया जिस प्रकार के अत्याधुनिक प्रयोगों से लैस है और आज के मीडियाकर्मियों से जिस प्रकार की तैयारी तथा क्षमताओं की अपेक्षा की जा रही है, मीडिया संस्थानों को उस कसोटी पर खरा उतरने की आवश्यकता है। जनसंचार शिक्षा, सिर्फ पत्रकारिता तक सीमित नहीं है, उसने जनसंपर्क से आगे बढ़कर कॉर्पोरेट और बिजनेस कम्यूनिकेशन की ऊँचाई हासिल की है। विज्ञापन के क्षेत्र में अलग-अलग तरह के विशेषज्ञों की माँग हो रही है। प्रिंट मीडिया के साथ-साथ इलेक्ट्रॉनिक, रेडियो, मनोरंजन, वेब के तमाम विकल्पों पर लोगों की माँग हो रही है। मीडिया के इस विस्तार ने आज मीडिया प्रोफेशनल्स की चुनौतियाँ बहुत बढ़ा दी हैं। जनसंचार की शिक्षा देने वाले संस्थान अपने आपको इन चुनौतियों के मद्देनजर तैयार करें, यह एक बड़ी जिम्मेदारी है।

इस दिशा में प्रत्येक मीडिया शिक्षक की यह जिम्मेदारी होनी चाहिए कि वह छात्रों को सोशल मीडिया के दौर में एक बेहतर पत्रकार के तौर पर विकसित करें, ताकि वे फेक न्यूज और प्रोपेगेंडा न्यूज से बचें और अपने कर्तव्यों का निर्वहन बेहतर तरीके से कर पाएँ। इसके अतिरिक्त मीडिया शिक्षण के तहत रोजगारपरक शिक्षा पर ध्यान देना भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि ज्ञान की सार्थकता तभी है, जब वो हमारे जीवन में उतरे। आइए, हम सब मीडिया शिक्षण को एक नया आयाम देने के लिए साथ आएँ और जनसंचार शिक्षा का एक बेहतर माहौल तैयार करने में मदद करें।

संदर्भ-

1. Dutta, Ankuran (2020), 100 Years of Media and Journalism Education in India, neonow.
2. सिंह, श्रीकांत (2011), 'ये है जनसंचार शिक्षा का चेहरा', मीडिया शिक्षा: मुद्दे और अपेक्षाएं, यश पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
3. सचदेव, विश्वनाथ (2011), "ए', 'दी' और पत्रकारिता', मीडिया शिक्षा: मुद्दे और अपेक्षाएं, यश पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
4. नंदा, वर्तिका (2011), 'दो मिनट का मीडिया प्रशिक्षण', मीडिया शिक्षा: मुद्दे और अपेक्षाएं, यश पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
5. विजय, अनंत (2020), सभी भारतीय भाषाएं हैं राष्ट्रभाषा, प्रभासाक्षी।
6. जोशी, सच्चिदानंद एवं दीक्षित, कमल (2020), जरूरी है मीडिया एजुकेशन काउंसिल, वेबदुनिया।
7. KPMG (2019), India's Digital Future: Mass of Niches, KPMG Reports.
8. Cooper, Ann (2008), The bigger tent: Forget Who is a journalist; the important question is what is journalism?, GALE Ebooks.
9. दीक्षित, हरबंश (2007), प्रेस विधि एवं अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

इलेक्ट्रॉनिक और डिजिटल मीडिया में नियमन संदर्भ और स्वरूप

हिमांशु शेखर

करीब डेढ़ अरब की आबादी के लिए टीआरपी निर्णय केवल 45 हजार बक्सों के आधार पर होता है। पहले यह केवल तीन हजार बक्सों से तय होता था। यह निर्णय भी कोई सरकारी नहीं, बल्कि निजी एजेंसी करती है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में नियमन के प्रश्न पर विचार

उदारीकरण की शुरुआत यानी 1991 के बाद से अब तक के तीन दशक में बाजारवाद ने भारतीय मीडिया को इस कदर प्रभावित किया है कि अब समाचार एक उत्पाद बन गया है। स्थिति ऐसी बन गई है कि हर मीडिया संस्थान खबरों को बाजार में बेचकर ज्यादा से ज्यादा पैसा कमाने की होड़ में शामिल है। ऐसी स्थिति में तमाम नैतिकता पीछे छूट जाती है। इसके अलावा सामाजिक सरोकार जैसे शब्द भी मीडिया के लिए अजनबी बन जाते हैं और इसकी बात तक करने वाले पत्रकारों को मीडिया संस्थानों का नेतृत्व करने वाले तथाकथित पत्रकार एक अलग तरह की नजर से देखते हैं। उन्हें लगता है कि सामाजिक सरोकार की बात करने वाला पत्रकारिता का एक अपराधी है। जब खबरों के जरिए ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाना ही मकसद बन जाए तो स्वाभाविक है कि नैतिकता और सामाजिक सरोकार जैसी चीजें पीछे छूटेंगी ही।

इसी पृष्ठभूमि में मीडिया में नियमन की बात चलती है। उदारीकरण की शुरुआत से ही भारतीय मीडिया में जो क्षरण प्रिंट मीडिया में दिखा, उससे अधिक तेजी से क्षरण इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में हुआ। डिजिटल मीडिया की शुरुआत इसी क्षरण की पृष्ठभूमि में हुई और इसने भी कोई अलग राह नहीं ली है। मीडिया में आत्मनियमन की नाकामी की वजह से लगातार हो रही गलतियों के बीच अब मीडिया पर सरकारी नियंत्रण की बात उठने लगी है। कहा जा रहा है कि सरकार को कानून बनाकर मीडिया पर नियंत्रण रखना चाहिए ताकि ये समाचार चैनल और समाचार वेबसाइट अपनी मनमर्जी से समाज में अपने मुनाफे की खातिर एक खास तरह की खबरिया अराजकता न फैलाएँ।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में आत्मनियमन किस तरह से नाकाम रहा है, इसे कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं की मीडिया कवरेज के जरिए समझा जा सकता है। 2008 में जब मुंबई में आतंकवादी हमला हुआ तो उस वक्त समाचार चैनलों की कवरेज की काफी आलोचना हुई थी। इसके बावजूद सबको बाखबर करने का दंभ भरने वाले खबरिया चैनलों की तरफ से कोई सकारात्मक पहल होती नहीं दिखी थी। लेकिन जब दबाव बढ़ा और तत्कालीन मनमोहन सिंह सरकार की ओर से इस बात के संकेत दिए जाने लगे कि मीडिया के नियमन के वैकल्पिक तरीकों पर विचार किया जा रहा है तो समाचार चैनलों ने एक पहल की। मनमोहन सरकार ने यह योजना बनाई थी कि जिस तरह से दूरसंचार क्षेत्र के नियमन के लिए दूरसंचार विनियामक प्राधिकरण है, उसी तरह से प्रसारण के नियमन के लिए प्रसारण विनियामक प्राधिकरण बनाया जाए। लेकिन मीडिया के अंदर से इस बात का विरोध हुआ और आत्मनियमन की बात कही गई, उससे सरकार की वह योजना परवान नहीं चढ़ पाई।[1]

भारत में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के उभार और विस्तार के बाद इन चैनलों ने आत्मनियमन के लिए एक संस्था बनाई जिसका नाम है न्यूज ब्रॉडकास्टर्स एसोसिएशन (एनबीए)। इसी एनबीए ने मुंबई हमले के कुछ दिनों बाद ही आतंकवादी घटनाओं के दौरान प्रसारण के लिए दिशानिर्देश जारी किए। खबरिया चैनलों ने बाकायदा समाचार बुलेटिनों में यह प्रसारित किया कि उनके प्रसारण के खिलाफ एनबीए में शिकायत दर्ज कराई जा सकती है। यह भी कहा गया कि एनबीए की शिकायत निवारण संस्था इनका निपटारा करेगी और संबंधित खबरिया चैनल पर कार्रवाई

की जाएगी। लेकिन क्या वाकई एनबीए ने खबरिया चैनलों के खिलाफ मिलने वाली शिकायतों को निपटारा ईमानदारी से किया है? क्या एनबीए के गठन के बाद समाचार चैनलों ने अपने कवरेज में पत्रकारिता के मूल्यों का ध्यान रखा है? अधिकांश लोग इन सवालों का नकारात्मक जवाब देंगे।

एनबीए की ओर से समाचार चैनलों के लिए जो व्यापक दिशानिर्देश जारी किया गया है, उसमें यह कहा गया है कि अफवाह को खबर बनाने की प्रवृत्ति को खत्म करना चाहिए और उचित जाँच-पड़ताल के बाद ही किसी खबर का प्रसारण होना चाहिए। भारत में पहले तो इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने खबरों के नाम पर हर वैसी बातों को परोसा जिससे टेलीविजन रेटिंग प्वाइंट यानी टीआरपी में वे आगे रहें। इसके बाद फिर एक ट्रेंड पैनल डिस्कशन का शुरू हुआ। इसके बाद अधिकांश समाचार चैनल समानांतर अदालत चलाने लगे। समाचार चैनलों में चलने वाली अदालतों में सामान्य न्यायिक अदालतों के मुकाबले कार्यवाही का क्रम उलटा है। इन चैनलों की अदालतों में पहले निष्कर्ष तय कर लिया जाता है और फिर उस हिसाब से पैनल में बैठने वाले लोग तय हो रहे हैं और फिर उसी हिसाब से उस चैनल के रिपोर्टरों को खबर फाइल करने के लिए कहा जाता है।

इस बात की पुष्टि अभिनेता सुशांत सिंह राजपूत की खुदकुशी से हुई मौत के मामले के जरिए समझा जा सकता है। सुशांत सिंह राजपूत के बारे में 14 जून को यह खबर आई कि उनकी मौत खुदकुशी से हुई है। इसके बाद रिपब्लिक नेटवर्क ने अपने चैनलों के माध्यम से यह बताना शुरू किया कि सुशांत सिंह राजपूत की हत्या की गई है। इस पूरे मामले को इस नेटवर्क ने इस तरह से उठाया कि आम लोगों को यह यकीन होने लगा कि सुशांत सिंह राजपूत की हत्या हुई है। अभिनेत्री रिया चक्रवर्ती को चैनल ने हत्या का दोषी मान लिया। पिछले कुछ महीनों से सीबीआई इस मामले की जाँच कर रही है और अब भी इस मामले में लोगों को पक्के तौर पर यह पता नहीं चल पाया है कि सुशांत सिंह राजपूत की हत्या हुई थी या उन्होंने खुदकुशी की थी।

जिस टीआरपी के लिए भारत के समाचार चैनलों ने खबरों के मायने ही बदल दिए, वह व्यवस्था कितनी खोखली है, इसकी पुष्टि भी पिछले साल हो गई। हालाँकि, जो लोग टीआरपी को समझ रहे थे, उन्होंने हमेशा यह बात उठाई थी। लेकिन खबरिया चैनलों ने अपने फायदे के लिए हमेशा से टीआरपी की व्यवस्था का बचाव किया। आज हालत यह है कि समाचार चैनलों के लिए टीआरपी पिछले कुछ महीनों से जारी नहीं की जा रही है

लेकिन रिपब्लिक मीडिया नेटवर्क ने अपने खबरिया चैनलों पर जो अदालत लगाई और उसमें जो फैसला सुनाया और उसके हिसाब से जो कवरेज की, उसका असर ये हुआ कि नया-नवेला हिंदी समाचार चैनल 'आर-भारत' आज तक को पीछे छोड़ता हुआ नंबर एक चैनल हो गया। जब आर-भारत की टीआरपी बढ़ी तो देखा-देखी दूसरे चैनलों ने भी सुशांत सिंह राजपूत मामले की कवरेज का वही तरीका अपनाया जो रिपब्लिक अपना रहा था। क्योंकि टीआरपी इससे ही आ रहा था। समाचार चैनल इस बात से बेपरवाह दिखे कि वे जो दिखा रहे हैं, वह खबरों की कसौटी पर खरा उतरता है या नहीं। समाचार चैनलों के लिए ये अहम बन गया कि जो भी जानकारी, अफवाह या कोरी कल्पना टीआरपी दिला सकती है, वही खबर है।

जिस टीआरपी के लिए भारत के समाचार चैनलों ने खबरों के मायने ही बदल दिए, वह व्यवस्था कितनी खोखली है, इसकी पुष्टि भी पिछले साल हो गई। हालाँकि, जो लोग टीआरपी को समझ रहे थे, उन्होंने हमेशा यह बात उठाई थी। लेकिन खबरिया चैनलों ने अपने फायदे के लिए हमेशा से टीआरपी की व्यवस्था का बचाव किया। आज हालत यह है कि समाचार चैनलों के लिए टीआरपी पिछले कुछ महीनों से जारी नहीं की जा रही है। टीआरपी जारी करने वाली कंपनी के कुछ पूर्व कर्मचारी गिरफ्तार किए गए हैं। कुछ समाचार चैनलों के वरिष्ठ लोगों के खिलाफ भी मुकदमा चल रहा है और इन चैनलों में काम करने वाले कुछ लोगों की गिरफ्तारी भी हुई है।

पिछले साल जिस 'टीआरपी घोटाले' का खुलासा हुआ, उसके जरिए इस पूरी व्यवस्था का खोखलापन समझ में आता है। दरअसल, हुआ ये कि मुंबई पुलिस आयुक्त परमबीर सिंह ने बाकायदा एक प्रेसवार्ता करके यह जानकारी दी कि मुंबई पुलिस ने एक 'टीआरपी रैकेट' का पर्दाफाश किया है। उन्होंने बताया कि तीन चैनलों के लोग गलत ढंग से टीआरपी की पूरी व्यवस्था को प्रभावित करके अपने चैनलों की टीआरपी बढ़वा रहे थे। उन्होंने जिन तीन चैनलों का नाम लिया, वे हैं: रिपब्लिक टीवी, फक्त मराठी और बॉक्स सिनेमा। परमबीर सिंह ने यह भी बताया कि इस काम में इन चैनलों का साथ देने वालों में टीआरपी जारी करने वाली एजेंसी के कुछ लोग भी शामिल थे।

जब मुंबई पुलिस ने यह जानकारी सार्वजनिक की तो आज तक और रिपब्लिक टीवी सार्वजनिक तौर पर एक-दूसरे के आमने-सामने आ गए। देश-दुनिया की खबरें देने का दावा करने वाले ये दोनों खबरिया चैनल एक-दूसरे की खबरें इस तरह से देने लगे जिसमें खुद को बेहतर और दूसरे को बेईमान साबित करने की कोशिश स्पष्ट तौर पर दिख रही थी। आज तक ने बार-बार अर्णब गोस्वामी के नेतृत्व वाले रिपब्लिक टीवी को 'टीआरपी चोर' कहा तो रिपब्लिक टीवी ने भी आज तक को सिर्फ 'तक' से संबोधित करके काफी भला-बुरा कहा। पहले ही यह जानकारी दी गई है कि सुशांत सिंह राजपूत के निधन के मामले को खास तरह से कवर करके रिपब्लिक भारत ने आज तक को पीछे छोड़ा। इस वजह से दोनों चैनलों के लिए प्रतिद्वंद्विता का माहौल बना हुआ था।

इस पृष्ठभूमि में जब तथाकथित 'टीआरपी घोटाला' सामने आया तो फिर से ये दोनों चैनल एक-दूसरे के खिलाफ बहुत अधिक मुखर दिख रहे हैं। अब सवाल यह

उठता है कि आखिर टीआरपी में ऐसा क्या है कि तकरीबन सारे चैनल अपने सभी निर्णय इसे ध्यान में रखकर ही लेते हैं? इस पूरी व्यवस्था और इस व्यवस्था की खामियों को समझने से पहले सामान्य शब्दों में टीआरपी के महत्व को समझें तो यह एक ऐसी व्यवस्था है जो विज्ञापनदाताओं ने की है। इस रेटिंग के जरिए उन्हें यह पता चलता है कि किस चैनल को कितने लोग देख रहे हैं। इसके आधार पर ही चैनलों को विज्ञापन देने का निर्णय लेते हैं। जिस चैनल के जितने अधिक दर्शक, उस चैनल को उतना अधिक विज्ञापन और जाहिर है कि उस चैनल की उतनी अधिक कमाई।

टीआरपी यानी टेलीविजन रेटिंग प्वाइंट्स जारी करने वाली एजेंसी का नाम है ब्रॉडकास्ट ऑडिएंस रिसर्च काउंसिल यानी बार्क। इस एजेंसी ने देश के अलग-अलग हिस्सों में कुल मिलाकर तकरीबन 45,000 टीआरपी बॉक्स लगा रखे हैं। ये बॉक्स किन घरों में लगे हैं, इसकी जानकारी सिर्फ इसी एजेंसी को रहती है और एजेंसी दावा करती है कि ये जानकारी वह किसी और को नहीं देती। इन बक्सों के जरिए बार्क को यह जानकारी मिलती है कि कौन सा चैनल कितनी देर देखा जा रहा है। जिन घरों में ये बॉक्स लगाए जाते हैं, वे किस क्षेत्र में हैं और उन घरों में किस सामाजिक-आर्थिक वर्ग और आयु वर्ग के लोग रहते हैं, इसकी जानकारी भी इस एजेंसी के पास रहती है। इसलिए इन बक्सों से मिली जानकारियों के आधार पर यह एजेंसी अलग-अलग सामाजिक आर्थिक वर्ग और आयु वर्ग के हिसाब से रेटिंग जारी करती है ताकि विज्ञापनदाताओं को अपने लक्षित वर्ग तक पहुँचने के मकसद से विज्ञापन देने में सुविधा हो। इसे और सामान्य ढंग से समझें तो अगर किसी विज्ञापनदाता ने युवा वर्ग को लक्षित करके कोई उत्पाद बनाया है और वह सिर्फ उस चैनल पर विज्ञापन देना चाहता है तो उसे टीआरपी के जरिए यह पता चल पाता है कि किस चैनल को सबसे अधिक युवा देखते हैं और फिर इस हिसाब से वह संबंधित चैनल को अपना विज्ञापन देता है।[2]

टीआरपी में विभिन्न वर्गों के दर्शकों की गणना प्रति मिनट के आधार पर होती है। इसका मतलब यह हुआ कि इस रेटिंग के जरिए टेलीविजन चैनलों को हर मिनट के दर्शकों की संख्या का हिसाब मिल जाता है। बार्क ये आँकड़े हफ्ते में एक बार जारी करती है। टीआरपी के आँकड़ों के महत्व का अंदाजा कुछ तथ्यों के जरिए लगाया जा सकता है। फिक्की की एक रिपोर्ट बताती है कि भारत में टेलीविजन उद्योग 2019-20 में तकरीबन 78,000 करोड़ का था। इतने बड़े टेलीविजन उद्योग में विज्ञापन किस चैनल को जाएंगे, इसका निर्णय लेने का सबसे बड़ा आधार टीआरपी है।

टीआरपी के आँकड़ों को लेकर ऐसा नहीं है कि पहली बार विवाद हो रहा है। पहले भी कई बार इस व्यवस्था पर सवाल उठे हैं। बार्क के पहले टीआरपी जारी करने का काम टेलीविजन ऑडिएंस मेजरमेंट यानी टैम नाम की कंपनी करती थी। ये एजेंसी तो ऐसी थी कि सिर्फ 3,000 टीआरपी बक्सों के आधार पर पूरे देश की टीआरपी जारी करती थी। इसमें भी मुंबई और दिल्ली जैसे शहरों में इनके बक्से अधिक थे। वहीं बिहार और पूर्वोत्तर के राज्यों में इनके बक्से न के बराबर थे। इस चक्कर में खबरिया चैनल भी पूरी तरह से उन्हीं शहरों की खबरें अधिक दिखाते थे, जहाँ टीआरपी के बक्से थे। जब टैम के इतने कम बक्सों के आधार पर टीआरपी जारी करने पर सवाल उठने लगे तो इसने अपने बक्सों की संख्या बढ़ाने की शुरुआत की।

हालाँकि, तब भी इस एजेंसी की रेटिंग पर सवाल उठते रहे। इसके बाद बार्क का गठन हुआ। इसमें विज्ञापनदाताओं, विज्ञापन एजेंसियों के अलावा प्रसारण कंपनियों को भी शामिल किया गया। हालाँकि, बार्क का गठन तो 2010 में ही हो गया था लेकिन केंद्र सरकार के सूचना और प्रसारण मंत्रालय ने टीवी रेटिंग के लिए दिशानिर्देश 10 जनवरी, 2014 को जारी किए। इसके भी तकरीबन डेढ़ साल बाद यानी जुलाई, 2015 में इन दिशानिर्देशों के तहत बार्क का गठन हुआ ताकि टीआरपी जारी करने की व्यवस्था सुधर सके।

अब सवाल उठता है कि आखिर 45,000 टीआरपी बक्सों के जरिए जो रेटिंग बार्क जारी करती है, उसे कैसे प्रभावित किया जा सकता है। अगर किसी चैनल को यह पता चल जाए कि किस घर में टीआरपी के बक्से लगे हैं तो वह चैनल उन घरों के लोगों को प्रभावित करने की कोशिश कर सकता है। वह उन घरों के लोगों को सीधे तौर पर पैसे देने का प्रस्ताव दे सकता है। या फिर केबल ऑपरेटर को पैसे देकर टीआरपी बक्से वाले घरों में लैंडिंग पेज पर अपने चैनल को रखने को कह सकता है। टीवी में लैंडिंग पेज उस चैनल को कहते हैं जो टीवी शुरू करने के बाद सबसे पहले दिखता है। दूसरे चैनल पर जाने के लिए फिर चैनल बदलना पड़ता है। अगर केबल ऑपरेटर लैंडिंग पेज पर किसी खास चैनल को रख देता है तो चाहे-अनचाहे कुछ देर तक टेलीविजन के दर्शक उस चैनल को देख लेते हैं और संबंधित चैनल की टीआरपी बढ़ी हुई दर्ज होती है।

टीआरपी बक्सों को प्रभावित करने का काम होता है, यह बात खुद बार्क भी मानती है। कई बार यह भी देखा गया है कि बार्क के जो एजेंट इन बक्सों को घरों में लगाने का काम करते हैं, वे टीवी चैनलों के साथ मिलकर इन बक्सों को प्रभावित करने के काम में संलिप्त होते हैं। इस संदर्भ में बार्क ने कई एफआईआर भी दर्ज कराए हैं। कई समाचार चैनलों के संपादकों और मालिकों

ने भी बाकायदा बार्क को पत्र लिखकर यह आरोप लगाया है कि टीआरपी के आँकड़ों को तोड़ा-मरोड़ा जा रहा है। कुछ समय पहले इंडिया टीवी के मालिक और संपादक रजत शर्मा ने बार्क को पत्र लिखकर टीवी9 भारतवर्ष की टीआरपी को लेकर सवाल उठाए थे और यह आरोप लगाया था कि बार्क हर हफ्ते आँकड़ों को तोड़-मरोड़कर जारी कर रही है और इस पूरे खेल में कुछ प्रसारकों की बार्क की मिलीभगत से यह काम हो रहा है।

बार्क की ओर से दर्ज कराए गए एफआईआर की जानकारी भारतीय दूरसंचार विनियामक प्राधिकरण के 2018 के एक कंसल्टेशन पेपर से भी मिलते हैं। इसमें प्राधिकरण ने स्पष्ट तौर पर कहा कि टीआरपी आँकड़ों को तोड़ने-मरोड़ने को लेकर बार्क ने अलग-अलग पुलिस थानों में एफआईआर दर्ज कराए हैं। लेकिन प्राधिकरण ने माना है कि रेटिंग को प्रभावित करने का यह काम इसलिए नहीं रुक पा रहा है क्योंकि इस समस्या से निपटने के लिए कोई कानूनी ढाँचा नहीं है। प्राधिकरण का मानना है कि इस समस्या से निपटने के लिए एक कानूनी ढाँचा तैयार किया जाना चाहिए।

प्राधिकरण का मानना है कि नमूनों का आकार सिर्फ 45,000 है, इसलिए इस व्यवस्था को प्रभावित करना आसान हो जाता है। अगर इन नमूनों का आकार बढ़ता

सोशल मीडिया, ओटीटी प्लैटफॉर्म और डिजिटल मीडिया के लिए नए नियम

डिजिटल मीडिया से जुड़ी पारदर्शिता के अभाव, जवाबदेही और उपयोगकर्ताओं के अधिकारों को लेकर बढ़ती चिंताओं के बीच आम जनता और हितधारकों के साथ विस्तृत सलाह-मशविरे के बाद भारत सरकार ने (मध्यवर्ती संस्थानों के लिए दिशा-निर्देश और डिजिटल मीडिया आचार संहिता) नियम 2021 तैयार किए हैं। इसके जरिए सोशल मीडिया, ओटीटी प्लैटफॉर्म और डिजिटल मीडिया के नियमन की योजना है।

नियमों में सुझाई गई जाँच-परख के प्रावधानों का सोशल मीडिया मध्यवर्ती इकाइयों यानी सोशल मीडिया प्लैटफॉर्म द्वारा पालन किया जाना चाहिए। उपयोगकर्ताओं को सशक्त बनाने से जुड़े नियमों के तहत सोशल मीडिया कंपनियों सहित अन्य ऐसे सेवा प्रदाताओं को उपयोगकर्ताओं या पीड़ितों से मिली शिकायतों के समाधान के लिए एक शिकायत निवारण तंत्र स्थापित करना अनिवार्य कर दिया गया है। जब किसी सोशल मीडिया कंपनी को किसी अदालती आदेश या सक्षम सरकारी संस्था से वैसी किसी सामग्री को हटाने का आदेश प्राप्त होगा जो भारत की संप्रभुता और अखंडता, देश की सुरक्षा, दूसरे देशों के साथ मित्रतापूर्ण संबंधों आदि को प्रभावित करते हों तो उन्हें तुरंत हटाना होगा।

ये नियम एक उदार स्व नियामकीय व्यवस्था और एक आचार संहिता व समाचार प्रकाशकों, ओटीटी प्लैटफॉर्मों और डिजिटल मीडिया के लिए तीन स्तरीय समाधान तंत्र स्थापित करते हैं। ओटीटी प्लैटफॉर्मों, जिन्हें नियमों में ऑनलाइन क्यूरेटेड कंटेंट के प्रकाशक कहा गया है, को पाँच उम्र आधारित श्रेणियों- यू (यूनिवर्सल), यू/ए 7+, यू/ए 13+, यू/ए 16+, और ए (वयस्क) के आधार पर कंटेंट का खुद ही वर्गीकरण करना होगा। प्लैटफॉर्म्स को यू/ए 13+ या उससे ऊँची श्रेणी के रूप में वर्गीकृत कंटेंट के लिए अभिभावक लॉक लागू करने की जरूरत होगी और 'ए' के रूप में वर्गीकृत कंटेंट के लिए एक विश्वसनीय उम्र सत्यापन तंत्र विकसित करना होगा।

डिजिटल मीडिया पर समाचार के प्रशासकों को भारतीय प्रेस परिषद के पत्रकारिता आचरण के मानदंड और केबल टेलीविजन नेटवर्क विनियमन अधिनियम के तहत कार्यक्रम संहिता पर नजर रखनी होगी, जिससे ऑफलाइन (प्रिंट, टीवी) और डिजिटल मीडिया को एक समान वातावरण उपलब्ध कराया जा सके। नियमों के तहत स्व-नियमन के लिए तीन स्तरीय शिकायत समाधान तंत्र स्थापित करने का प्रावधान किया गया है।

प्रकाशक को भारत में एक शिकायत समाधान अधिकारी नियुक्त करना होगा, जो खुद को मिली शिकायतों के समाधान के लिए जवाबदेह होगा। अधिकारी खुद को मिली हर शिकायत पर 15 दिन के भीतर फैसला लेगा। प्रकाशकों की एक या ज्यादा स्व-नियामक संस्थाएं हो सकती हैं। ऐसी संस्था की अध्यक्षता उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालय का एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश या एक स्वतंत्र प्रतिष्ठित व्यक्ति करेगा और इसमें छह से ज्यादा सदस्य हों। इस संस्था को सूचना और प्रसारण मंत्रालय में पंजीकरण कराना होगा। यह संस्था प्रकाशक द्वारा आचार संहिता के पालन की देख-रेख करेगी और उन शिकायतों का समाधान करेगी, जिनका प्रकाशक द्वारा 15 दिन के भीतर समाधान नहीं किया गया है। सूचना और प्रसारण मंत्रालय एक निरीक्षण तंत्र विकसित करेगा। यह आचार संहिताओं सहित स्व-विनियमित संस्थाओं के लिए एक चार्टर का प्रकाशन करेगा। यह शिकायतों की सुनवाई के लिए एक अंतर विभागीय समिति का गठन करेगा।

स्रोत: पीआईबी

है तो फिर इस व्यवस्था को प्रभावित करना उतना आसान नहीं रहेगा। यह 45,000 की संख्या तो वैसे बड़ी दिखती है लेकिन अगर इसे श्रेणियों में बाँटें तो पता चलता है कि कैसे इन नमूनों की संख्या अपर्याप्त है। इंडियन एक्सप्रेस में प्रकाशित एक रिपोर्ट में यह जानकारी दी गई है कि अंग्रेजी समाचार चैनलों की टीआरपी तय करने के लिए इन 45,000 टीआरपी बक्से वाले घरों में से सिर्फ 700 घरों की भूमिका होती है। इसका मतलब यह हुआ कि इन्हीं 700 घरों में अंग्रेजी समाचार चैनल देखे जाते हैं। इनमें से भी तकरीबन 350 घर ही ऐसे हैं, जहाँ लोग देर तक अंग्रेजी खबरिया चैनल देखते हैं। इस रिपोर्ट में टेलीविजन उद्योग के एक वरिष्ठ अधिकारी के हवाले से यह कहा गया है कि अगर इन 350 घरों में से 10 घरों के लोगों को भी किसी खास चैनल ने प्रभावित कर लिया और इन 10 घरों में संबंधित चैनल को काफी देर तक देखा गया तो संबंधित चैनल की टीआरपी बढ़ जाएगी।

टीआरपी को प्रभावित करने का जो हालिया विवाद सामने आया है, उसमें भी इसी ढंग से टीआरपी को प्रभावित करने की कोशिश की गई थी। मुंबई पुलिस का कहना है कि बार्क ने हंसा रिसर्च नाम की एजेंसी को इन बक्सों को लगाने और आँकड़े जुटाने का काम मुंबई क्षेत्र में दिया था। इस एजेंसी के कुछ कर्मचारियों को कुछ चैनलों ने पैसे दिए थे ताकि वे रेटिंग को उन चैनलों के पक्ष में कर सकें। इन कर्मचारियों को जो पैसे चैनलों ने दिए, उसमें से इन्होंने वे पैसे उन घरों के लोगों को दिए जिन घरों में टीआरपी के बक्से लगे थे। मुंबई पुलिस का दावा है कि उन बक्से वाले घरों के लोगों को कहा गया कि वे अधिक से अधिक देर तक रिपब्लिक टीवी देखें। हालाँकि, यहाँ आरोप रिपब्लिक के अंग्रेजी चैनल पर है। मुंबई पुलिस आयुक्त ने दावा किया कि इन घरों को हर महीने 500 से 600 रुपये दिए जा रहे थे और कहा जा रहा था कि वे रिपब्लिक टीवी चलाते रहें। मुंबई पुलिस आयुक्त परमबीर सिंह ने दावा किया कि उन घरों में रिपब्लिक का अंग्रेजी चैनल दिन भर चल रहा था जिन घरों के लोग अंग्रेजी समझते तक नहीं हैं। परमबीर सिंह ने यह भी दावा किया है कि इनमें कई घरों के लोगों ने पुलिस के सामने यह स्वीकार किया है कि उन्हें पैसे दिए जा रहे थे।[3]

मुंबई पुलिस का कहना है कि इस अजीब से बदलाव को हंसा रिसर्च और बार्क ने पकड़ा और इस बारे में मुंबई पुलिस में शिकायत दर्ज कराई। इसके बाद मुंबई पुलिस की अपराध शाखा ने कांदिवली पुलिस थाने में एफआईआर दर्ज की और हंसा रिसर्च के दो पूर्व कर्मचारियों विशाल भंडारी और बोमपल्ली राव मिस्त्री को गिरफ्तार किया। साथ ही मुंबई पुलिस ने फक्त मराठी के मालिक शिरीष पट्टनशेठी और बॉक्स सिनेमा के नारायण शर्मा को भी गिरफ्तार किया। हंसा रिसर्च के दोनों कर्मचारियों ने जून, 2020 में इस कंपनी को छोड़ दिया। मुंबई पुलिस का दावा है कि इन दोनों में से एक के बैंक खाते में 20 लाख रुपये थे और लॉकर में 8.5 लाख रुपये थे। मुंबई पुलिस का दावा यह भी है कि पूछताछ में इन दोनों लोगों ने यह स्वीकार किया है कि ये टीआरपी बक्से वाले घरों के लोगों को इस बात के लिए पैसे दे रहे थे कि इन तीनों चैनलों को ये चलाते रहें।[4]

हालाँकि, रिपब्लिक टीवी ने अन आरोपों को खारिज किया है और उसका दावा है कि एफआईआर में रिपब्लिक टीवी का नाम नहीं है बल्कि 'इंडिया टुडे' का नाम है और इस तरह का आरोप रिपब्लिक टीवी पर इसलिए लगाया जा रहा है क्योंकि चैनल ने सुशांत सिंह राजपूत मामले में मुंबई पुलिस पर बार-बार सवाल उठाए हैं। इसके बाद मुंबई पुलिस की ओर से जो जवाब आया उसमें यह माना गया कि एफआईआर में 'इंडिया टुडे' का नाम आया है लेकिन किसी भी आरोपित ने ये नहीं कहा कि वे 'इंडिया टुडे' देखने के लिए पैसे दे रहे थे बल्कि आरोपितों ने रिपब्लिक टीवी, फक्त मराठी और बॉक्स सिनेमा का ही नाम लिया है।

टीआरपी के आंकड़ों को तोड़ने-मरोड़ने में रिपब्लिक टीवी पर संलिप्तता का आरोप लगते ही दूसरे खबरिया चैनलों ने इस चैनल के खिलाफ एक मुहिम छेड़ दी। इस मुहिम का नेतृत्व स्वाभाविक तौर पर 'आज तक' कर रहा था। क्योंकि शीर्ष हिंदी खबरिया चैनल के लिए मुकाबला 'आज तक' और 'रिपब्लिक भारत' के बीच ही है। आज तक के विशेष कार्यक्रम का शीर्षक था- रिपब्लिक टीवी टीआरपी चोर है। लेकिन इस मुहिम में दूसरे चैनल भी पीछे नहीं रहे। 'एबीपी न्यूज' ने 'रिपब्लिक टीवी की टीआरपी साजिश की पोल खुली' शीर्षक के साथ बहस कराई। वहीं टाइम्स नाउ ने 'रिपब्लिक टीवी चीटेड भारत' यानी रिपब्लिक टीवी ने भारत को धोखा दिया शीर्षक के साथ विशेष कार्यक्रम चलाया।

टीआरपी आंकड़ों को तोड़ने-मरोड़ने के कई आरोपों के बीच तकरीबन दो साल पहले सूचना और प्रसारण मंत्रालय ने टीआरपी की नई व्यवस्था विकसित करने का प्रस्ताव दिया था। मंत्रालय का प्रस्ताव यह था कि टीआरपी बक्सों के सहारे टीआरपी जारी करने के बजाए यह व्यवस्था विकसित की जानी चाहिए कि हर सेट टॉप बॉक्स में ही एक चिप लगा हो और उसके जरिए टीवी दर्शकों के रुझान की जानकारी मिले।[5] इस व्यवस्था का लाभ यह था कि नमूनों का आकार काफी व्यापक हो जाता और फिर इसे प्रभावित करना बेहद मुश्किल हो जाता। साथ ही टीआरपी तय करने में देश के हर टेलीविजन दर्शक की भूमिका होती और एक तरह से कहा जाए तो टीआरपी

टीआरपी को प्रभावित करने का जो हालिया विवाद सामने आया है, उसमें भी इसी ढंग से टीआरपी को प्रभावित करने की कोशिश की गई थी। मुंबई पुलिस का कहना है कि बार्क ने हंसा रिसर्च नाम की एजेंसी को इन बक्सों को लगाने और आँकड़े जुटाने का काम मुंबई क्षेत्र में दिया था। इस एजेंसी के कुछ कर्मचारियों को कुछ चैनलों ने पैसे दिए थे ताकि वे रेटिंग को उन चैनलों के पक्ष में कर सकें

की पूरी व्यवस्था लोकतांत्रिक हो जाती। लेकिन इस प्रस्ताव पर सहमति नहीं बन सकी और टीआरपी की गैर पारदर्शी और सीमित नमूनों वाली उसी व्यवस्था को बरकरार रखने का निर्णय लिया गया जिसे प्रभावित करने का आरोप गाहे-बगाहे लगता रहता है। अब जब खबरिया चैनलों के लिए टीआरपी नहीं जारी की जा रही है तो इस बात पर सभी पक्षों को विचार करना चाहिए कि रेटिंग की वैकल्पिक व्यवस्था क्या हो, जिसे प्रभावित करना आसान न हो।

टीआरपी के चक्कर में जिस तरह से खबरिया चैनलों में खबरों के नाम पर अराजकता दिखती है, उसी तरह की खबरिया अराजकता डिजिटल प्लैटफॉर्म पर भी दिख रही है। यहाँ टीआरपी की जगह हिट्स, यूनिक विजिटर और पेज व्यू ने ले ली है। हिट्स का मतलब यह होता है कि कितने लोग किसी खबर को खोल रहे हैं। यूनिक विजिटर से तात्पर्य अलग-अलग लोगों के खबर खोलने से है। पेज व्यू का मतलब यह है कि कितनी बार किसी खबर के पेज को देखा गया है। डिजिटल समाचार संस्थानों में इन्हें 'यूवी' और 'पीवी' कहा जाता है। डिजिटल समाचार संस्थानों की टीआरपी यही यूवी और पीवी हैं।

जो भी पत्रकार डिजिटल समाचार माध्यमों में काम कर रहे हैं, उन्हें कहा जाता है कि ऐसी खबरें ही लिखें जिससे संबंधित डिजिटल समाचार प्लैटफॉर्म का यूवी और पीवी बढ़ सके। इस वजह से देखा जा रहा है डिजिटल समाचार प्लैटफॉर्म पर सिनेमा, सेलिब्रिटी और सेक्स आधारित खबरें अधिक परोसी जा रही हैं। साथ ही अभिनेत्रियों और मॉडल्स की तस्वीरों के साथ फोटो गैलरी भी बनाई जाती है ताकि अधिक से अधिक लोग इन तस्वीरों को देखने की वजह से संबंधित डिजिटल समाचार प्लैटफॉर्म पर आकर उनका यूवी और पीवी बढ़ा सकें।

कुछ समय से भारत में डिजिटल मीडिया में यह चलन भी तेजी से बढ़ा है कि ऐसा शीर्षक दिया जाए जो लोगों को आकर्षित करे। भले ही पूरी संबंधित खबर से उसका ठीक से तालमेल हो या नहीं। इस चक्कर में अकसर यह देखा जाता है कि शीर्षक को पढ़कर जो लोग उन खबरों पर क्लिक करते हैं, उन्हें शीर्षक की पुष्टि करने वाली खबर नहीं मिलती और कई बार तो यह भी देखा गया है कि शीर्षक और खबर में बिलकुल ही तालमेल नहीं होता। जाहिर है कि डिजिटल समाचार माध्यम अपने यूवी और पीवी बढ़ाने के लिए भ्रामक शीर्षक देकर अपने पाठकों को धोखा दे रहे हैं।

कोई कानूनी और सांस्थानिक ढाँचा न होने के कारण डिजिटल मीडिया में यह भी देखा जा रहा है कि बहुत सारी वेबसाइटें किसी खास एजेंडे के मकसद से काम कर रही हैं। डिजिटल मीडिया में यह भी दिख रहा है कि फेक न्यूज यानी फर्जी खबरों का चलन बढ़ा है। किसी स्पष्ट कानूनी जिम्मेदारी के दायरे में न होने से डिजिटल मीडिया के कई प्लैटफॉर्म फर्जी खबरें प्रकाशित करते हैं और बाद में इन्हीं फर्जी खबरों को सोशल मीडिया प्लैटफॉर्म के जरिए फैलाया जाता है। फेक न्यूज को बढ़ावा देने के लिए सोशल मीडिया कंपनियों की भी लगातार आलोचना की जा रही है

आज हालत यह है कि भारत के प्रमुख डिजिटल समाचार माध्यमों में संवाददाताओं और खबरों को लिखने वालों को यूवी और पीवी के लक्ष्य दिए गए हैं। उन्हें कहा जाता है कि आपको हर महीने ऐसी खबरें करनी हैं कि एक निश्चित संख्या में यूवी और पीवी उस समाचार वेबसाइट को मिल पाए। जो पत्रकार ऐसी खबरें नहीं कर पाते, उनकी खबरें चाहे कितनी भी प्रासंगिक हों, उनके खिलाफ ये डिजिटल समाचार संस्थान कार्रवाई कर रहे हैं। कई ऐसे पत्रकार हैं जिन्हें सिर्फ इसलिए नौकरी से निकाला गया कि उनकी खबरों को अपेक्षित यूवी और पीवी नहीं मिल पा रहे थे। अधिकांश डिजिटल समाचार संस्थानों के लिए यह महत्व नहीं रखता कि पत्रकारिता से संबंधित नैतिकता खबरों में है या नहीं बल्कि उनके लिए यह महत्व रखता है कि उनकी समाचार वेबसाइट के यूवी और पीवी में कितनी बढ़ोतरी हो रही है।

डिजिटल समाचार माध्यमों के नियमन के लिए कोई भी ठोस व्यवस्था नहीं है। प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के लिए लाइसेंस लेने से लेकर बाद के लिए भी कुछ कानून हैं। लेकिन डिजिटल मीडिया के लिए तो सरकार से लाइसेंस लेने की भी कोई जरूरत नहीं है, न कहीं कोई रजिस्ट्रेशन कराने की ही जरूरत है। इस वजह से बहुत बड़ी संख्या में समाचार वेबसाइट चलाए जा रहे हैं।[6] इनमें बड़ी संख्या वैसे समाचार वेबसाइटों की भी है जो कोई खास एजेंडा चलाने या किसी व्यक्ति या संगठन के खिलाफ संगठित दुष्प्रचार करने के लिए चलाए जा रहे हैं। डिजिटल मीडिया के नियमन के लिए न तो कोई कानून है और न ही कोई संस्था।

कोई कानूनी और सांस्थानिक ढाँचा न होने के कारण डिजिटल मीडिया में यह भी देखा जा रहा है कि बहुत सारी वेबसाइटें किसी खास एजेंडे के मकसद से काम कर रही हैं। डिजिटल मीडिया में यह भी दिख रहा है कि फेक न्यूज यानी फर्जी खबरों का चलन बढ़ा है। किसी स्पष्ट कानूनी जिम्मेदारी के दायरे में न होने से डिजिटल मीडिया के कई प्लैटफॉर्म फर्जी खबरें प्रकाशित करते हैं और बाद में इन्हीं फर्जी खबरों को सोशल मीडिया प्लैटफॉर्म के जरिए फैलाया जाता है। फेक न्यूज को बढ़ावा देने के लिए सोशल मीडिया कंपनियों की भी लगातार आलोचना की जा रही है। लेकिन यह भी देखा गया है कि अगर सोशल मीडिया पर कोई फर्जी खबर किसी समाचार वेबसाइट के हवाले से आती है या किसी समाचार के लिंक के रूप में प्रसारित की जाती है तो आम लोगों के बीच उसका असर अधिक होता है। इसलिए कहना गलत नहीं होगा कि सोशल मीडिया पर फर्जी खबरों के प्रसार के मूल में भी डिजिटल मीडिया

की अराजकता है।

हालाँकि, पिछले साल केंद्र सरकार ने एक अधिसूचना जारी करके यह जरूर किया है कि इंटरनेट पर खबरों को दिए जाने और इंटरनेट के जरिए वितरित की जा रही अन्य मनोरंजक सामग्री को भी केंद्रीय सूचना और प्रसारण मंत्रालय के अधीन दे दिया है।[7] हालाँकि, इसके बावजूद अब भी इसके नियमन के लिए कोई संस्थागत या कानूनी स्वरूप उभरकर सामने नहीं आया है। इस बात की चर्चा जरूर है कि एक सांस्थानिक ढाँचा विकसित करने की कोशिश हो रही है। लेकिन अभी स्थिति ये है कि डिजिटल मीडिया में तो आत्मनियमन के लिए भी कोई संस्था नहीं है। ऐसे में कहना गलत नहीं होगा कि डिजिटल मीडिया में व्यापक स्तर पर अराजकता फैली हुई है।

डिजिटल मीडिया के नियमन के संदर्भ में एक बात का उल्लेख और जरूरी है। पिछले साल केंद्र सरकार ने डिजिटल मीडिया में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश यानी एफडीआई की अधिकतम सीमा 26 फीसदी तय कर दी। साथ ही केंद्र सरकार ने ये भी कहा कि अगर किसी डिजिटल मीडिया कंपनी में इससे अधिक एफडीआई है तो उसे अगले एक साल में एफडीआई को कम करके 26 फीसदी पर लाना होगा। मालूम हो कि प्रिंट मीडिया में भी एफडीआई की सीमा 26 फीसदी है। जबकि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में एफडीआई की अधिकतम सीमा 49 फीसदी है।[8]

हालाँकि, यह एक अलग बहस है कि भारतीय मीडिया में एफडीआई होनी चाहिए या नहीं। क्योंकि इस बात को समझना जरूरी है कि अन्य औद्योगिक क्षेत्रों की तहत मीडिया में विदेशी पूँजी का प्रवाह लाने के कई खतरे हैं। इससे स्वाभाविक तौर पर मीडिया की प्राथमिकताएँ और पत्रकारिता से संबंधित मूल्यों में बदलाव होगा। विदेशी पूँजी का प्रवाह अगर भारतीय मीडिया में बढ़ता है तो जाहिर है कि इससे खबरों में भी उन विदेशी लोगों का दखल बढ़ेगा जो पूँजी लगा रहे हैं। इसलिए मीडिया में एफडीआई की प्रवृत्ति को बढ़ावा देने से पहले इसके खतरों को लेकर व्यापक विचार-विमर्श जरूरी है। क्योंकि अगर ऐसा नहीं किया जाता है तो विदेशी पूँजी से चलने वाली मीडिया का नियमन और मुश्किल हो जाएगा।

डिजिटल मीडिया में 26 फीसदी एफडीआई की अधिकतम सीमा तय करने को मीडिया के एक वर्ग ने ऐसे देखा कि ऐसा करके केंद्र सरकार डिजिटल मीडिया

आईएनएस ने गूगल से अधिक राजस्व की मांग की

पूरी दुनिया में गूगल पर इस बात के लिए दबाव बढ़ रहा है कि वह समाचार प्रकाशकों को अधिक राजस्व दे। इन दबावों के बीच इंडियन न्यूजपेपर्स सोसाइटी (आईएनएस) ने गूगल इंडिया को बाकायदा एक पत्र लिखकर यह माँग की है कि वह भारतीय समाचार प्रकाशकों को अधिक राजस्व भुगतान करे। हाल ही में ऑस्ट्रेलिया ने एक कानून बनाकर सोशल मीडिया के लिए यह अनिवार्य कर दिया है कि वे खबरों को अपने प्लैटफॉर्म पर तभी इस्तेमाल कर सकते हैं जब वे समाचार देने वाली कंपनियों को भुगतान करेंगे। फ्रांस में भी इसी तरह के नियम बने हैं। कुछ अन्य देशों में इस तरह की योजनाओं पर काम चल रहा है ताकि सोशल मीडिया की इन बड़ी कंपनियों के मुकाबले समाचारों के पारंपरिक प्रकाशक टिके रह सकें।

भारत में प्रिंट मीडिया का प्रतिनिधित्व आईएनएस करता है। आईएनस के अध्यक्ष एल. अदिमूलम ने गूगल इंडिया को लिखे एक पत्र में कहा है कि प्रकाशकों का सामना एक बेहद गैर पारदर्शी विज्ञापन तंत्र से हो रहा है और उन्हें पता नहीं चल पा रहा है कि गूगल के विज्ञापन तंत्र में क्या हो रहा है। आईएनएस ने गूगल से यह माँग की है कि कंपनी भारतीय समाचारपत्रों को उनकी सामग्री के लिए अच्छा भुगतान करे और अपने विज्ञापन राजस्व को ठीक ढंग से साझा करे।

आईएनएस ने एक बयान जारी करके कहा है, "सोसाइटी ने गूगल से यह माँग की है कि वह प्रकाशकों की हिस्सेदारी को बढ़ाकर कुल विज्ञापन राजस्व का 85 फीसदी करे। साथ ही गूगल प्रकाशकों को विज्ञापन राजस्व संबंधित जो रिपोर्ट देता है, उसे और पारदर्शी बनाया जाए।" आईएनएस ने ये भी कहा है कि समाचार पत्र जिस सामग्री का सृजन और प्रकाशन करते हैं, वह उनकी संपदा है और ऐसी खबरों की विश्वसनीयता की वजह से गूगल को भारत में शुरुआत से लेकर अब तक विश्वसनीयता हासिल होती आई है।

आईएनएस ने यह कहते हुए समाचारपत्रों के लिए अधिक राजस्व की माँग की है कि अखबारों को हजारों पत्रकारों को जमीनी स्तर पर खबरों को जुटाने और सूचनाओं के पुष्टीकरण के लिए लगाना पड़ता है और इसमें बहुत पैसे खर्च होते हैं। आईएनएस ने ये भी कहा है कि समाचारपत्र गुणवत्तापूर्ण पत्रकारिता के जरिए जो विश्वसनीय खबरें, समसामयिक मसलों, विश्लेषण, सूचनाओं और मनोरंजक सामग्री तक लोगों की पहुँच स्थापित करते हैं। गुणवत्तापूर्ण प्रकाशनों द्वारा मुहैया कराई जा रही संपादकीय सामग्री और सूचना प्लैटफॉर्मों पर चल रही फर्जी खबरों में बहुत फर्क होता है। इस संदर्भ में आईएनएस ने गूगल से यह माँग की है कि वह कुल राजस्व में से एक बड़ा हिस्सा समाचारपत्रों को दे।

संदर्भ: https://www.businesstoday.in/current/economy-politics/indian-newspaper-society-asks-google-to-increase-publisher-share-of-ad-revenue-to-85/story/432396.html

पर नकेल कसने की कोशिश कर रही है। इन लोगों का तर्क यह है कि पहले से कोई दिशानिर्देश न होने की वजह से कई डिजिटल समाचार कंपनियाँ अधिक विदेशी निवेश के साथ काम कर रही हैं। इनमें से भी कुछ ऐसी हैं जो सरकार को लेकर आलोचनात्मक रुख अपनाए रखती हैं। ऐसे में इन लोगों का तर्क है कि इन डिजिटल समाचार कंपनियों के लिए 26 फीसदी की अधिकतम सीमा के साथ काम करना मुश्किल हो जाएगा और अंततः उन्हीं कंपनियों को काम करने में आसानी होगी जो सरकार की हाँ में हाँ मिलाती हैं। इस तर्क को अगर तथ्यों की कसौटी पर कसा जाए तो एक बात स्पष्ट तौर पर समझ में आती है कि यह सीमा हर किसी के लिए है। पहली बात तो यह कि मीडिया में एफडीआई होनी ही नहीं चाहिए लेकिन इसके बावजूद अगर डिजिटल मीडिया में 26 फीसदी एफडीआई की सीमा तय की गई है तो इसके अनुपालन के लिए एक साल से अधिक का वक्त दिया जाना चाहिए था।

डिजिटल मीडिया के नियमन में एक चुनौती यह भी है कि कई समाचार वेबसाइटें भारत के बाहर से चल रही हैं। इंटरनेट की दुनिया में ऐसी वेबसाइटों को भारत में रोकना आसान नहीं है। अगर किसी वेबसाइट को प्रतिबंधित किया जाए तो भी समाचारों का सोशल मीडिया प्लैटफॉर्म के जरिए आना जारी रहेगा। अगर सरकार भारत से चल रहे डिजिटल मीडिया संस्थानों के नियमन की कोई व्यवस्था बना भी ले तो भी यह एक बड़ा सवाल रहेगा कि भारत की सीमा के बाहर से वेबसाइटों और सोशल मीडिया मंचों के जरिए आ रही खबरों का नियमन कैसे हो। इस बारे में न सिर्फ सरकार, बल्कि भारतीय डिजिटल मीडिया संस्थानों को भी सोचना होगा। क्योंकि डिजिटल मीडिया का नियमन प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के मुकाबले सबसे जटिल होने जा रहा है। इसके नियमन की प्रक्रिया में सरकार को गूगल, फेसबुक, वॉट्सएप और ट्विटर जैसी दुनिया की ताकतवर कंपनियों से भी टकराना होगा।

समाचार चैनलों और डिजिटल मीडिया के कामकाज में व्याप्त खामियों ने इनके कामकाज में सरकार को दखल देने का अवसर मुहैया कराया है और अब यह बात चलने लगी है कि मीडिया के नियमन के लिए सरकार को कोई पहल करनी चाहिए। ऐसे में यह सवाल उठता है कि आखिर टेलीविजन मीडिया और डिजिटल मीडिया के नियमन का क्या स्वरूप होना चाहिए। एक सुझाव यह आता है कि भारतीय प्रेस परिषद की तर्ज पर भारतीय मीडिया परिषद का गठन किया जाए। जो लोग इस परिकल्पना के पक्षधर हैं, उनका कहना है कि भारतीय मीडिया परिषद को ही प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक और डिजिटल मीडिया के नियमन का काम दे दिया जाना चाहिए।

यह बात अलग है कि भारतीय प्रेस परिषद भी कई मामलों में दंतहीन और असहाय ही मालूम पड़ती है। पर इसे ही आधार बनाकर मीडिया काउंसिल ऑफ इंडिया का गठन नहीं करने को सही नहीं ठहराया जा सकता है। क्योंकि संस्थानों की बदहाली के लिए उनका गठन नहीं बल्कि उनकी कार्यप्रणाली जिम्मेदार होती है। संस्थान किस तरह से काम करेंगे, यह बहुत हद तक इस बात पर भी निर्भर करता है कि उनमें किन लोगों को रखा गया है। इस नाते भी अगर देखा जाए तो प्रेस परिषद की बदहाली को आधार बनाकर मीडिया परिषद की स्थापना नहीं करने को सही नहीं कहा जा सकता है।

भारतीय मीडिया परिषद के गठन के वक्त एक बात का और ध्यान रखा जाना चाहिए कि इसे पर्याप्त कानूनी अधिकार दिया जाए। इस नए परिषद को न्यायिक शक्तियाँ भी दी जाएँ ताकि यह संस्था दोषी मीडिया संस्थानों पर स्वतंत्र रूप से कार्रवाई कर सके। अभी भारतीय प्रेस परिषद के बेअसर साबित होने के पीछे यह तर्क भी दिया जाता है कि इसके पास कानूनी तौर पर न्यायिक शक्तियाँ नहीं हैं। इस वजह से यह संस्था चाहकर भी मीडिया संस्थानों के खिलाफ कुछ कर नहीं पाती।

भारतीय मीडिया परिषद का गठन कर देना ही सभी समस्याओं का समाधान नहीं है। बल्कि यह तो महज एक शुरुआत होगी। इसके गठन के बाद इसे एक ऐसे संस्थान के तौर पर विकसित करना होगा जिससे लोगों को यह न लगे कि पिछले दरवाजे से सरकार ही मीडिया को नियंत्रित कर रही है। साथ ही यह भी सुनिश्चित करना होगा कि भारतीय मीडिया परिषद मौजूदा भारतीय प्रेस परिषद की तरह सिर्फ कागजी शेर न साबित हो। क्योंकि भारतीय प्रेस परिषद अपनी जिम्मेदारियों के निर्वहन में पूरी तरह से नाकाम रही है। भारतीय मीडिया परिषद एक ऐसी शुरुआत हो सकती है जिसके जरिए इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और डिजिटल मीडिया के नियमन के लिए भी एक ऐसी व्यवस्था उभरे जो पारदर्शी, प्रभावी, भरोसेमंद और परिणामकारी हो।

भारत में मीडिया के नियमन के लिए कुछ सबक दूसरे देशों में मीडिया नियमन की दिशा में हो रहे पहल से भी लिया जा सकता है। वैसे तो अलग-अलग देशों में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और डिजिटल मीडिया

के नियमन का स्वरूप भी अलग-अलग है लेकिन इनमें कुछ समानताएँ भी हैं। सबसे पहली बात कि तकरीबन हर प्रमुख देश में एक कानूनी ढाँचा तैयार किया गया जिसके आधार पर नियमन का काम हो रहा है। इसके तहत न सिर्फ नियमन की व्यवस्थाएँ विकसित हुई हैं, बल्कि नियमन के लक्ष्यों को भी निर्धारित किया गया है।

नियमन के ढाँचे तहत एक नियामक संस्था का गठन अधिकांश देशों में किया गया है। अगर ब्रिटेन का उदाहरण लें तो वहाँ ऑफिस ऑफ कम्युनिकेशंस यानी ऑफकॉम मीडिया नियामक के तौर पर काम करती है। इसी संस्था ने पिछले दिनों ब्रिटेन में भारत के समाचार चैनल रिपब्लिक भारत का वितरण करने वाली कंपनी वर्ल्डव्यू मीडिया नेटवर्क लिमिटेड पर 20,000 पाउंड का जुर्माना लगाया था। ऑफकॉम ने यह पाया कि रिपब्लिक भारत के कार्यक्रम 'पूछता है भारत' में वैमनस्य और हिंसा फैलाने वाली बात कही गई।[9] यह संस्था ब्रिटेन के मीडिया संस्थानों पर प्रभावी ढंग से कार्रवाई करने के लिए चर्चा में रहती है। लेकिन भारत में कोई भी संस्था किसी समाचार चैनल या किसी भी मीडिया संस्थान के खिलाफ ऐसी कार्रवाई करती नहीं दिखती।

फ्रांस में यही काम सीएसए नाम की संस्था को मिला हुआ है। स्वीडन में ब्रॉडकास्टिंग कमीशन है। अमेरिका में मीडिया नियमन का काम फेडरल कम्युनिकेशन कमिशन यानी एफसीसी करती है। एफसीसी की पहचान भी स्वायत्त ढंग से प्रभावी काम करने वाली संस्था की है।[10] पिछले साल एफसीसी ने सिंक्लेयर ब्रॉडकास्ट ग्रुप के खिलाफ रिकॉर्ड 4.8 करोड़ डॉलर का जुर्माना लगाया था। आठ दशक से अधिक समय से काम कर रहे एफसीसी के इतिहास में इतना भारी जुर्माना किसी मीडिया कंपनी पर नहीं लगा था। कंपनी पर यह आरोप था कि वह गलत ढंग से दूसरी मीडिया कंपनी का अधि ग्रहण करने की कोशिश कर रही थी। साथ ही एक आरोप यह भी था कि कंपनी ने एक प्रायोजित कार्यक्रम को सामान्य समाचार कार्यक्रम की तरह प्रसारित किया। कुल 4.8 करोड़ डॉलर के जुर्माने में से 1.3 करोड़ डॉलर का जुर्माना सिर्फ इस बात के लिए लगा है कि प्रायोजित कार्यक्रम को आम समाचार कार्यक्रम के तौर पर प्रसारित किया गया।[11]

क्या भारत में इसी तरह की गलती पर किसी समाचार चैनल या किसी डिजिटल मीडिया संस्थान पर ऐसे जुर्माने की कल्पना मौजूदा कानूनी और सांस्थानिक ढाँचे के तहत की जा सकती है? भारत में तो कार्यक्रम ही नहीं बल्कि आम लोगों की नजरों में पूरे के पूरे समाचार संस्थानों की छवि प्रायोजित मीडिया संस्थान की बन रही है। आम लोग तक समाचार चैनलों और समाचार वेबसाइट के बारे में बता देते हैं कि किसका संबंध किस राजनीतिक विचारधारा से है

क्या भारत में इसी तरह की गलती पर किसी समाचार चैनल या किसी डिजिटल मीडिया संस्थान पर ऐसे जुर्माने की कल्पना मौजूदा कानूनी और सांस्थानिक ढाँचे के तहत की जा सकती है? भारत में तो कार्यक्रम ही नहीं बल्कि आम लोगों की नजरों में पूरे के पूरे समाचार संस्थानों की छवि प्रायोजित मीडिया संस्थान की बन रही है। आम लोग तक समाचार चैनलों और समाचार वेबसाइट के बारे में बता देते हैं कि किसका संबंध किस राजनीतिक विचारधारा से है।

अगर ऑफकॉम और एफसीसी जैसी संस्थाएँ प्रभावी तौर पर मीडिया नियमन का काम कर पा रही हैं तो इसके मूल में यह बात है कि इन संस्थाओं को वास्तविक स्वायत्तता और शक्तियाँ दी गई हैं। यही वजह है कि ये संस्थाएँ अपने-अपने यहाँ प्रभावी ढंग से मीडिया नियमन कर पा रही हैं। इन संस्थाओं के कामकाज से कुछ सबक लेकर उनमें से कुछ को भारत की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अपनाया जा सकता है। यह भी हो सकता है कि स्थानीय जरूरतों और परिस्थितियों को देखते हुए नियमन का एक अलग ही व्यापक और प्रभावी तंत्र विकसित किया जाए।

संदर्भ

1. मीडिया का बदलता चरित्र, हिमांशु शेखर, डायमंड बुक्स, नई दिल्ली
2. तमाशा रेटिंग प्वाइंट्स, तहलका, नई दिल्ली, 15 अक्टूबर, 2011
3. https://www.barandbench.com/news/litigation/trp-scam-chargesheet-filed-by-mumbai-police-in-court
4. https://indianexpress.com/article/india/trp-fraud-case-police-file-1400-page-chargesheet- 7064495/
5. https://indianexpress.com/article/explained/explained-what-are-trps-can-they-be-rigged-to-help-a-news-channel-6716211/
6. https://www.nationalheraldindia.com/india/regulation-of-digital-media-ever-growing-reach-of-digital-republics-poses-a-huge-challenge
7. https://www.thehindu.com/news/national/netflix-amazon-prime-other-ott-platforms-now-under-govt-regulation/article33072710.ece
8. https://paranjoy.in/article/is-government-reining-in-digital-news-media
9. https://indianexpress.com/article/india/uk-body-slaps-20000-fine-on-firm-broadcasting-republic-bharat-7115881/
10. https://www.le.ac.uk/oerresources/media/ms7501/mod2unit11/page_27.htm
11. https://www.engadget.com/fcc-sinclair-48-million-fine-024123244.html

''पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विषय में जानकारियाँ बहुत ही सीमित हैं। डॉ. महेशचंद्र शर्मा ने इस विषय पर गवेषणात्मक अध्ययन किया है। इस शोध-ग्रंथ का प्रकाशन न केवल जनसंघ की राजनीति व विचारधारा के प्रति लोगों को लाभदायक जानकारियाँ देगा वरन् राजनीति शास्त्र की वैचारिक बहस को भी आगे बढ़ाएगा। दीनदयाल उपाध्याय व भारतीय जनसंघ को समझने के लिए यह शोध-ग्रंथ प्रामाणिक आधारभूमि प्रदान करता है।''

—डॉ. इकबाल नारायण

पूर्व कुलपति-राजस्थान विश्वविद्यालय,
काशी हिंदू विश्वविद्यालय तथा नॉर्थ-ईस्ट हिल्ज यूनिवर्सिटी,
पूर्व सदस्य-सचिव, भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद्

''यदि मुझे दो दीनदयाल मिल जाएँ, तो मैं भारतीय राजनीति का नक्शा बदल दूँ।''

—डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी

पं. दीनदयाल उपाध्याय द्वारा लिखित पुस्तकें

प्रभात प्रकाशन

ISO 9001 : 2008 प्रकाशक

www.prabhatbooks.com

ISBN 978-93-5186-262-8

₹ 500/-

पं. दीनदयाल उपाध्याय

कर्तृत्व एवं विचार

डॉ. महेशचंद्र शर्मा

पं. दीनदयाल उपाध्याय
कर्तृत्व एवं विचार
डॉ. महेशचंद्र शर्मा

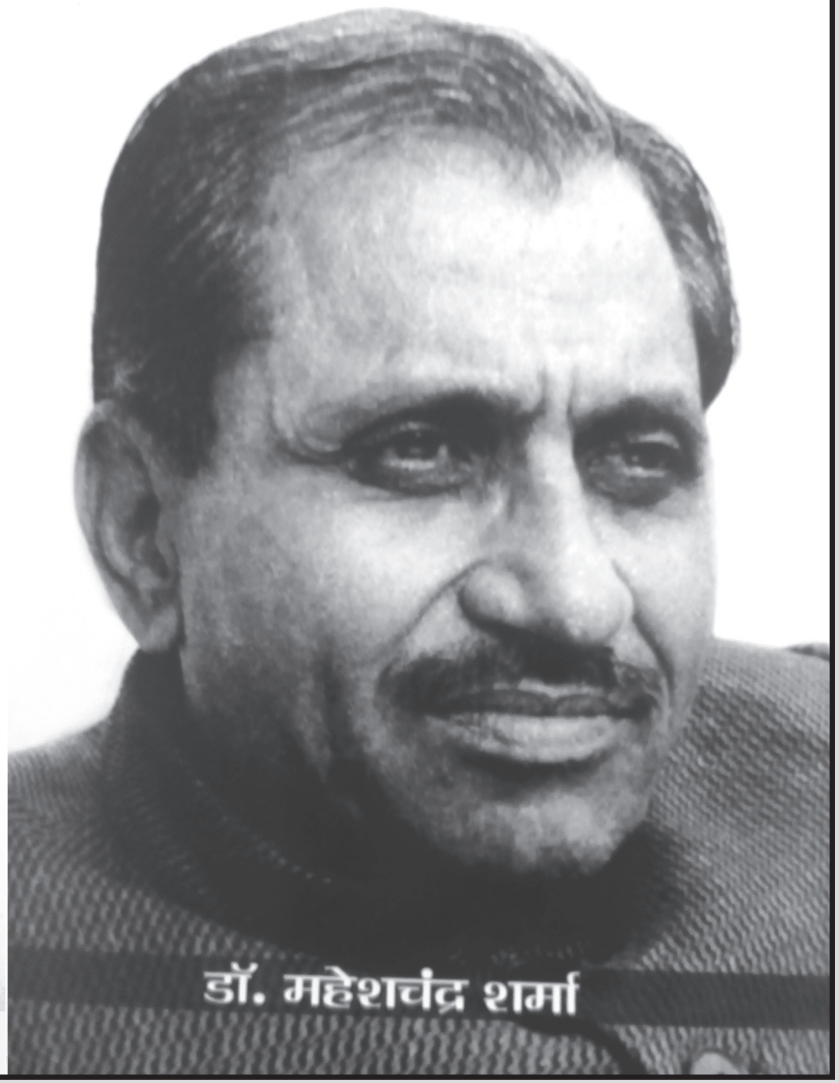

अंशुमान तिवारी

लोकतंत्र में मंदी

मीडिया और लोकतंत्र की स्वतंत्रता कोई अर्थव्यवस्था से निरपेक्ष तत्व नहीं है। यह बहुत हद तक लोक और बाजार की आर्थिक स्वतंत्रता से जुड़ी है। समय के साथ बदलती स्थितियों पर एक नजर

वाकया 1644 का है। पैराडाइज लॉस्ट के रचनाकार और प्रसिद्ध कवि जॉन मिल्टन बर्तानवी संसद पर बुरी तरह भड़के उठे। पंद्रहवी सदी का आधा सफर बीतने तक दुनिया के हिस्सों में छापाखाने (प्रिंटिंग प्रेस) की खटर-पटर शुरू हो चुकी थी। सदी बीतने से पहले विलियम कैक्स्टन छापाखाने को इंग्लैंड ले आए। ब्रूश (Bruges) (बेल्जियम) की सांस्कृतिक समृद्धि में पले बढ़े बर्तानवी कारोबारी, लेखक और अनुवादक, कैक्स्टन इंग्लैंड के पहले निजी प्रकाशक बन गए थे।

बर्तानवी संसद के नाम मिल्टन की रोष भरी चिट्ठी जारी होने से पहले तक वेस्टमिंस्टर में प्रेस की खटपट शुरू हुए 168 वर्ष बीत चुके थे। यूरोप के सभी हिस्सों में निजी छापाखाने लग चुके थे। जर्मनी में अखबार और पत्रिकायें छपने लगी थीं यानी कि प्रकाशन एक नया निजी उपक्रम बन गया था जो अत्यंत रोचक इतिहास बनाता हुआ तेजी से फैल रहा था।

इसी बीच बर्तानिया की संसद ने एक कानून बना दिया। मुनादी पिट गई कि अब जो भी किताबें छपेंगी उन पर संसद की मंजूरी जरूरी होगी। सेंसरशिप की वंशावली यहीं से शुरू होती है। मिल्टन इसी पर भड़क गए उन्होंने एक खुला खत जारी किया जिसका नाम एरियोपगीटिका (Areopagitica: A Speech of Mr John Milton for the Liberty of Unlicenc'd Printing, to the Parliament of England) था। मिल्टन ने यूँ ही इसे एरियोपगीटिका नहीं कहा था। दरअसल पुरानएथेंस (ईपू 4 सदी) में एरियोपोगस नाम का टीला था, जहाँ तब की अदालत बैठती थी जो तरह-तरह की सेंसरशिप लगाती थी।

खैर किस्सा कोताह कि जॉन मिल्टन ने संसद को लिखा कि सच और समझ ऐसी चीजें नहीं हैं जिन्हें टिकट लगाकर बेचा जा सके या कानून अथवा नियमों के जरिये तय किया जा सके। यह खींचतान लंबी चली और इंग्लैंड में तो नहीं लेकिन स्वीडन ने 1766 में पहली बार छपी हुई सामग्री प्रतिबंध हटाने का कानून पारित किया।

इसके बाद तो फिर दुनिया की बदल गई। निजी उद्यमिता की उंगली पकड़ कर सबसे कीमती आजादी, दुनिया भर में फैल गई। स्वीडिश कानून के 25 साल बाद अमेरिका के कानून निर्माताओं ने पहला संशोधन पारित कर कसम खाई कि प्रेस या अभिव्यक्ति की आजादी पर कभी पाबंदी नहीं लगाएंगे।

बर्तानिया की संसद पर मिल्टन यूँ ही नहीं उबल पड़ने का मौका दरअसल बाजार या नई उद्यमिता ने दिया था। मिल्टन कह रहे थे कि जब छापने वाले भी निजी और विचार भी निजी है तो सरकार या संसद हम पर कानून न थोपें। मिल्टन को यह कहने की ताकत 17-18वीं सदी की सबसे दिलचस्प जद्दोजहद ने दी थी। तेजी से उभर रहा यूरोप का निजी प्रकाशन उद्योग लोगों को अपनी बात कहने, छापने, बाँटने की आजादी दे रहा था और इस नई स्वाधीनता से सरकारों के चिरंतन डर की शुरुआत हो रही थी। सरकारें एक उभरते कारोबार पर नियंत्रण लगाना चाहती थीं और मिल्टन जैसे दर्जनों को यही कारोबार एक नई आजादी की सुबह का अहसास करा रहा था।

सरकार को सवालों से झिझोड़ने और विरोध करने की यह आजादी बेहद लोमहर्षक और पेचीदा है। इतिहास की अन्य आजादियों से इसमें बुनियादी तौर पर फर्क है। लोकतंत्र के तहत दूसरे अधिकारों (न्याय, वोट देने, धर्म,

जीविका) आदि की तुलना में बोलने कहने की आजादी किसी संगठित राजनीतिक अभियान से नहीं निकली बल्कि तकनीक, बाजार और उद्यमिता का बेजोड़ तोहफा था। अन्य अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए संविधानों में प्रावधान जोड़े गए और कानून बने लेकिन अभिव्यक्ति की आजादी तो कानून और प्रतिबंधप्रिय सरकारों को उनकी सीमा बताने से संबंधित थी। इसलिए पाने से ज्यादा आंदोलन इसे बचाने के हुए हैं और होते रहेंगे। क्योंकि सरकारें चाहे जिस युग की हों वे कब चाहेंगी कि लोग उनसे सवाल पूछ सकें या उनके खिलाफ आवाज बुलंद कर सकें।

इंटरनेट और उसके अभिव्यक्ति अवतार यानी सोशल नेटवर्क का इतिहास का कई मायनों में प्रिंटिंग प्रेस के इतिहास जैसी दिलचस्प घटनाओं से भरा है। जर्मनी में अपने आविष्कार के बाद करीब दो-तीन सौ साल में प्रिंटिग प्रेस पूरी दुनिया में फैल गया और ज्ञान, विचार व अभिव्यक्ति की आजादी की लहर चल पड़ी।

इस चमत्कारी ज्ञानाश्रित आविष्कार से अरब की दुनिया दूर रही थी। लंबे समय तक मध्य पूर्व के सुल्तानों ने छापेखाने पर पाबंदियाँ लगाकर रखीं। नतीजतन अरब का विज्ञान अंधेरे में खो गया। अलबत्ता इंटरनेट आने पर मध्य पूर्व ने इतनी तेजी से इसे अपनाया कि इसके सहारे इजिप्ट और ट्यूनीशिया में क्रांतियाँ हो गई।

कहने-बोलने की आजादी यानी आजाद मीडिया यूँ ही लोकतंत्र का प्राणतत्व नहीं है। यह एक अनोखे रसायन से बना फार्मूला है जिसमें कारोबार और विचार की आजादी मिलकर लोकतंत्र की बुनियाद बनाते हैं। यही वजह है कि इस आजादी के संस्थागत उपक्रमों (प्रेस, सिनेमा, प्रकाशन) को सरकारी हस्तक्षेप से दूर रखने की कोशिश होती है। चुनावों से भी ज्यादा कीमती मानी जाने वाली इस आजादी का फर्क हमें रूस बनाम अमेरिका की राजनीतिक व्यवस्था में मिलता है। चुनाव दोनों जगह होते हैं लेकिन लोकतंत्र की शक्ति में जमीन-आसमान का फर्क है। यह फर्क विचार रखने और उन्हें फैलने की आजादी देने के जरिये आता है।

मिल्टन के दौर से इंटरनेट के दौर तक अभिव्यक्ति की आजादी और स्वतंत्र उद्यमिता का अनोखा संबंध रहा है। गूगल, फेसबुक या ट्विटर अमेरिका में ही क्यों जन्मे, तकनीक के सूरमा जापान या यूरोप के देशों में क्यों नहीं? बीसवीं सदी के आधे सफर तक दुनिया में लगभग यह तय हो गया था कि जिन देशों में बाजार जितना उदार होगा यानी उद्यमिता जितनी आजाद होगी वहाँ कहने की बोलने की आजादी को नई ताकत मिलती जाएगी।

यही वजह है कि चीन हर तरह की तकनीक के बाद आजाद विचार (प्रेस और सोशल मीडिया) को नहीं आने देता। जब कि भारत को 1991 के आर्थिक संकट से हुए फायदों में सबसे बड़ा लाभ यह था कि इसके साथ भारत में प्रेस और मीडिया के उत्कर्ष का नया दौर शुरू हुआ। 1991 से पहले तक कुछ एक निजी अखबारों और पूरी तरह सरकारी इलेक्ट्रानिक मीडिया में सिमटा, अभिव्यक्ति की आजादी का भारतीय फलक अचानक विस्तृत हो गया।

नए उपभोक्ताओं की खपत पर सवार कंपनियों ने बड़े पैमाने पर उत्पादन और बिक्री शुरू की और उनकी विज्ञापन खर्च की ताकत से देखते-देखते न केवल अक्सर सरकारी विज्ञापनों और चुनिंदा कंपनियों के मोहताज मीडिया उद्योग के रेवेन्यू मॉडल बदल गए बल्कि खबर बाँटने वाली नई खिड़कियाँ खुलती गईं और सूचना सामग्री का सृजन व वितरण बला की तेजी से आधुनिक हो गया। भारत दुनिया के उन अनोखे मीडिया बाजारों में शुमार हो गया जहाँ चारों माध्यम (प्रिंट, टीवी, डिजिटल, सोशल) एक साथ विकसित हुए बल्कि इनका आपसी संयोजन यानी कन्वर्जेंस भी सबसे तेजी से हकीकत में बदला।

20वीं सदी के आखिरी दशक में मुक्त बाजार और लोकतंत्र सबसे सफल जोड़ी में बदल गए। इनका एक अन्योन्याश्रित संबंध स्थापित हो गया जो अभिव्यक्ति की पल-पल बढ़ती आजादी पर टिका था। इस आजादी की जड़ में बढ़ता हुआ प्रसारण (प्रकाशन, टीवी और वेब) उद्योग जो अब बाजार की ताकत यानी विज्ञापन पर चल रहा था और सरकारों से आँख मिलाकर बात कर रहा था।

फिर आई दुनिया में 21वीं सदी की पहली मंदी यानी 2008-09 का दौर और दुनिया के भर के लोकतंत्र दो अभूतपूर्व सवालों में उलझ गए।

1. आर्थिक मंदी से क्या लोकतांत्रिक आजादियों पर खतरा मंडराने लगता है?
2. लोकतंत्र में अभिव्यक्ति की आजादी के लिए मुक्त बाजार को सिकुड़ने से बचाना क्यों जरूरी है?

लोकतंत्र में स्वतंत्रता से जुड़े ये सबसे टटके और नुकीले सवाल हैं। बीते लगभग बीस वर्ष में लोकतंत्र का एक नया अर्थशास्त्र बना है जिसकी मदद से मुक्त बाजार ने आर्थिक स्वाधीनता को सँवार कर, सरकारों को माई-बाप होने से रोक दिया है।

फ्रीडम हाउस (लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं की प्रामाणिकता को आँकने वाली सबसे प्रतिष्ठित संस्था) की रिपोर्ट 'फ्रीडम इन द वर्ल्ड' लोकतंत्र का ख्यात सूचकांक है। 2018 की रिपोर्ट के मुताबिक, लोकतंत्र पिछले कई दशकों के सबसे गहरे संकट से मुकाबिल है। 2107 में 75 लोकतंत्रों (देशों) में राजनैतिक अधिकार, प्रेस की आजादी, अल्पसंख्यकों के हक और कानून का राज कमजोर हुए।

लोकतंत्र की आजादियों में लगातार गिरावट का यह 12वाँ वर्ष है। 'फ्रीडम इन

मिल्टन के दौर से इंटरनेट के दौर तक अभिव्यक्ति की आजादी और स्वतंत्र उद्यमिता का अनोखा संबंध रहा है। गूगल, फेसबुक या ट्विटर अमेरिका में ही क्यों जन्मे, तकनीक के सूरमा जापान या यूरोप के देशों में क्यों नहीं? बीसवीं सदी के आधे सफर तक दुनिया में लगभग यह तय हो गया था कि जिन देशों में बाजार जितना उदार होगा यानी उद्यमिता जितनी आजाद होगी वहाँ कहने की बोलने की आजादी को नई ताकत मिलती जाएगी

द वर्ल्ड' बताती है कि 12 साल में 112 देशों में लोकतंत्र दुर्बल हुआ। तानाशाही वाले देशों की तादाद 43 से बढ़कर 48 हो गई।

लोकतंत्र के बुरे दिनों ने 2008 के बाद से जोर पकड़ा। ठीक इसी साल दुनिया में मंदी शुरू हुई थी जो अब तक जारी है। 1990 के बाद पूरी दुनिया में लोकतंत्रों की सूरत और सीरत बेहतर हुई थी। अचरज नहीं कि ठीक इसी समय दुनिया के कई देशों में आर्थिक उदारीकरण प्रारंभ हुआ था और ग्लोबल विकास को पंख लग गए थे। यानी कि तेज आर्थिक विकास की छाया में स्वाधीनताएं खूब फली-फूलीं।

ताजा अनुभव बताते हैं कि जो देश मंदी से बुरी तरह घिरे रहे हैं, वहाँ लोकतंत्र की ताकत घटी है। 'फ्रीडम इन द वर्ल्ड' ने 2013 में ही बताया था कि ग्लोबल मंदी के बाद यूरोपीय देशों में प्रेस की स्वाधीनता कमजोर पड़ी। खासतौर पर यूरोपीय समुदाय के मुल्कों में, जिनका रिकॉर्ड प्रेस की आजादी के मामले में बेजोड़ रहा है।

आर्थिक उदारीकरण, तेज ग्रोथ और लोकतंत्र के रिश्ता काफी संवेदनशील है। लोकतंत्र के तमाम अधिकारों में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता अपनी तरह का इकलौता अधिकार है जिसे अनिवार्य तौर पर अर्थव्यवस्था में तेज विकास और उदार बाजार चाहिए। यदि आर्थकि विकास तेज है, विज्ञापनों का बाजार गुलजार है, लोगों के पास खर्च करने की क्षमता है और बाजार में पर्याप्त प्रतिस्पर्धा है तो एक ताकतवर प्रेस या मीडिया अपने पैरों पर खड़ा होकर सरकार को सवालों में घेर सकता है। इसके विपरीत जैसे ही मंदी बाजार को सिकोड़ती है और निजी उद्यमिता को सीमित करती है, सरकारों को ताकत बढ़ाने के मौके मिल जाते हैं।

मंदी आते ही उपभोक्ता उन सारे उत्पादों और सेवाओं पर खर्च सीमित कर देते हैं जिन्हें बेचने के लिए कंपनियाँ विज्ञापनों का सहारा लेती हैं। भारत में कारें एवं वाहन, रियल इस्टेट, मनोरंजन, इलेक्ट्रॉनिक्स, ब्रांडेड उपभोक्ता उत्पाद, सौंदर्य प्रसाधन, मोबाइल सर्विस आदि सबसे अधिक विज्ञापन करते हैं। यह उद्योग ही तेजी से फले-फूले क्योंकि लोगों में बेहतर जिंदगी के लिए इन्हें खरीदने और अपनाने की इच्छा थी।

आम तौर पर यह सभी उत्पाद व सेवाएँ आवश्यक आवश्यकताओं वाली खरीद की फेहरिस्त में नहीं हैं, यानी रोटी-कपड़े के जुगाड़ के बाद ही लोग इन पर खर्च के बारे में सोचते हैं। इसलिए इनके विज्ञापन पर भारी खर्च होता है। मंदी उपभोक्ताओं के बीच एक 'कूकूनिंग' बढ़ाती है यानी लोग अपना खर्च सिकोड़ कर आवश्यक वस्तुओं तक सीमित कर लेते हैं और बेहतर जिंदगी वाली चीजों की माँग रुक जाती है।

बीते तीन चार साल में आटोमोबाइल, इलेक्ट्रॉनिक्स, मकान, लक्जरी सामान आदि उद्योगों की घटती माँग और खपत गिरावट का असर इनके विज्ञापन खर्च में कमी से भी मापा जा सकता है। ठीक इसी अनुपात में समाचार उद्यमों की बैलेंस शीट भी घायल हुई, आय घटी और विस्तार व आधुनिकीकरण प्रभावित हुआ।

विज्ञापनों की दुनिया से जुड़े एक पुराने मित्र किस्सा सुनाते थे कि 2001 से 2005 के दौरान अखबारों और टीवी के पास सस्ते सरकारी विज्ञापनों के लिए जगह नहीं होती थी। बाजार से मिल रहे विज्ञापन सरकारों के लिए जगह ही नहीं छोड़ते थे।

अलबत्ता मंदी के बाद यह संतुलन बदल गया। निजी विज्ञापन घटने के बीच भारत में प्रचार बहादुर सरकारों का उदय हुआ, जिन्होंने अपने बड़े बजट विज्ञापनों के लिए निर्धारित किए और मीडिया कंपनियों के राजस्व का एक बहुत बड़ा हिस्सा करदाता के पैसे से होने वाले सरकारी प्रचार खर्च पर निर्भर हो गया।

यह समाचार और सूचना के खालिस निजी कारोबार का परोक्ष सरकारीकरण है जो कि मंदी से उपजा था। इस बदलाव ने आजादी के बुनियादी संतुलन को हिला दिया था। एक स्वाधीनता जो पूरी तरह निजी बाजार से पोषित थी और जो सरकारों को सवालों और आलोचना के आइने में उतारा करती थी, व्यापारिक कारणों से उसकी बागडोर परोक्ष रुप से सरकार के हाथ में पहुँच गई, जो अब इन माध्यमों के कथ्य को नियंत्रित कर सकती है और कर ही रही है।

कोविड के साथ ही महामंदी आ गई। जिसने भारतीय बाजार में मीडिया कंपनियों के राजस्व को ध्वस्त करते हुए पूरी कारोबारी मॉडल की निर्भरता सरकारी विज्ञापनों पर कई गुना बढ़ा दी है।

कोविड से निकलने की कोशिश करती हुई दुनिया अभिव्यक्ति की आजादी को लेकर एक पेचीदा रास्ते पर बढ़ चली है। एडेलमैन का ग्लोबल ट्रस्ट बैरोमीटर या फ्रीडम हाउस की ताजा रिपोर्ट जैसे प्रतिष्ठित सूचकांक मीडिया में विश्वास कम होने की सूचना देते हैं लेकिन यह पैमाइश इतनी भी दो टूक नहीं है। क्योंकि अभिव्यक्ति की स्वाधीनता के नापने के पुराने फार्मूले बदल रहे हैं या कि एक नई जद्दोजहद उभर रही है।

सरकारों ने मंदी की मदद से और कानूनों की ताकत से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के पुराने ढाँचे (मीडिया कंपनियों और स्वयंसेवी संस्थाओं) पर बहुत कुछ नियंत्रण बना लिया है लेकिन इसके बावजूद नए माहौल में सरकारें पहले से ज्यादा बेचौन और परेशान नजर आती हैं।

इस वक्त जब अभिव्यक्ति की आजादी, तकनीकी तौर पर सबसे समृद्ध दौर में है, जहाँ सत्ता और सड़क के बीच दोतरफा संवाद का सदियों का पुराना सपना पूरा हो रहा है तब सरकारें सोशल नेटवर्कों पर निजी वक्तव्यों से काँप-काँप जा रही हैं।

भारत जैसे बहुत से देशों के दकियानूसी नेतृत्व और अफसर ग्लोबल डेमोक्रेसी के नए स्वरुप से डर रहे हैं। प्रसारण के चैनलों का विस्तार यूनिवर्सल हो चुका है

निजी विज्ञापन घटने के बीच भारत में प्रचार बहादुर सरकारों का उदय हुआ, जिन्होंने अपने बड़े बजट विज्ञापनों के लिए निर्धारित किए और मीडिया कंपनियों के राजस्व का एक बहुत बड़ा हिस्सा करदाता के पैसे से होने वाले सरकारी प्रचार खर्च पर निर्भर हो गया

जो किसी एक देश के कानून से बँध नहीं सकता और पूरी दुनिया को इस पर सहमत कराना जरा मुश्किल है।

वो लिखो बस जो भी अमीरे शहर कहे
जो कहते हैं दर्द के मारे मत लिखो
(अहमद फराज)

एक विभाजित समाज हमारी उघड़ी हुई सचाई है और उतना ही बड़ा सच है कि पूरी दुनिया लंबी मंदी और आर्थिक असमानता जैसी बड़ी चुनौतियों की चपेट में हैं। मंदी दूर होने तक दुनिया के मीडिया कारोबार के मौजूदा मॉडल में तीन बड़े बदलाव संभावित हैं।

पहला- लोकतंत्र के तकाजे चाहे जो हों लेकिन सरकारी पोषण पर चलने वाला निजी मीडिया कई लोकतंत्रों में वास्तविकता बन जाएगा। यानी कि अगर हम चीन या रूस की सरकारी एजेंसी को कोसते हैं तो इसी तरह के कई उदाहरण उन लोकतंत्रों में भी तैयार हो रहे हैं जहाँ सिद्धांतत: मीडिया पूरी तरह निजी उपक्रम है।

दूसरा- सरकारें अलग-अलग कानूनों (सूचना तकनीक से लेकर राष्ट्रद्रोह) के जरिये केवल पंजीकृत मीडिया माध्यमों को ही नहीं बल्कि स्वतंत्र पत्रकारिता को भी प्रतिबंधित करेंगी और इसके साथ सरकार बनाम सोशल मीडिया प्लैटफॉर्म की नई जंग शुरू होगी।

तीसरा- इस जंग के साथ अभिव्यक्ति की आजादी की लड़ाई अंतरराष्ट्रीय बन जाएगी। यानी अब किसी देश में स्वतंत्रता की फिक्र उस राष्ट्र की सीमाओं तक सीमित नहीं रहेगी।

सनद रहे कि मीडिया के कारोबार की सरकार पर न्यूनतम निर्भरता और पारदर्शी लाभप्रदता ही वह बुनियादी शर्त है जिस पर बोलने, कहने, सवाल उठाने आलोचना करने की आजादी टिकी है और हमारी उम्मीद भी इसी तथ्य पर टिकी है कि लंबी मंदी सरकारों को बुरी तरह अलोकप्रिय बनाती है, आर्थिक संकट बड़े-बडे नेताओं को इतिहास बना देता है। इसलिए मंदी दूर करना मजबूरी है यानी कि जैसे ही बाजार और आर्थिक विकास अपनी ताकत पर वापस लौटा, लोकतंत्र को उसकी ऊर्जा मिल जाएगी और शायद हमें एक नया आजाद और पहले से ज्यादा वैश्विक संपर्क वाला मीडिया मिले जिसकी चिंताएँ और संघर्ष साझा होंगे

महामंदी और महामारियाँ दुनिया के कई कारोबारों को उलट-पुलट देती हैं। अगर ताकतवर सरकारों की टोपी सर पर रखकर सोचें तो मंदी इतनी बुरी नहीं है। वह उनके नेताओं को मसीहा बनने का मौका देती है। सरकारें विज्ञापन बाजार को नियंत्रति कर घाटे से हलाकान मीडिया कंपनियों को अपनी ताल पर कत्थक करा सकती हैं।

सनद रहे कि मीडिया के कारोबार की सरकार पर न्यूनतम निर्भरता और पारदर्शी लाभप्रदता ही वह बुनियादी शर्त है जिस पर बोलने, कहने, सवाल उठाने आलोचना करने की आजादी टिकी है और हमारी उम्मीद भी इसी तथ्य पर टिकी है कि लंबी मंदी सरकारों को बुरी तरह अलोकप्रिय बनाती है, आर्थिक संकट बड़े-बडे नेताओं को इतिहास बना देता है। इसलिए मंदी दूर करना मजबूरी है यानी कि जैसे ही बाजार और आर्थिक विकास अपनी ताकत पर वापस लौटा, लोकतंत्र को उसकी ऊर्जा मिल जाएगी और शायद हमें एक नया आजाद और पहले से ज्यादा वैश्विक संपर्क वाला मीडिया मिले जिसकी चिंताएँ और संघर्ष साझा होंगे। अलबत्ता जब तक मंदी नहीं जाती और विज्ञापनों का बाजार सामान्य नहीं होता, तब तक सरकारें उस स्वाधीनता को सीमित करने की पूरी कोशिश करेंगी। क्या अचरज कि जॉन मिल्टन जो इस आजादी के संसद से भिड़ गए थे वह कवि बनने से पहले विचारों की आजादी, चर्च में सुधारों और गणतंत्र के उस मुहिम में लगे थे जो कालांतर में उभरे आधुनिक लोकतंत्र की पूर्वपीठिका थी।

फिर इस मजाक को जम्हूरियत का नाम दिया
हमें डराने लगे वो हमारी ताक़त से
(नोमान शौक)

संपादन के विद्यापीठ की आवश्यकता

-पं. माखनलाल चतुर्वेदी

'हिंदी समाचार पत्रों में कार्यालय में योग्य व्यक्तियों के प्रवेश कराने के लिए, एक पाठशाला आजकल के नए नामों की बाढ़ में से कोई शब्द चुनिए तो कहिए कि एक संपादन कला के विद्यापीठ की आवश्यक्ता है। ऐसी विद्यापीठ किसी योग्य स्थान पर बुद्धिमान, परिश्रमी, अनुभवी, संपादक-शिक्षकों द्वारा संचालित होना चाहिए। उक्त पीठ में अन्यान्य विषयों का एक प्रकांड ग्रंथ संग्रहालय होना चाहिए।'

भरतपुर (राजस्थान) में सन 1927 में हुए एक संपादक सम्मेलन में।

डॉ. संतोष कुमार तिवारी

अध्यात्म में पाठकों की बढ़ती रुचि

भारत में किसी आमूलचूल परिवर्तन का मूलभूत आधार हमेशा अध्यात्म रहा है। आज की पत्रकारिता में अध्यात्म के लिए कितना स्थान है और अध्यात्म एवं संप्रदायों से जुड़े संगठन अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए पत्रकारिता को किस तरह माध्यम बना रहे हैं, यह देखना दिलचस्प है

इस शोधपत्र के दो भाग हैं। पहले भाग में पाठकों का ध्यान इस ओर इंगित किया गया है कि हिंदी और अंग्रेजी के बड़े दैनिक अखबारों में अध्यात्म सम्बन्धी सामग्री को अब अधिक स्थान मिल रहा है। दूसरा भाग देश की आध्यात्मिक और धार्मिक पत्रिकाओं की संख्या विशेष पर एक विहंगम दृष्टि डालता है।

भाग एक

पिछले पच्चीस-तीस वर्षों में पत्रकारिता में कई परिवर्तन हुए हैं। जैसे कि पहले व्यापार समाचारों को बहुत अधिक प्राथमिकता नहीं दी जाती थी। लेकिन अब सेंसेक्स के ऊपर-नीचे होने की खबर दैनिक समाचारों का एक स्थायी अंग बन गई है। पहले अखबारों में खेल समाचार भी इतने अधिक नहीं होते थे जितने आज हैं। इसी प्रकार अध्यात्म, धर्म या सकारात्मक चिंतन से सम्बन्धित स्तम्भ या पूरे पृष्ठ अब अधिकतर दैनिक अखबारों का एक अभिन्न अंग बन गए हैं।

तमाम आध्यात्मिक चौनल भी तेजी से बढ़ रहे हैं। जैसे कि आस्था, संस्कार, साधना, गाड टीवी, आदि। इनमें से कुछ की भजन-कीर्तन आदि की अलग शाखाएँ भी हैं।

ऐसा क्यों हो रहा है? शायद इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि दैनिक जीवन में नैतिक मूल्यों का तेजी से ह्रास हुआ है। परिवार टूट रहे हैं। सब जगह पैसे के लिए मारामारी है। अखबार और समाचारों के टीवी चौनल नकारात्मक खबरों से भरे हुए हैं। अधिकतर जगह झूठ का बोलबाला है। ऐसे में लोगों को शांति की तलाश है। घने अन्धकार में उजाले की तलाश है।

पहले भी अध्यात्म और धर्म से सम्बन्धित सामग्री अखबारों में होती थी, परन्तु हाल के वर्षों में यह सामग्री बढ़ी है। घोर वामपन्थी अंग्रेजी दैनिक द *हिन्दू* में भी फेथ अर्थात आस्था शीर्षक से एक कालम लगभग प्रतिदिन प्रकाशित होता है। अंग्रेजी दैनिक द *टाइम्स ऑफ इण्डिया* में वर्ष 1995 से सम्पादकीय पृष्ठ पर 'द स्पीकिंग ट्री' शीर्षक से एक कलाम रोज प्रकाशित हो रहा है। पिछले कई वर्षों से *टाइम्स ऑफ इण्डिया* देश का सबसे अधिक पढ़ा जाने वाला अंग्रेजी अखबार है। हिंदी दैनिक *हिन्दुस्तान* धर्म पर पूरा एक पृष्ठ हर सप्ताह प्रकाशित करता है। *टाइम्स ऑफ इण्डिया* के सहयोगी हिंदी अखबार *नवभारत टाइम्स* में भी 'द स्पीकिंग ट्री' शीर्षक से एक स्तम्भ नियमित प्रकाशित होता है। इसकी विषयवस्तु *टाइम्स आफ इंडिया* के स्तंभ से अलग होती है। *दैनिक जागरण* में भी सम्पादकीय पृष्ठ पर लगभग प्रतिदिन ऊर्जा शीर्षक से एक स्तम्भ प्रकाशित होता है। इसी तरह से *अमर उजाला* में एक दैनिक स्तम्भ छपता है - अन्तर्यात्रा। दैनिक *हिन्दुस्तान* में भी अध्यात्म और धर्म पर नियमित तौर से सामग्री छापी जाती है। यहाँ इस तथ्य की ओर भी ध्यान दिलाना आवश्यक है कि हिंदी अखबारों की पाठक संख्या अंग्रेजी अखबारों से कई गुना अधिक है। कहने का मतलब यह है कि एक बड़ा पाठक वर्ग है जो अध्यात्म में रुचि रखता है।

तमिलनाडु में एक प्रतिष्ठित तमिल दैनिक *दिनमालार* नियमित रूप से किसी न किसी मन्दिर के बारे में लेख छापता है।

टाइम्स ऑफ इण्डिया के स्तम्भ 'द स्पीकिंग ट्री' की लोकप्रियता का यह हाल है कि इसमें प्रकाशित चुनी हुई सामग्री अब तक कई खण्डों में पुस्तक रूप में भी प्रकाशित हो चुकी है। पुस्तक नाम है 'द बेस्ट आफ स्पीकिंग ट्री'। इसका बारहवाँ खण्ड वर्ष 2019 में प्रकाशित हुआ था। इसकी लोकप्रियता का एक कारण यह भी है कि यह विभिन्न धर्मों और सभी प्रकार

के आध्यात्मिक दृष्टिकोण को स्थान मिलता है और इसकी भाषा बहुत सरल होती है। *टाइम्स ऑफ इण्डिया* के स्तम्भ में लेखक का नाम भी छापा जाता है, जबकि द *हिन्दू* अखबार के स्तम्भ 'फेथ' में लेखक का नाम नहीं दिया जाता है।

टाइम्स ऑफ इण्डिया के कालम 'द स्पीकिंग ट्री' में किस प्रकार की विविध सामग्री छपती है उसका थोड़ा सा विवरण ऊपर्युक्त पुस्तक के खण्ड दो और चार से लिए गए शीर्षकों के माध्यम से यहाँ दिया जा रहा है।

द बेस्ट ऑफ स्पीकिंग ट्री (खंड 2) (2004 में पहली बार प्रकाशित; पाँचवाँ पुनर्मुद्रण 2008)

1. "मोटर योर माइंड टुवर्ड्स गॉडहेड"; लेखक अल्फ्रेड फोर्ड (इस्कॉन के सदस्य और हेनरी फोर्ड के पड़पोते। उन्होंने कोलकाता में सुजॉय बसु से बातचीत की; पृष्ठ 9-10)
2. "जर्नलिस्ट्स नीड अ लविंग डिटैचमेंट"; विवेक सिंह, पृष्ठ 33-34
3. सर्फिंग द ओशन ऑफ म्यूजिक; बिंदु चावला, पृष्ठ 45-46
4. डबल सेलिब्रेशन : शंकर - रामानुज; प्रणव खुल्लर पृष्ठ 49-50
5. "लीव बिहाइंड दोज साइकॉलॉजिकल शूज"; स्वामी सुखबोधानंद, पृष्ठ 55-56
6. "रिलिजन इस अ बॉण्ड बिटवीन मैन एंड नेचर"; माता अमृतानंदमयी, पृष्ठ 57-58
7. "स्पिरिट ऑफ डायलॉग मस्ट फॉर पीस"; डायसाकू इकेडा, पृष्ठ 63-64
8. "नटराज्स डान्स: साइंस एण्ड इंट्यूशन"; मृणालिनी साराभाई, पृष्ठ 73-74
9. फिजिक्स एंड वेदांत: सो मच इन कॉमन"; मणि भौमिक, पृष्ठ 85-86
10. "नीदर अ चार्जशीट नॉर अ शॉपिंग लिस्ट"; स्वामी स्वरूपानंद (लेखक ऑस्ट्रेलिया, न्यू जीलैंड और सुदूर पूर्व में चिन्मय मिशन की गतिविधियों की देखरेख करते हैं), पृष्ठ 99-100
11. "टेंपल्स ऐस प्लेसस ऑफ डीप इनसाइट"; दिनेसन नम्बूदिरिपाद (लेखक गुरुवायूर स्थित श्रीकृष्ण मंदिर के प्रधान पुजारी हैं); पृष्ठ 107-108

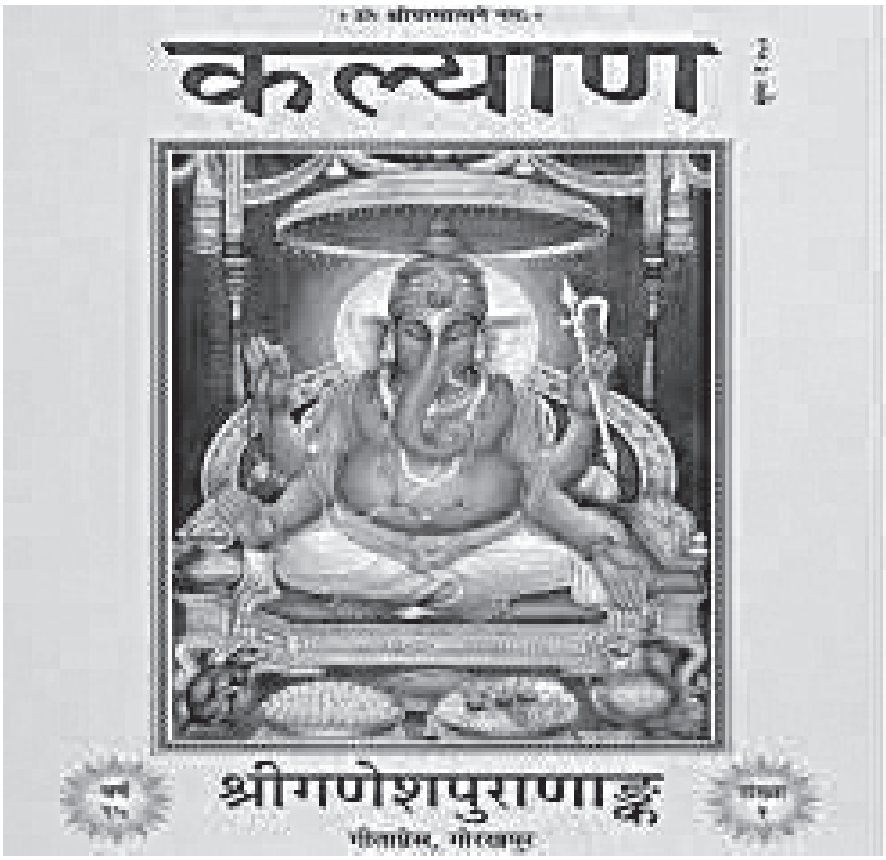

12. "म्यूजिक विथ मंत्राज : अ डिवाइन एक्सपीरियंस"; स्वामी सुखबोधानंद, पृष्ठ 111-112
13. "अवतार्स हेल्प बॉण्ड विथ द डिवाइन"; श्री श्री रविशंकर; पृष्ठ 137-138
14. "इन सर्च ऑफ रियल मी"; स्वामी चिदानंद (लेखक ऋषिकेश स्थित डिवाइन लाइफ सोसायटी के अध्यक्ष हैं), पृष्ठ 147-148

द बेस्ट ऑफ स्पीकिंग ट्री (खण्ड 4) (2007 में पहली बार प्रकाशित)

1. "सेलिब्रेटिंग रेवेलेशंस ऑफ द होली कुरान"; मौलाना वहीदुद्दीन खान, पृष्ठ 15-16
2. "क्लाइंब टु हेवन इन द गार्डन ऑफ ईडन"; नारायणी घोष, पृष्ठ 27-28
3. "वाय डू वी सेलेब्रेट द बर्थडे ऑफ राम?"; श्री सत्या साई बाबा, पृष्ठ 29-30
4. "सेलिब्रेटिंग लाइफ : फीस्ट ऑफ पासोवर"; एजेकियल आइसैक मालेकर, पृष्ठ 29-30
5. "अ ग्लोइंग ट्रिब्यूट टु द टेंथ गुरु"; पटवंत सिंह, पृष्ठ 67-68
6. "वेन चौप्लिन गॉट कन्विंस्ड ऑफ गांधीज फिलॉसॉफी"; अमृत गांगर, पृष्ठ 71-72
7. म्यूसिक डिसॉल्व्ज ऑल डिवीजंस"; लामा डोबूम टूलकू (सुधामही रघुनाथन से हुई बातचीत पर आधारित), पृष्ठ 87-88
8. "द काइंड्ली स्ट्रेंजर टु योर रेस्क्यू"; जैन मॉरिस, पृष्ठ 119-120
9. "गेटिंग कनेक्टेड विथ कपैशन"; अनीस जंग, पृष्ठ 129-130
10. "पास एराउंड अ प्रेशियस गिफ्ट दिस सीजन"; जेनाइना गोम्स, पृष्ठ 131-132
11. "सिग्निफिकेंस ऑफ गिविंग हार्टफेल्ट थैंक्स"; मुहम्मद इजहाक खान, पृष्ठ 137-138
12. "गिव थैंक्स : इट्स पार्ट ऑफ स्पिरिचुअल इवॉल्वमेंट"; संत राजिंदर सिंह के प्रवचन, पृष्ठ 139-140
13. "अ फिजिसिस्ट्स फेथ इन साइंस एंड

गॉड"; चार्ल्स एच. टवंस (लेखक एक नोबल पुरस्कार विजेता हैं। उन्होंने मेसर किरण का आविष्कार किया और लेसर किरण के अ:-आविष्कर्ता हैं। यह नारायणी घोष से उनकी बातचीत पर आधारित है।), पृष्ठ 167-168

14. "डिसपैशनेट व्यू ऑफ द लॉ ऑफ कर्म"; ओशो के प्रवचन, 187-188
15. " वननेस एंड वेलनेस दि एनर्जेटिक वे"; सद्गुरु जग्गी वासुदेव के प्रवचन, पृष्ठ 189-190

समाचार पत्र 'द *हिंदू*' के 'फेथ' स्तंभ को लेकर जानकारी प्राप्त करने के लिए मैंने उनके संपादक को 19 फरवरी 2021 को निम्नलिखित पत्र लिखा -

"मैं एक सेवानिवृत्त प्राध्यापक हूँ। मैं भारत में आध्यात्मिक पत्रकारिता पर एक लेख लिख रहा हूँ और इसलिए आपके 'फेथ' नाम के स्तंभ पर कुछ जानकारी चाहता हूँ। कृपया मेरे निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिएगा -

यह स्तंभ कब शुरू हुआ?
क्या पहले इस स्तंभ का नाम 'रेलिजन' था?

इस स्तंभ में क्या आप हिंदू धर्म के अलावा अन्य पंथों को लेकर भी सामग्री प्रकाशित करते हैं? यदि हाँ, तो कृपया मुझे कुछ उदाहरण प्रेषित कीजिए।

समाचार पत्र ने तुरंत जवाब दिया, जो निम्नलिखित है -

"महोदय",

'द *हिन्दू*' में आपकी रुचि हेतु धन्यवाद। आपके द्वारे माँगी गई जानकारी को जारी करने का पुरालेखीय शुल्क रु. 2,360 (रु. 2,000 और 18 प्रतिशत जी.एस.टी.) है। ऑनलाइन भुगतान के लिए हमारे बैंक खाते की जानकारी संलग्न है। बैंक कार्रवाई की आई.डी. भी हमें उपलब्ध कराएँ ताकि हम अपनी ओर से भी उसका पता लगा सकें। भुगतान के सात दिनों के अंदर आपको इच्छित जानकारी प्राप्त होगी।

भवदीय

टीम आर्काइव्स

वित्तीय सीमाओं के चलते 'द *हिंदू*' से कोई जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी।

फिर भी, यह माना जाता है कि भारत में सभी अंग्रेजी दैनिकों में 'द *हिंदू*' का इस प्रकार का अखबारी स्तंभ सबसे पुराना है।

साथ ही, इस अखबार की वेबसाइट www.thehindu.com › पिजी ने मार्च 2 को देखे जाने पर बताया कि द हिंदू का स्तंभ 'फेथ' धर्म, हिंदू परंपरा, धार्मिक ग्रंथों आदि पर है। उसकी सामग्री भगवद्गीता, महाभारत, रामायण आदि पर आधारित है।

टाइम्स ऑफ इंडिया के "स्पीकिंग ट्री" और द हिंदू के "फेथ" स्तंभों में मुख्य अंतर यह है कि पहले में लेखक का नाम दिया जाता है जबकि दूसरे में नहीं।

चाहे *टाइम्स ऑफ इंडिया* का 'द स्पीकिंग ट्री' कालम हो या किसी अन्य अखबार का आध्यात्मिक स्तम्भ हो, इनकी विशेषता और खूबसूरती यही होती है कि इन्हें कभी भी या कहीं भी पढ़ा जाए, तो ये पाठक को शांति प्रदान करते हैं। ये स्तंभ अंधकार में भटके हुए लोगों को राह दिखाते हैं।

भाग दो

इस भाग में भारत के विभिन्न क्षेत्रों में प्रकाशित कुछ पत्रिकाओं की सूची प्रदान की गई है। शुरू में यह स्पष्ट करना जरूरी है कि यह सूची परिपूर्ण नहीं है। साथ ही, इसमें दी गई अधिकांश जानकारी इंटरनेट पर आधारित है।

हिंदू धर्म

रामकृष्ण मिशन

'प्रबुद्ध भारत' भारत में हिंदू धर्म पर शायद सबसे पुराना अंग्रेजी मासिक है।

रामकृष्ण मिशन की वेबसाइट https://en.wikipedia.org/wiki/List_of_magazines_by_Ramakrishna_Mission को 2 मार्च, 2021 को उनकी पत्रिकाओं की जानकारी लेने के लिए देखा गया। यह संस्थान आध्यात्मिकता, वेदांत, धार्मिक अध्ययन और सेवा गतिविधियों पर अधिक केंद्रित है। उसकी पत्रिकाएँ निम्नलिखित हैं-

पत्रिकाएँ					
	नाम	**प्रकाशन का वर्ष**	**भाषा**	**अवधि**	**केन्द्र**
1	प्रबुद्ध भारत	124वां	अंग्रेजी	मासिक	अद्वैत आश्रम, मायावती
2	उद्बोधन	120वां	बांग्ला	मासिक	बागबाजार, कोलकाता
3	द वेदांत केसरी	107वां	अंग्रेजी	मासिक	मैलापुर, चेन्नई
4	श्री रामकृष्ण विजयम्	99वां	तमिल	मासिक	मैलापुर, चेन्नई
5	विवेक ज्योति	56वां	हिंदी	मासिक	रायपुर, छत्तीसगढ़

गीता प्रेस

गीता प्रेस, गोरखपुर ने अपने मासिक *कल्याण* का प्रकाशन अगस्त 1926 में किया। आज यह भारत में अभी तक चल रही सबसे पुरानी हिंदी धार्मिक पत्रिका है। आगे चलकर 1934 में गीता प्रेस ने एक अंग्रेजी मासिक '*कल्याण कल्पतरु*' के प्रकाशन का आरंभ किया। कल्याण संभवत: भारत की एकमात्र पत्रिका है जो अपने प्रत्येक अंक में उसकी मुद्रित प्रतियों की संख्या प्रकाशित करती है। उसकी वर्तमान मुद्रित प्रतियों की संख्या 2,00,000 है।

गायत्री परिवार

गायत्री परिवार की 'अखंड ज्योति' हिंदी, अंग्रेजी और कुछ अन्य भारतीय भाषाओं में प्रकाशित मासिक पत्रिका है। हालाँकि इसके प्रकाशन का आरंभ 1938 में आगरा से हुआ। इसका औपचारिक प्रकाशन जनवरी 1940 में शुरू हुआ। 1941 से यह पत्रिका मथुरा से प्रकाशित होती रही है।

अमृतानंदमयी मठ

2 मार्च 2021 को देखे गए वेबसाइट https://matruvani.org/ के अनुसार, अमृतानंदमयी मठ एक मासिक पत्रिका मातृवाणी प्रकाशित करती है। इसका अर्थ है माता की वाणी। *मातृवाणी* नौ भारतीय भाषाओं और आठ विदेशी भाषाओं में प्रकाशित की जा रही है। नौ भारतीय भाषाएँ

हैं मलयालम, तमिल, कन्नड़, तेलुगु, हिंदी, मराठी, गुजराती, उड़िया और बांग्ला। आठ विदेशी भाषाएँ हैं अंग्रेजी, जर्मन, फ्रांसीसी, इटालियन, स्पैनिश, फिन्निश, जापानी और ग्रीक।

द डिवाइन लाइफ सोसायटी

2 मार्च, 2021 को देखी गई वेबसाइट https://www.sivanandaonline.org/public_html/?cmd=displayrightsection&section_id=1709 के अनुसार 1936 में स्वामी शिवानंद जी महाराज द्वारा स्थापित द डिवाइन लाइफ सोसायटी अंग्रेजी में 'डिवाइन लाइफ' और हिंदी में 'दिव्य जीवन' नाम की दो मासिक पत्रिकाओं का प्रकाशन करती है।

श्री रमणआश्रमम

2 मार्च, 2021 को देखी गई वेबसाइट https://en.wikipedia.org/wiki/Mountain_Path के अनुसार द माउंटेन पाथ श्री रमणआश्रमम द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी भाषा की एक त्रैमासिक पत्रिका है। यह आश्रम श्री रमण महर्षि के भक्तों द्वारा स्थापित की गई।

ईसाई पत्रिकाएँ

18 फरवरी, 2021 को देखी गई वेबसाइट http://www.churchesinindia.com/publication.html के अनुसार भारत के विभिन्न प्रदेशों में लगभग तीन सौ ईसाई पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं। यह वेबसाइट दो दशकों से अधिक पुरानी जान पड़ती है, क्योंकि झारखंड के कुछ शहरों को अभी भी बिहार के हिस्से के रूप में दिखाया गया है। झारखंड को 2000 में बिहार से पृथक कर एक अलग प्रदेश बनाया गया था। वेबसाइट में दी गई ईसाई पत्रिकाओं की सूची निम्नलिखित है -

आंध्र प्रदेश

अरुणोदय, युवता स्फूर्ति, बाइबिल भाष्यम, चौतन्यवाणी, इन विनकुलो क्रिस्टी, प्रेम सेवा, भारतमित्रम, कैथलिक वाणी, डॉन बॉस्को, सलेसियन बुलेटिन, नेने वेलुगु, सांघिक आराधना।

बिहार

आवे, इन क्रिस्टो, कैटिक प्रेरित्को, मास मीडिया, निष्कलंक, सेवार्थम, ग्राम गुरु, जेसु जाहिर दूधानी, मरसालतबों, राही, युग चेतना, गुरुकुल गीतम।

गुजरात

दूत, मिशन इंडिया, स्पॉटलाइट, थर्ड मिलेनियम इंडियन।

गोआ

आमचो सेवाधोर्म, डेली फ्लैश, पैगो पेट्रियार्कल, रेनोवकाओ, वॉम्पश्पी, बी.आई. जोसफ वास, डोर म्होइनेयची रोट्टी, रेस, सवेरा (अंग्रेजी और कोंकणी में), युवायन।

हरियाणा

चैनल निस्कॉर्ट

केरल

ऐक्यदीपम, अम्मा, एपॉस्टॉलीक प्रबोधनम, बाइबिल भाष्यम, अमलोलभाव, अपना देस, असीसी मन्थली, बोके, कार्मेल, क्रिस ज्योति, चौरिटी ब्लॉसम्स, चेरुपुष्पम, चेरुसूनम, क्रैस्टव कहलम, क्रिस्टीन, क्रिश्चियन ओरियण्ट, दीपानलम वीकली, दैवराज्यम, डिवाइन वॉइस, दिव्यकारुण्य कहलम, दुखहरण, गिरिदीपम, गुड न्यूस, हेरल्ड ऑफ द ईस्ट, जीव वचनम, जीवधारा (अंग्रेजी), जीवज्वाला, जीवधारा (मलयालम), जीवज्योति, जीवनम वेलिचवुम, जीवरक्षा,

कलरी, करमलकुसुमम, कथिरोली, क्रिस्टव कहलम, कुटुम्ब दीपम, कुडुम्नजोतिस, कुंजुमिशनरी मन्थली, लाइट एण्ड लाइफ, लाइट ऑफ कोचिन, लिटल लिबरेटर, मध्यस्थन, मलंकर बालन, मंगलवार्ता, मेरी विजयम, माता दर्शनम, मातवुम चिन्तयुम, मिशन दर्शनम, ओजनम, पैशन फ्लवर (अंग्रेजी), प्रतिभा, प्रतिष्ठा केरलम, पुलारी, सेक्रेड हार्ट मन्थली, सन्देशम, सन्तोमे मिशन, सान्तवना प्रकाशम, शास्त्रपदम, सत्यदीपम, शलोम, स्नेह सेना, स्नेहवाणी, सण्डे शलोम, सुवर, टैलेण्ट, टेम्पेस्ट, तमर मोट्टुकल, तनिमा, द ऐनिमेटर, द लिटल लिबरेटर, द लिविंग वर्ल्ड, तिरुहृदयदूतन, उशुस, वचन धारा, वचनदीपम, वचनदीप्ति, वचनम बिलीविदियिल, वचनोत्सवम (मासिक), येशुमार्गम।

अन्य चर्च

अगेप वॉइस, आत्म प्रकाशीनी, आत्मीय यात्रा, आत्मदीपम (मासिक), बेथेल पत्रिका, क्रिस्टव दीपिका, दूतन, ईवनिंग लाइट, एक्सेलसियर, हरमॉन सन्देशम, जीव वचनम, ज्ञान निक्षेपम, कहलम, ज्ञान दीपम, एम.ओ.सी. पब्लिकेशन्स, मलंकर सभा दीपम, मलंकर सभा तारक, मलंकर सभा, मलंकर सिरियन ऑर्थडॉक्स यूथ, मार्तोमा सभा बुक डिपार्टमेण्ट, मरुभूमियिले दैव शबदम, मुन्नेट्टम, ज्ञाननिक्षेपम, ओ.सी.वाई.एम. न्यूस बुलेटिन, ऑर्थडॉक्स यूथ मैगजीन, ऑर्थडॉक्स यूथ, पदन सहाय, पेण्टेकोस्टिन सन्देशम, पौरस्तीय तारम, पौरस्त्य सुविशेषकन,

पुरोहितन, रिप्पल्स, सभा चन्द्रिका, समर्पिता, सन्दर्शिनी, सन्देशम, सत्य विश्वास दीप्ति, स्नेहलोकम, स्पिरिचुअल इण्डिया पब्लिकेशन, सुविशेष दूतन, टैबोर वॉइस, तलिरुकल, द कैथलीक लाइफ, द रेनबो, उदय नक्षत्रम, उत्तर केरल सभा मित्रम, वचनधोरणी, वनिता बोधिनी, वेद कहलोम, वेदनादम, विजन पब्लिकेशन्स, विजन, वॉइस ऑफ ऐक्शन, युवा दीपम।

कर्नाटक

विकास वाणी, आमची माई मरियन, अंगे वोकेशन्स मन्थली, बाल स्फूर्ति, क्रिस्ट ज्योति, दलित वॉइस, धर्मम पब्लिकेशन्स, दर्शन, दूत, एलयरा गेलेया, फ्रटर्निटी, जर्नल ऑफ धर्म, माणिक, नमस्ते, नवज्योति, नवसरणी, प्रोक्लेम, रक्नो वीकली, उज्ज्वल।

मिजोरम

शलोम, फ्लैश।

महाराष्ट्र

अवेकनिंग फेथ, बुक वर्ल्ड, कैथलिक कैरिसमैटिक, कैरिस इण्डिया, चेतना, चिराग, दिव्य वाणी, दिव्यदान, डॉन बॉस्कोस मैडॉन्ना, इण्डिका ईशवाणी, जेसुइट परिवार, जीवन, ज्ञान दीप, पेट्रस, सुवार्ता (मासिक), टैबोर नादम (मलयालम), द एक्सामिनर, द टीनेजर, विजन एण्ड वेंचर, विथ जॉयफुल लिप्स, युवा धारा, द गेट वे।

मध्य प्रदेश

न्यू किरण, सत प्रकाशन, द लाइट।

मेघालय

सेंगबा

नई दिल्ली

आइएक पब्लिकेशन्स, एव, क्रिश्चियन माइण्ड सीरीज, हम दलित, इण्डियन करण्ट्स, लीगल न्यूस एण्ड व्यूस, विशाल मलंकर वॉइस, द नजरानी, अवर डेली ब्रेड, प्रतीक्षा लहरें, वचन सुधा,

विद्या ज्योति जर्नल ऑफ थियॉलॉजिकल रिफ्लेक्शन, विमेन लिंक, युवा स्पन्दन, फेथ पब्लिकेशन्स, स्टार ऑफ ईस्ट।

उड़ीसा

बालासोर दीप्ति, बाइबिल कॉमिक्स इन उड़िया, क्रिस्टो राजा, दिब्यो प्रोभा, प्रभा, रश्मि।

पंजाब

खुदा दा दिन, प्यार दा सिपाही, सदा समाना।

पोर्ट ब्लेयर

द्वीप तरंगिनी

राजस्थान

क्रॉस एण्ड क्राउन

तमिलनाडु

येसुवे आण्डवर, अवियिन मन्त्रत्तु मुझक्कम, अन्नयिन, अरुच्चुडर, अन्नम, अरुल मोझी, अरुम्बु, अरुवी, क्लर्जी न्यूस, दैवशबदम, धर्म दीपिका, टू फ्रेण्ड्स, डॉन बॉस्को सलेसियन, बुलेटिन, फातिमा, फ्रान्सिसकन ओली, फ्रेण्ड्स, ज्ञानदूतम, गॉड्स एम्बैसडर, इल्लन तेण्ड्रल, इलय दीपम, इदय सुदर, इदय तकम, कल्वी चेइति मडल, क्रिस्तुविल वाझवु लैटी, मातरम, मनिद मेम्बडु, नन्दवनम, नारचेइति नादम, नरकरुनई वीरन, प्रम नम्बिक्काड़, पतैगल पोइय विलक्कु, समय उरवु, सरपिरस्त दूतन, सत्य बोधिनी, सोलजर्स ऑफ गॉड, तेन ओली, उरिमयी वाझ्वु, वैकरै वेलंकन्नि कुरलोलि, विविलिय विरून्तु, येसुविन तेइरु इरुदाय, दूतन।

अन्य चर्च

इमैन्युअल - एंजेल क्रिस्टीन, गुरुकुल, जीसस कॉल्स, प्राइसलेस पर्ल, सुविशेषकम, द साउथ इण्डिया चर्चमैन।

त्रिपुरा

शलोम, त्रिपुरा बैपटिस्ट हेरल्ड

उत्तर प्रदेश

कृपाओं की माता, प्रभु का दिन, कोट, साक्षी, द टीनेजर।

पश्चिम बंगाल

कैटेचेटिक्स इण्डिया, मिलोन बिठी, अवर लेड़ी ऑफ बान्देल, प्रार्थना, एस.वी.पी. बुलेटिन (द्विमासिक), स्ट्रीम्स ऑफ लिविंग वाटर, सोंजिबोन, द हेरल्ड वीकली, युवा प्रगति (त्रैमासिक।

बौद्ध पत्रिकाएँ

28 फरवरी 2021 कॉ देखे गए वेबसाइट http://navayan.com/periodicals.php?type=monthly&page=2 के अनुसार भारत में प्रकाशित अनेक बौद्ध पत्रिकाएँ हैं। उदाहरणार्थ, दिल्ली से प्रकाशित हिंदी मासिक *दलित दस्तक*, मुम्बई से प्रकाशित मासिक *ब्लिस बुलेटिन*, मुम्बई से मासिक रूप में प्रकाशित *बुद्धिस्ट वॉइस*, रमाई (मासिक, औरंगाबाद), नागपूर से प्रकाशित मासिक *वन्दना संघाचा धम्माघोष*, *सम्यक टाइम्स* (मासिक, मुम्बई), *धम्म* (अंग्रेजी मासिक, बंगलौर), *दलित केसरी* (हिंदी मासिक, इलाहाबाद), *बौद्ध विहार* (हिंदी मासिक, पटना), *भीम पत्रिका* (हिंदी मासिक, जालन्धर), आदि।

सिख पत्रिकाएँ

28 फरवरी 2021 कॉ देखे गए वेबसाइट https://en.wikipedia.org/wiki/Gurmat_Parkash के अनुसार, *गुरमत प्रकाश* एक पंजाबी मासिक पत्रिका है जो अमृतसर स्थित शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति की धरम प्रचार समिति द्वारी प्रकाशित की जाती है। उसके हिंदी संस्करण का नाम है गुरमत ज्ञान।

जैन पत्रिकाएँ

वेबसाइट https://www.jainsamaj.org/content.php?url=Jain_Magazines_-_Published_in लगभग 250 जैन पत्रिकाओं की सूची देती है, जैसे *जैन जागृति, जैन समाज, अणुव्रत* आदि।

उपसंहार

इस संक्षिप्त लेख के दायरे में धर्म से सम्बन्धित इन पत्रिकाओं और समाचार पत्रों में प्रकाशित होनेवाले आध्यात्मिक स्तंभों के प्रभाव का मूल्यांकन करना कठिन है। लेकिन एक बात तो निश्चित है। भारत में इस प्रकार की सामग्री का एक बड़ा और बढ़ता हुआ पाठक वर्ग है।

भारतीय पत्रकारिता के अग्रदूत

पत्रकारिता के प्रतिमान महामना मालवीय

डॉ. धीरेन्द्र कुमार राय

हर्षित श्याम जायसवाल

बहुकृत्ये निरुद्योगी जागर्तव्ये प्रसुप्तकः ।
विश्वस्सत्वं भयस्थाने हा पुत्रक! विहन्यसे ।।

"काम बहुत करना है, तुम कुछ उद्योग नहीं कर रहे हो। जागने का समय है, तुम सोते हो। भय का स्थान है और तुम विश्वास किए बैठे हो कि कुछ भय नहीं है। हाय! तुम मारे जाते हो।"

संवत् 1963 (फाल्गुन-कृष्ण सप्तमी) को महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित इस श्लोक के माध्यम से पराधीन भारत की जनता को जागृत करने के उद्देश्य से महामना ने 'राष्ट्रीय जागरण' शीर्षक से समाचार पत्र अभ्युदय में छपे लेख की शुरुआत की।[1] बाबूराव विष्णु पराड़कर कहा करते थे, "पत्रकला और सार्वजनिक जीवन में नेतृत्व, दोनों साथ-साथ नहीं चल सकते। किसी एक कला में सफल और सिद्ध बनने के लिए दूसरे का त्याग अनिवार्य है।" परन्तु महामना के जीवन पर दृष्टि डालें तो वह इसके अपवाद मिलेंगे। महामना सार्वजनिक जीवन में जितने सफल नेतृत्वकर्ता थे, पत्रकारिता में भी उनकी कर्म-साधना उतनी ही परिपूर्ण थी। हिन्दोस्थान से लेकर अभ्युदय, सनातनधर्म, लीडर, हिंदुस्तान टाइम्स, मर्यादा तक इस बात के अनेकों प्रमाणिक दस्तावेज इतिहास में दर्ज हैं। महामनाकी समूची पत्रकारिता पर नजर डाले तो यह बात पुष्ट होती है कि उनके प्रयासों ने आधुनिक भारतीय पत्रकारिता में एक नई दृष्टि का सूत्रपात किया।

बतौर संपादक पत्रकारिता के पेशे से महामना का पहला जुड़ाव 'हिन्दोस्थान' समाचार पत्र के माध्यम से हुआ। हालाँकि बतौर लेखक 1880 में ही 'हिंदी प्रदीप' में छपे एक लेख के जरिये वे पत्रकारिता में अपनी दस्तक दे चुके थे। वे सन् 1887 में इस दैनिक समाचार पत्र के संपादक बने। कालाकांकर (प्रतापगढ़) के राजा रामपाल सिंह द्वारा संस्थापित इस अखबार का उन्होंने तकरीबन ढाई वर्षों तक संपादन किया। तब हिंदोस्थान पूर्णत: हिंदी में छपने वाला पहला दैनिक समाचार पत्र था। भारत के लिए स्वराज्यप्राप्ति 'हिंदोस्थान' में उनकी संपादकीय नीति का प्रधान लक्ष्य था। सन् 1889 में पंडित अयोध्यानाथ के अंग्रेजी पत्र 'इंडियन ओपिनियन' के प्रकाशन में भी उन्होंने कुछ समय तक सहयोग किया। कालांतर में उन्होंने सन् 1907 में प्रयाग से हिंदी साप्ताहिक 'अभ्युदय' का संपादन एवं प्रकाशन शुरू किया। अभ्युदय ना सिर्फ हिंदी बल्कि समूची भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में दर्ज एक स्मरणीय नाम है। यह बीसवीं सदी के शुरुआती दशकों में सबसे चर्चित राष्ट्रवादी समाचार पत्र था। प्रारंभिक वर्षों में यह साप्ताहिक पत्र था। हालाँकि प्रथम विश्वयुद्ध शुरू होने के पश्चात आम जनमानस में देश-दुनिया की खबरें जानने की चाह बढ़ गई थी। इस दौर में पत्र-पत्रिकाओं की माँग भी बढ़ी। फलस्वरूप अभ्युदय भी साप्ताहिक की बजाय हफ्ते में दो दिन प्रकाशित होने लगा। सन् 1909 में उन्होंने अपने गृहनगर प्रयाग से ही विजयादशमी के दिन अंग्रेजी दैनिक 'लीडर' की शुरुआत की। सन् 1910 में प्रयाग में अभ्युदय प्रेस से ही 'मर्यादा' मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी शुरू हुआ। इसे निकालने का दारोमदार महामना के भतीजे कृष्णकांत मालवीय के कंधों पर था। आगे चलकर यह पत्रिका बाबू शिवप्रसाद गुप्त के ज्ञानमंडल, काशी से प्रकाशित होने लगी। जहाँ इसका संपादन

महामना के लिए पत्रकारिता केवल स्वतंत्रता के लिए जनजागरण का ही माध्यम नहीं थी, आमजन को भाषा और साहित्य का संस्कार देने का उपकरण भी थी। अपने प्रयासों से उन्होंने भारतीय पत्रकारिता में एक नई दृष्टि का सूत्रपात किया

सम्पूर्णानन्द ने संभाला। हालाँकि बाद में मुंशी प्रेमचंद ने भी कुछ समय तक इस पत्रिका का संपादन किया। 1924 में महामना नई दिल्ली से प्रकाशित होने वाले अंग्रेजी दैनिक समाचार पत्र 'हिंदुस्तान टाइम्स' के प्रबंधन से जुड़े। वे लंबे समय तक इस अखबार के प्रबंधन समिति के अध्यक्ष भी रहे। सन् 1933 में राष्ट्रीयता, आध्यात्मिकता एवं सांस्कृतिक चेतना के प्रसार के लिए उन्होंने काशी से 'सनातन धर्म' साप्ताहिक पत्रिका को शुरू किया। इस पत्रिका का सिद्धांत वाक्य था -'जो हठि राखे धर्म को, तेहि राखे करतार'। इस पत्रिका के प्रथम अंक में ही 'भक्ति की महिमा' शीर्षक लेख में उन्होंने अंतज्योद्धार का प्रश्न उठाया। इसके अलावा महामना उस दौर में निकलने वाली तमाम पत्र-पत्रिकाओं में अपने अनुभव से यथासंभव सहयोग करते रहते थे। डॉ० सच्चिदानंद सिन्हा का 'हिन्दुस्तान रिव्यू' हो या अंग्रेजी साप्ताहिक 'इंडियन पीपुल' दोनों के प्रकाशन में मालवीय ने सहयोग किया। इलाहबाद से ही प्रकाशित होने वाली रामानंद चटर्जी के 'मॉडर्न रिव्यू' को भी महामना का सहयोग अनवरत मिलता रहा।

महामना हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में अपना अलग महत्त्व रखते हैं। डॉ. लक्ष्मीशंकर व्यास अपनी पुस्तक 'महामना मालवीय और हिंदी पत्रकारिता' में आजादी पूर्व की हिंदी पत्रकारिता को तीन युगों में बाँटते हैं - आदि युग, भारतेंदु युग एवं मालवीय युग। आधुनिक हिंदी पत्रकारिता के विकास में महामना के योगदान और उनकी पत्रकारिता के ऐतिहासिक महत्त्व को विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में विस्तार से समझा जा सकता है।

महामना की संपादन कला

महामना के पत्रकारीय कर्म की शुरुआत सन् 1880 में बालकृष्ण भट्ट के संपादन में प्रकाशित 'हिंदी प्रदीप' में छपे एक लेख से हुई। कलकत्ता कांग्रेस में उनके ओजस्वी भाषण से प्रभावित होकर कालाकांकर के राजा रामपाल सिंह ने उन्हें अपने समाचार पत्र के लिए संपादक बनने का आग्रह किया। तब1887 में अपनी अध्यापन की नौकरी छोड़कर 'हिंदोस्थान' समाचार पत्र के माध्यम से उन्होंने पत्रकारिता जगत में अपने संपादन कर्म की शुरुआत की। तदोपरांत महामना ने अनेक समाचार पत्र, पत्रिकाओं का संपादन किया। संपादक के रूप में अपनी भूमिका निभाते हुए उन्होंने ऐसे कई प्रयोग किए जो आज भी आधुनिक पत्र-पत्रिकाओं के संपादन में दृष्टिगोचर होते हैं। बतौर संपादक महामना क्लिष्ट भाषा के बजाय आम बोलचाल की भाषा को प्रयोग में लाए जाने पर बल देते थे। इस संदर्भ में उनका स्पष्ट मत था कि हमें पुस्तकों या समाचार पत्रों में उन्हीं शब्दों का प्रयोग करना चाहिए जो जनभाषा में बोले समझे जाते हैं। वह हिंदी के तद्भव शब्दों को निज संपत्ति थे। उनकी भाषाई बुनावट भी ऐसी ही थी। वे न सिर्फ शब्द गढ़ते थे बल्कि एक शब्दशिल्पी की तरह एक-एक शब्द के गर्भ से प्रस्फुटित तमाम अर्थों का विधान भी रचते थे। भाषाई शब्दों के अभाव में वे संस्कृत की शब्द विपुलता को अपनी पत्रकारीय भाषा का प्रयोजन बनाते थे। अगर आप उनकी लेखनी देखें तो जन्म, कार्य, यत्न, लग्न आदि के स्थान पर वह जनम, काज, जतन, लगन जैसे शब्दों को तरजीह देना पसंद करते थे। उन्होंने संस्कृत व भारतीय भाषा के तमाम शब्दों को पत्रकारीय भाषा का मूलाधार बना दिया। जिसके अनंत उदाहरण उनकी पत्रकारिता में देखे जा सकते हैं।

वे पत्रकारिता को एक वैज्ञानिक कला मानते थे। दैनिक समाचार पत्रों के संदर्भ में उनका विचार था कि संपादकों को प्रतिदिन के लिए विषय निश्चित कर लेने चाहिए। इससे पाठक की पत्र-पत्रिका में रुचि बनी रहेगी और पत्रों के प्रसार में वृद्धि भी होगी। संपादकों को दिन विशेष के हिसाब से शिक्षा, साहित्य, शारीरिक उन्नति, ग्राम संघटन आदि विषयों पर लेख आदि प्रकाशित करने चाहिए। हिंदोस्थान में संपादक रहते हुए वे ग्राम संबंधी मुद्दों पर साप्ताहिक संपादकीय अवश्य लिखते थे। यहाँ यह कहना अतिशय नहीं होगा कि आज जिस ग्रामीण पत्रकारिता या Rural Journalism की हम बात करते हैं 'ग्रामोत्थान' के लिए केंद्रित ऐसी पत्रकारिता की नींव महामना ने ही रखी थी। उन्होंने दैनिक हिंदोस्थान में विदेशी शासन को भारतीय ग्रामों की दुर्दशा का कारण बताते हुए 'हमारे ग्राम' शीर्षक से एक कविता का प्रकाशन किया -

हमारे ग्राम

कहाँ गए वे गाँव मनोहर परम सुहाने।
सबको प्यारे परम शांतिदायक मनमाने।।

कपट और क्रूरता पाप और मद से निर्मल।
सीधे सादे लोग बसे जिनमें नहीं छल-बल।।

एक भाव से जाति छतीसों मिलकर रहतीं।
जहाँ न झूठा काम न झूठी मान बड़ाई।
रहती जिनकी एकमात्र आधार सचाई।।

कहाँ गए वे गाँव जहाँ थी प्रीत सबाई।
एक चिह्न भी देता, उसका नहीं दिखाई।।[2]

सन् 1905 में बंगाल विभाजन आधुनिक भारत के इतिहास की महत्वपूर्ण घटना है। इस घटना ने अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीय संघर्ष को नई धार दी। इस पृष्ठभूमि में 1907 में अभ्युदय का प्रकाशन प्रयाग से शुरू हुआ। इस पत्र का नाम पं० बालकृष्ण भट्ट ने दिया था। अभ्युदय के संपादन एवं प्रकाशन में महामना को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, कृष्णकांत मालवीय, पुरुषोत्तम दास टंडन, पं० वेंकटेश नारायण तिवारी, भगवानदास हालना, पद्मकांत मालवीय आदि विद्वानों का पूरा सहयोग मिला। बतौर संपादक मालवीय अपने पत्र-पत्रिकाओं को पठनीय एवं रुचिकर बनाने के लिए हरसंभव जतन करते थे। इसे आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को लिखे उनके दो पत्रों से समझ सकते हैं-

प्रयाग
08.02.1907

प्रिय पं० महावीर प्रसाद जी,
नमस्कार! मैं आशा करता हूँ कि 'अभ्युदय' की दोनों संख्या आपके पास पहुँच गई है और यह कि आपने उसको पसंद किया है।

मेरी प्रार्थना है कि आप उसको अपने प्रौढ़ लेखों से सहायता कीजिए। और मैं आशा करता हूँ कि आप इसको स्वीकार करेंगे।

आपका कृपापात्र
मदनमोहन मालवीय[3]

इस पत्र के प्रत्युत्तर में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने दो लेख अभ्युदय में प्रकाशन हेतु भेजे। इसमें एक उनका स्वयं का लेख था और दूसरा बाबू मिश्रीलाल गुप्त का। द्विवेदी जी के लेख मिलने पर 26 फरवरी 1907 को महामना ने एक पत्र लिखा जो भारतीय पत्रकारिता के इतिहास की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण पत्र है। इस पत्र में महामना लेखकों को उनके लेख के लिए मानदेय/भेंट आदि देने की प्रथा शुरू करने का जिक्र करते हैं।

प्रयाग

यद्यपि अभी यह साहस और अनावश्यक साहस मालूम होगा तथापि मेरी यह इच्छा है कि मैं 'अभ्युदय' में लेखकों को कुछ भेंट करने का क्रम जारी करूँ। ऐसे लेखक बहुत कम हैं जिनके लेखों के लिए कुछ भेंट करना मुनासिब होगा। और पत्र की वर्तमान अवस्था में कुछ देने के योग्य भेंट करना भी कठिन भी होगा

26.02.1907

प्रिय महावीर प्रसाद जी,
प्रणाम! आपके दोनों कृपा पत्र और दो लेख एक आपका, दूसरा बाबू मिश्रीलाल गुप्त का पहुंचा। मैं अब तक स्वीकार पत्र नहीं लिख सका। इसको क्षमा कीजिएगा। पहिला पत्र अपने हाथ से नहीं लिखा। इसको भी क्षमा कीजिए। कार्य बाहुल्य और क्रमपूर्वक काम न करने के दुराभ्यास के कारण मुझको अब प्राय: अपने अति सम्मानित मित्रों को भी दूसरे के हाथ से लिखा कर पत्र भेजना पड़ता है किंतु जैसा अनुग्रह आप तथा और सम्मानित मित्र मुझ पर करते हैं और मेरे हानि भाव को जानकर मुझको क्षमा कर देते है। इससे मैं इस प्रकार से काम चलाने को पत्र लिखवा कर भेज देता हूँ। मैं आशा करता हूँ कि आप इससे वस्तुत: यह कभी न ख्याल करेंगे कि मैं ऐसा मूर्ख या संकुचित हृदय हूँ कि आपके गुणों का उचित आदर नहीं करता।

आपने मेरे ऐसे पत्र पर भी कृपाकर तुरंत प्रार्थिन सहायता देना स्वीकार किया इसके लिए मैं हृदय से धन्यवाद करता हूँ। मेरी प्रार्थना है कि जहाँ तक संभव हो आप प्रति सप्ताह एक लेख अभ्युदय के लिये भेजिए। मैं आशा करता हूँ कि आप इसको स्वीकार करेंगे। हिंदी भाषा में इस प्रांत में एक ऐसा प्रतिष्ठित साप्ताहिक पत्र स्थापन करने की चिरकाल से आवश्यकता चली आती है, जिसमें विद्वान, विचारवान, अनुभव-संपन्न देश-हितैषी सज्जनों के लेख छपें और जिसके लिखने का ऐसे सज्जनों को उत्साह हो। ऐसे पत्र का बनना आपको भी उतना ही इष्ट और प्रिय होगा जितना मुझको है। किन्तु इस कार्य में वस्तुत: जितनी सहायता आप कर सकते हैं उतनी मैं नहीं कर सकता। मैंने बहुत से और कामों की चिन्ता और बोझ होने पर भी साहस करके पत्र को जारी कर दिया है। इसको देशहित के लिये काम में लाना और रहने के योग्य करना, आप तथा अन्य देशहितैषी मित्रों का कर्तव्य है। और यह आप ही लोगों की सहायता पर निर्भर है।

यद्यपि अभी यह साहस और अनावश्यक साहस मालूम होगा तथापि मेरी यह इच्छा है कि मैं 'अभ्युदय' में लेखकों को कुछ भेंट करने का क्रम जारी करूँ। ऐसे लेखक बहुत कम हैं जिनके लेखों के लिए कुछ भेंट करना मुनासिब होगा। और पत्र की वर्तमान अवस्था में कुछ देने के योग्य भेंट करना भी कठिन भी होगा। किंतु 'अल्पारंभा-क्षेमकरा:' इस न्याय से मैं चाहता हूँ कि उन लेखों के लिए जो आपके 'वैदिक काल की स्त्रियों' के समान आदर के सहित पत्र में छापे जाए, कुछ पत्र-पुष्प अर्पण किया जाए। कृपाकर इस विषय में अपनी सम्मति लिखिए। मेरा विचार है कि अभी 1 (एक) सवा रुपया कालम से प्रारंभ किया जाए और ज्यों-ज्यों पत्र की अर्थसंबंधी अवस्था अच्छी होती जाए त्यों-त्यों भेंट की रेट बढ़ाई जाए। इससे किसी योग्य मित्र को कुछ करने के लायक आय वृद्धि तो होगी नहीं किंतु इससे एक ऐसा क्रम प्रारंभ हो जाएगा कि जिससे जो मित्र पत्र को बनाने और बढ़ाने में सहायक होंगे वे आगे चलकर देशहित और मातृभाषा के हितसाधन के संतोष के अतिरिक्त, पत्र के लाभ से कुछ आर्थिक लाभ उठाने का भी संतोष अनुभव करेंगे। मुझे आशा और विश्वास है कि यदि आप तथा दो तीन मित्र जिनको मैं लिख रहा हूँ, पत्र को पूरी सहायता देंगे तो अचिरकाल में इसके आठ-दस हजार ग्राहक हो जाएंगे।

विशेष आपको लिखना आवश्यक नहीं। मैं आशा और विश्वास करता हूँ कि जिस भाव से मैं इस पत्र को लिख रहा हूँ, उसी भाव से आप इसको विचारेंगे। और प्रति सप्ताह एक या दो लेख से सहायता करेंगे।

मैंने विधवा विवाह का भाग इसलिए निकाल दिया था कि उसमें आपकामत नहीं प्रकाशित था और उससे लेख सर्वजन प्रिय न रहता। मैं आशा करता हूँ आप हमसे अप्रसन्न न हुए होंगे।

बाबू मिश्रीलाल के लेख के विषय में कल लिखूंगा।

भवदीय

मदनमोहन मालवीय[4]

एक पत्र को लेकर महामना की समग्र दृष्टि कितनी व्यापक थी उसे डॉ० लक्ष्मीशंकर व्यास की पुस्तक 'महामना मालवीय और हिंदी पत्रकारिता' में वर्णित मालवीय जी की दृष्टि में श्रेष्ठ साप्ताहिक पत्र निकालने के लिए निम्नलिखित आवश्यक बातों से समझा जा सकता है-

- अच्छे लेखकों की सहायता
- नए लेखकों को प्रोत्साहन
- श्रेष्ठ लेखों पर पारिश्रमिक
- पत्र की प्रसार संख्या में वृद्धि

बतौर संपादक महामना अपने कर्म के प्रति कितने सचेत थे इसका उदाहरण हमें डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के इस कथन से मिलता है -"अभ्युदय का संपादक बनकर महामना देश और समाज को अभ्युदय की ओर ले गए हैं।" चूँकि उन दिनों अखबारों के कई शहरों से संस्करण तो छपते नहीं थे। 25 अक्टूबर 1909 को इलाहाबाद में राष्ट्रीय दैनिक अखबार की कमी को पूरा करने एवं देश में रफ्तार पकड़ रहे स्वाधीनता संग्राम से जुड़ी खबरों को अंग्रेजी बौद्धिक जमात तक पहुँचाने के उद्देश्य से 'लीडर' का प्रकाशन शुरू हुआ। उस दौर की पत्रकारिता में लीडर का महत्त्व क्या था यह सन् 1927 में भारत सरकार के एक गोपनीय रिपोर्ट में दर्ज टिप्पणी से मिलती है - "संयुक्त प्रांत के पढ़े लिखे भारतीयों को राजनीतिक मामलों की खबरें 'लीडर' से मिलती हैं और इसी के आधार पर वे अपनी सम्मति निश्चित करते हैं।"[5] इसके तुरंत बाद नवंबर 1910 में 'मर्यादा' पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ। यह हिंदी की सर्वांगपूर्ण पत्रिका थी जो आज की तारीख में भी पत्रिकाओं हेतु एक आदर्श है। सन् 1917 में अभ्युदय प्रेस से ही अल्प अवधि तक उन्होंने 'किसान' पत्र का भी प्रकाशन किया। सन् 1933 में शुरू हुए साप्ताहिक पत्र 'सनातन धर्म' में महामना के लेखों के साथ-साथ सनातन धर्म संबंधी उनके भाषणों का भी प्रकाशन होता था। महामना जिस भी पत्र-पत्रिका के प्रकाशन से जुड़े रहे वहाँ उनके साथ एक पूरी टीम होती जो उनके संपादकीय निर्देशन में योगदान करती थी। उन्होंने भारत की पत्रकारिता को पत्रकारों की नई पौध दी। हिन्दोस्तान में उनके साथ बाबू बालमुकुन्द गुप्त, भारतेन्दु सखा, पं० प्रतापनारायण मिश्र, बाबू गोपाल राम गहमरी, गुलाबचन्द्र चौबे, बाबू शशिभूषण चटर्जी, पं० अमृतलाल चक्रवर्ती जैसे लोग थे। वहीं अभ्युदय में उनके साथ कृष्णकान्त मालवीय, गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे कुशल लोग रहे जिन्होंने अपनी पत्रकारिता से समाज में बड़ा योगदान दिया। हालाँकि बीसवीं सदी का पहला दशक खत्म होते-होते काशी हिंदू विश्वविद्यालय के स्थापना में जुट जाने के कारण महामना की सक्रियता पत्रकारिता में भले ही कम हो गई, लेकिन वो अपने प्रकाशन प्रकल्पों पर पैनी निगाह रखते थे। उनके इस भाव को 17 जून 1914 को कृष्णकान्त मालवीय को उनके द्वारा लिखे गए पत्र से समझा जा सकता है- "पिछली रात हमने स्वप्न देखा

अभ्युदय
साप्ताहिक पत्र

था कि 'अभ्युदय' प्रेस में एक भयंकर आग लग गई है, अग्नि की ज्वाला प्रचंड वेग से ऊपर जा रही थी और आस-पास के मकानों पर फैल रही थी। इस समय डाक में आए हुए 23 संख्या के 'अभ्युदय' को पढ़कर जो वेदना हमको हुई वह उससे बहुत अधिक है जो स्वप्न में प्रेस को जलते देखकर हुई थी। यदि पिछली संख्या का प्रधान लेख छपने के पहले प्रेस भस्म हो गया होता तो हमको उतना दु:ख न होता जितना इस लेख को 'अभ्युदय' में छपा देखकर हुआ है। यदि पत्र के बंद कर देने से इसका प्रायश्चित हो सकता तो हम पत्र को तुरंत बंद कर देते; किंतु वह भी नहीं हो सकता। जब तक हम जीते हैं तब तक हमको 'अभ्युदय' या 'मर्यादा' में ऐसे भाव प्रकाशित करना उचित नहीं जिनके कारण हमको समाज के सामने अपराधी बनना और लज्जित होना पड़े।"

- अभ्युदय का 13 जून 1914 का अंक जिसमें छपे हुए लेख से मालवीय जी आहत थे

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि महामना अपने प्रकाशन से निकलने वाली सभी पत्र-पत्रिकाओं में कुछ भी ऐसा नहीं छपने नहीं देना चाहते थे जिससे समाज में कोई विभेद या कटुता उत्पन्न हो।

पक्षधरता से परे पत्रकारिता

महामना एक संपादक / पत्रकार होने के अलावा स्वाधीनता संग्राम में रमे हुए राजनीतिज्ञ, अधिवक्ता, समाज के नव निर्माण हेतु विभिन्न प्रकल्पों से जुड़े हुए कार्यकर्ता भी थे। वे संपादक या पत्रकार के तौर पर अपनी भूमिका का निर्वहन करते हुए अपने बाकी सभी कर्मों एवं विचारों से अलग निष्पक्ष रहने का पूर्ण प्रयत्न करते थे। हिंदोस्थान के संस्थापक राजा रामपाल सिंह एवं स्वयं महामना का कांग्रेस से जुड़ाव जगजाहिर था। कांग्रेस की नीतियों के प्रसार में भले इस पत्र का सहयोग मिलता हो लेकिन जरूरत पड़ने पर मालवीय कांग्रेस की आलोचना करने में भी नहीं हिचकते थे। इसी प्रकार अभ्युदय के प्रकाशन काल के दौरान कांग्रेस में उदारवादी (नरम दल) और उग्रवादी (गरम दल) के बीच का विभाजन बहुत बढ़ गया था। कई मौकों पर कांग्रेस के यह दोनों गुट एक दूसरे से टकराते रहते थे।

महामना उदारवादी खेमे से थे, इसके बावजूद वह अभ्युदय उग्रवादी खेमे के लोकमान्य तिलक, बिपिन चन्द्र पाल जैसे नेताओं के विचारों, भाषणों को अपने पत्र में प्रकाशित करने में जरा भी द्वेष या अनदेखी नहीं करते थे। 'उत्तर प्रदेश में पत्रकारिता, जनमत और राजनीति 1905-1920' शोध प्रबंध में भुवनेश्वर पाण्डेय लिखते हैं - "अभ्युदय को हिंदी भाषा का पहला राष्ट्रवादी पत्र कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। कृष्णकांत मालवीय इसके प्रथम संपादक थे। यद्यपि मदन मोहन मालवीय उदारवादी थे, परंतु प्रांत की उग्रवादी राजनीति को भी पत्र में पर्याप्त प्रमुखता दी जाती थी।"[6]

बतौर पत्रकार महामना की नजर देश-दुनिया से जुड़े विभिन्न मुद्दों पर रहती थी। एक तरफ जहाँ वे देश में - हिंदू-मुसलमानों की एकता; राष्ट्र निर्माण; हिंदुस्तान के आय-व्यय का विचार; स्त्री शिक्षा; गोरक्षा; भारतीय सेना जैसे शीर्षक के साथ संपादकीय या लेख लिखते थे। वहीं दूसरी तरफ वे दुनिया में घट रही तमाम महत्वपूर्ण घटनाओं पर टिप्पणी कर जनमानस तक अपना विचार पहुँचाते थे। ऐसी ही एक टिप्पणी उन्होंने जापान और अमेरिका के संबंधों के संदर्भ में की थी -

जापान और अमेरिका

4 तारीख के 'पायनियर' से यह जान पड़ता है कि अमेरिका के समाचार-पत्र जापान से युद्ध करने के विषय में बहुत ही बेसमझी के लेख छाप रहे हैं। वे लिखते हैं कि जापान युद्ध करने पर तत्पर है। प्रेसिडेंट रुजवेल्ट के संबंध में ऐसा लिखा गया है कि उन्होंने यह कहा है कि जिस प्रकार हो सके, जापान के साथ जो द्रोह फैल रहा है उसको दूर करना चाहिए; क्योंकि वीर और प्रभावशाली जापान के साथ युद्ध वैसा ही सरल न होगा, जैसा स्पेन का युद्ध हुआ था। यूरोपीय देशों के समान राजनीति के सब ढंगों को काम में लाने का आसरा जापान न देखेगा किंतु एकबारगी समय पाते ही चोट करेगा। अमेरिका के इस प्रकार के लेखों से सभी देशों के शांतिप्रिय मनुष्यों को खेद होगा। ऐसे लेखों से सिवाय हानि के लाभ नहीं हो सकता। परंतु जापान का ऐसी अवस्था में भी धैर्य और गौरव प्रशंसनीय है। बात भी यही है कि सामर्थ्यवान पुरुष प्राय: बड़े धैर्यशील होते हैं।[7]

इस टिप्पणी से यह स्पष्ट तौर पर प्रतीत होता है कि महामना सिर्फ भारत अथवा ब्रिटेन की घटनाओं एवं राजनीति पर ही पैनी दृष्टि नहीं रखते थे, अपितु वह वैश्विक दुनिया में घट रही घटनाओं तथा अंतरराष्ट्रीय राजनीति में पड़ने वाले प्रभावों को समझते थे। वे हर जरूरी मुद्दे पर बेबाकी से अपनी राय रखते थे। तथ्यों के साथ रिपोर्टिंग पर बल देने व तत्कालीन सरकार के फैसलों की तर्कसंगत आलोचना करने में वे जरा भी नहीं चूकते थे। संवत् 1964 (चौत्राधिक-शुक्ल 12) को अभ्युदय में छपे अपने लेख 'हिंदुस्तान के आय-व्यय का विचार' में सरकार द्वारा नमक कर घटाने के फैसले पर प्रतिक्रिया देते हुए उन्होंने नमक पर कर लगाने के भारत सरकार के फैसले को पूरी तरह हटा लेने की माँग की थी। इस लेख में सेना के व्यय को घटाकर शिक्षा प्रसार का सुझाव दिया था। वो भारत और इंग्लैंड के बजट की तुलना करते हुए लिखते हैं - "हमारे देश की सालाना आमदनी कुल 1 अरब 12 करोड़ रुपया है। इसमें से कुल मिलाकर गवर्नमेंट इस समय 3 करोड़ 4 लाख रुपया देश-भर में विद्या के प्रचार में व्यय कर रही है। सेना के खर्च में कुल मिलाकर 30 करोड़ व्यय कर रही है। इंग्लैण्ड की सालाना आमदनी 2 अरब 30 करोड़ से ऊपर है उसमें साढ़े चौबीस करोड़ रुपया विद्या-प्रचार में खर्च होता है और 43.20 करोड़ सेना के व्यय में। ऐसी दशा में क्या आशा हो सकती है कि इस देश में विद्या का उतना प्रचार हो जितना और सभ्य देशों में हो रहा है।"[8]

महामना के मूल्यों तथा वे कैसे नशामुक्त समाज का निर्माण करना चाहते थे इसकी रुपरेखा हमें इसी लेख में एक जगह मिलती है-"चीन देश के निवासी चंडु पीने की नाशकारी आदत को छोड़ने का यत्न कर रहे हैं और यह निश्चय है कि थोड़े वर्षों में हिंदुस्तान से चीन में अफीम का जाना बंद हो जाएगा। इससे हिंदुस्तान के राज्यकोष का साढ़े पांच करोड़ साल का नुकसान होगा। किंतु इसमें हम अप्रसन्न नहीं हैं। किसी देश या जाति को हानि पहुँचाकर हम अपने देश का लाभ नहीं चाहते।"[9]

ऐसे तमाम उदाहरण है जो इस बात को पुख्ता करते हैं कि महामना बिना किसी लाग-लपेट के हर पक्ष की आवाज को अपनी पत्रकारिता में तरजीह देते थे।

हिंदी को राष्ट्रीय भाषा के तौर पर स्थापित करने का प्रयास महामना के पूरे पत्रकारीय जीवन में देखा जा सकता है। उन्होंने हिंदी से ज्यादा से ज्यादा लोगों को जोड़ने के लिए हिंदोस्थान के दौर से ही लोक में प्रचलित सरल तथा तद्भव शब्दों के प्रयोग पर बल दिया। ग्वालियर से छपने वाले 'जयाजी प्रताप' के संपादक का कहना था कि अभ्युदय के माध्यम से हिंदी पर बंगाली भाषा का प्रभाव कम हुआ है। चूँकि पहले ज्यादातर हिंदी भाषा में छपने वाले समाचार पत्र बंगाल, विशेषकर कलकत्ता स्थित छापाखानों से प्रकाशित होते थे

हिंदी को राष्ट्रीय भाषा बनाने का प्रयास

हिंदी को राष्ट्रीय भाषा के तौर पर स्थापित करने का प्रयास महामना के पूरे पत्रकारीय जीवन में देखा जा सकता है। उन्होंने हिंदी से ज्यादा से ज्यादा लोगों को जोड़ने के लिए हिंदोस्थान के दौर से ही लोक में प्रचलित सरल तथा तद्भव शब्दों के प्रयोग पर बल दिया। ग्वालियर से छपने वाले 'जयाजी प्रताप' के संपादक का कहना था कि अभ्युदय के माध्यम से हिंदी पर बंगाली भाषा का प्रभाव कम हुआ है। चूँकि पहले ज्यादातर हिंदी भाषा में छपने वाले समाचार पत्र बंगाल, विशेषकर कलकत्ता स्थित छापाखानों से प्रकाशित होते थे। महामना ने इस लीक को तोड़कर प्रयाग तथा संयुक्त प्रांत में हिंदी का प्रकाशन स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। महामना ने सन् 1910 में ही हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का सुझाव दिया था। इस आशय के साथ उन्होंने भाषा नीति का भी निर्माण किया था। उनका कहना था-

"हमें यह देखना चाहिए कि हमारी भाषा के शब्द ऐसे हों, जिनसे सब प्रदेश के लोग लाभ उठाएँ। भारतीय भाषाओं में हिंदी की स्थिति को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि हिंदी अपनी बहिनों में सबसे प्राचीनतम और बड़ी बहिन है।" वो हमेशा हिंदी को ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचाने हेतु जतन करते रहते। इस क्रम में वे अक्सर ही अपनी पत्रिकाओं में लेख भेजने वाले लेखकों को सरल हिंदी एवं देवनागरी लिपि के प्रयोग पर बल देते।चन्द्रधर शर्मा गुलेरी को उनका यह पत्र इस बात पुख्ता करता है -

प्रयाग

23.02.1909

प्रिय चन्द्रधर जी,

नमस्कार!

आपका दूसरा लेख और पत्र पहुँचे। यह लेख 'लीडर'की रीति से 'अभ्युदय'की आगामी संख्या में छपेगा। मैं उसका प्रूफ पास कर चुका हूँ। लेख के मैंने दो विभाग कर दिया है। राजा साहब का मत एक, और आपकी टिप्पणी दो, दोनों इसी संख्या में छपते हैं।

मैंने चाहा था कि मैं लेख की रीति को कुछ सरल कर सकूँ। कहीं-कहीं कुछ शब्द बदले, किंतु विशेष नहीं बदल सका। अनुवाद में भी और स्वतंत्र लेख में भी भावों को प्रकाश करने के लिए कठिन संस्कृत शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है। मुझसे भी सरल (भाषा) नहीं लिखते बनती, आपसे भी लेकिन फिर भी यत्न कर रहा हूँ, आप भी कीजिए, और जहाँ तक हो सके सरल भाषा के अनुभव शब्द और उन फारसी-अरबी शब्दों के, जो हमारे प्रचलित भाषा के अंग हो गए हैं, के प्रयोग से भाषा को ऐसी कीजिए जिससे सर्वसाधारण लोग हमारे आपके लेखों को समझ सकें। अभ्यास से यह सिद्ध होगा यह बात हमको बहुत संतोष देती है कि आपके और हमारे विचार जैसा धर्म के विषय में मिलते हैं, वैसा राजनीति में भी। आशा है कि सदा हमारे और आपके विचार मिलते रहेंगे। 'अभ्युदय' का भार आप अपने ऊपर समझिए। मुझको अपना सहायक समझिए मैं सदा आपका इतना काम नहीं कर सकूँगा, जितना इस समय करता हूँ और यह आपके कामों का हर्ज कर के कर रहा हूँ। यदि आप स्वतंत्र होते और यहाँ आकर इसकी संपादकता का पूरा भार अपने ऊपर लेते तो मैं विश्वविद्यालय के काम से तुरंत निकल पाता।

यदि आप नहीं आ सकते हों तो लिखिए किसको यह भार अर्पण करूँ? बालमुकुंद गुप्त जी को लिखा था, उन्होंने कहा कि एक महीने बाद करूँगा। फिर भी मैं आ सकूँगा कि नहीं। शायद वे न आ सकेंगे। हिंदी पत्र के संपादक मिलना कठिन हो रहा है। 100 रुपया मासिक तक देने को तैयार हूँ, किंतु एक पुरुष भी नहीं नजर में आता जो इस को उठावे। यह हमारे देश और हमारी भाषा की दशा है। खैर, जो कुछ हो। जहाँ तक समय निकाल सकिए टिप्पणी और लेख प्रति सप्ताह भेजिए। अभी प्रति सप्ताह आपकी सहायता की आवश्यकता है। आगे चलकर चाहे कम भी कर दीजिएगा। मुझे निश्चय है कि आपके लेखों को पढ़कर लोगों को पत्र से प्रीति होगी। अधिक क्या लिखूँ, धन्यवाद। आपका किया तो अपने का किया। ईश्वर आपके द्वारा देश का उत्तम उपकार करावें।

आपका

मदनमोहन मालवीय[10]

हिन्दी आंदोलन में महामना के इन प्रयासों का महत्त्व सिर्फ राज-काज में भाषा-लिपि के प्रयोग तक सीमित नहीं था। वे व्यापक स्तर पर हिंदी भाषा के इस आंदोलन द्वारा देश के विशाल जनमानस के भीतर राजनीतिक जनआकांक्षा को स्वर दे रहे थे। हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित करने हेतु उन्होंने अपनी हर भूमिका, हर मंच का प्रयोग किया। उन्हें प्रथम हिंदी साहित्य सम्मेलन में अध्यक्षीय भाषण देने का अवसर मिला जहाँ उन्होंने इससे जुड़ी तमाम भ्रांतियों/आशंकाओं को दूर करने का प्रयत्न करते हुए एक यादगार भाषण दिया। उस भाषण का एक महत्वपूर्ण अंश यहाँ उद्धृत है -

हमारे एक मित्र ने प्रश्न किया है कि पहले यह तो बतलाइए कि हिंदी है क्या? यह बड़ा टेढ़ा प्रश्न उठा है कि हिंदी क्या है? ऐसी दशा में पहले में इसी को लेता हूँ। मुझको दु:ख है कि मैं न संस्कृत का ऐसा विद्वान् हूँ कि इस विषय में प्रमाण के साथ कह सकूँ, न भाषा का ऐसा विद्वान् हूँ कि इस विषय की चर्चा चलाऊँ। किंतु मैं आपके सम्मुख निवेदन करता हूँ कि जब प्रमाण की रीति से कोई कुछ न कह सके तो उसका धर्म है कि वह अपने विचारों को उपस्थित करके जो प्रमाण दे सकता हो उन्हीं को दे। हिंदी के विषय में बहुत सा विवाद है। हिंदी के संबंध में हमारे देश के लिखने वालों में जो हुए वह तो हुए ही, हमारे यूरोपियन लिखने वालों में विलायत के डाक्टर ग्रियर्सन एक बड़े शिरोमणि हैं (हर्षध्वनि)। आपने हिंदी की बड़ी सेवा की है और हिंदी की उन्नति बड़ा यत्न किया है। आपने एक स्थान में लिखा और है कि हिंदी यूरोपियन सन् 1803 ई0 के लगभग लल्लूलाल जी से लिखवाई गई। और भी लोगों ने इसी प्रकार की बात कही है। जो विदेशी हिंदी के विद्वान् हैं, वह तो यही कहते आए हैं कि हिंदी कोई भाषा नहीं है। इस भाषा का नाम उर्दू है। इसी का नाम हिंदुस्तानी है। यह लोग यह सब कहेंगे, किंतु यह न कहेंगे कि यह भाषा हिंदी है (लज्जा)। लज्जा तो कुछ नहीं है, विचार की बात है सज्जनों! ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित कितने ही अंग्रेजी अफसरों ने मुझसे पूछा था कि हिंदी क्या है? इस प्रांत की भाषा तो हिंदुस्तानी है। मैं यह प्रश्न सुनकर दंग रह गया। समझाने से जब उन्होंने स्वीकार नहीं किया तब मैंने कहा कि जिस भाषा को आप हिंदुस्तानी कहते हैं, वही हिंदी है।

महामना अपने भाषण में आगे कहते हैं- हिंदी भाषा के संबंध में विचार करते हए सबसे पहले संस्कृत की आकृति एक बार ध्यान में लाइए, हिंदी भाषा की आकृति को ध्यान में लाइए। इसके पीछे आप विचारिए कि हिंदी कौन भाषा है और इसकी उत्पत्ति कहाँ से हैं? संस्कृत की जितनी बेटियाँ हैं, इनमें कौन सी बड़ी बेटी है? संस्कृत की बेटियों में हिंदी का कौन सा पद है? इसका संस्कृत में क्या संबंध है? संस्कृत, जैसा कि शब्द कहता है, नियमों से बाँध दी गई है। जो व्यर्थ बातें थी, वह निकाली गई, अच्छी-अच्छी बातें रखी गईं, नियमों और सूत्रों से बंधे शब्द रखे गए, जो शब्द नियम विरुद्ध थे उनके लिए कह दिया गया कि यह नियम से बाहर है। नियमबद्ध शब्दों का व्याकरण में उल्लेख हो गया। आप जानते हैं कि संस्कृत में प्राकृत हुई। जो लोग यह कहते हैं कि संस्कृत कभी बोली नहीं जाती थी, वह संस्कृत को नहीं जानते। वे थोड़ी

प्राकृत पढ़ें तो उनको मालूम हो जाएगा कि प्राकृत तो बोली जा नहीं सकती। संस्कृत के बोले जाने में कोई संदेह नहीं। संस्कृत से प्राकृत हुई। उसके पीछे सौरसेनी, मागधी और महाराष्ट्री। कदाचित् आपके ध्यान में होगा कि दंडी 8वीं शताब्दी में थे। अपने समय में उन्होंने यह लिखा था कि भारत में चार भाषाएँ हैं- महाराष्ट्री, सौरसेनी, मागधी और भाषा। यही चार भाषाएँ चली आई हैं।

अब आपको मालूम हो गया होगा कि जो महाराष्ट्री भाषा थी, मागधी भाषा थी, इनके बीच में बहुत भेद था। मेरे शब्दों पर ध्यान दीजिए इन भाषाओं में संस्कृत भाषा के शब्दों के रूप का अनुरूप आपको मिलता है। यह जितना हिंदी भाषा में मिलता है, उतना दूसरी किसी भाषा में नहीं मिलता।[11]

अन्य कई स्वतंत्रता सेनानियों की ही तरह मालवीय जी भी देश को एक सूत्र में बाँध ने वाली भाषा के तौर पर हिंदी को देखते थे। और हिंदी को राष्ट्रभाषा के तौर पर स्थापित करने के पीछे उनका प्रमुख उद्देश्य भी यही था।

भारतीय नवजागरण में योगदान

महामना ने बतौर पत्रकार भारतीय समाज के उत्थान, उसके नवजागरण में अहम योगदान निभाया। हिंदी के प्राध्यापक समीर कुमार पाठक अपनी पुस्तक 'मदनमोहन मालवीय - नवजागरण का लोकवृत्त' में लिखते हैं -"महामना हिंदी प्रदेश के उन थोड़े से लोगों में से थे, जिनकी पहचान अखिल भारतीय थी। उनका सजग-सक्रिय राजनीतिक-सांस्कृतिक जीवन छह दशाब्दियों तक फैला हुआ है। सन् 1880-1940 तक की उनकी पूरी जीवन-यात्रा और विचार-यात्रा, स्वाधीनता और स्वदेशी अभियान तथा राष्ट्रीय चेतना को सुदृढ़ बनाने के क्रम में हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना और उसके उन्नयन के संकल्प की अंतर्कथा है। वे कांग्रेस के माध्यम से राजनीतिक-सांस्कृतिक कार्यों में सक्रिय होते हैं; हिंदोस्थान, अभ्युदय, लीडर, मर्यादा की पत्रकारिता से नवजागरण की विचार-चेतना का विकास और विस्तार करते हैं; भारत की आर्थिक बदहाली के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद की आलोचना करते हैं; हिंदू-मुस्लिम एकता के सामूहिक प्रयास का आह्वान करते हैं; हिंदी-भाषा और देवनागरी लिपि की वकालत करते हैं; शिक्षा के भविष्य और भविष्य की शिक्षा के बारे में सोचते हुए हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना करते हैं-मदनमोहन मालवीय का संपूर्ण जीवन नवजागरण की विकास-यात्रा का पर्याय है।"

महामना अपने लेखन में महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित श्लोकों, 'शतपथ ब्राह्मण' आदि जैसे ग्रंथों, मिथकीय एवं ऐतिहासिक संदर्भों के माध्यम से भारत में स्वराज्य जैसे विचारों को पुष्ट कर पराधीन भारतीय जनमानस के जागरण का प्रयास करते हैं। वो अपनी पत्रिका 'सनातन धर्म' के अपने लेखों के माध्यम से ना सिर्फ अंत्यजोद्धार की बात करते हैं बल्कि हरिजनों को काशी के दशाश्वमेध घाट पर 'नमः शिवाय' पञ्चाक्षर मंत्र से दीक्षित भी करवाते हैं। समाज के नवनिर्माण में स्त्रियों की भूमिका को रेखांकित करते हुए वे 'स्त्री-शिक्षा' शीर्षक से लेख में लिखते है - "पुरुषों की उन्नति अथवा अवनति मानो स्त्रियों के ही हाथ में हैं! लेडी मैकबेथ सरीखी स्त्री जिस प्रकार पुरुषों को उनकी दुष्कृति के अन्धकार से निकाल सकती है, उसी प्रकार गांधारी और द्रौपदी सरीखी विदुषियों के समान स्त्रियाँ भी दुराचारियों के हाथ से अपनी रक्षा करके अपने कुल का उद्धार और पापी को पुण्य के पथ पर ले जा सकती है। परंतु ऐसा तब हो सकता है, जब उनको इस प्रकार की गूढ़ नीति समझने और यथासमय उनका उत्तम रूप से उपयोग करने के लिए उपयुक्त शिक्षा दी जावे। स्त्री-शिक्षा का जो अर्थ लोग साधारणतः आजकल कर लेते हैं उस बारे में अपने पाठकों से कुछ भी अधिक निवेदन करना नहीं चाहते। हमारा तात्पर्य शिक्षा से हृदय और मन की सारी शक्तियों का सम्यक् रूप से विकास और उनकी पूर्ण पुष्टि से है। स्त्रियों को ईश्वर की दी हुई विपुल शक्ति के जीवन के उच्च आदर्श के सामने लाकर सुगठित करना और कर्मशील बनाना ही हमारा उद्देश्य है और यही हमारे जातीय जीवन का सुख और कर्तव्य कर्म है। जो दशा आजकल हमारे देश की स्त्री शिक्षा के संबंध में ही रही है, वही दशा आज से पचास वर्ष पहले यूरोप और अमेरिका आदि सभ्य देशों की थी। स्त्रियों को उच्च शिक्षा दिए जाने के संबंध में जो नाना प्रकार के तर्क और भ्रांतिमूलक, कल्पित और दुर्बल धारणाएँ इस समय यहाँ पर प्रवाहित हैं, इसी प्रकार उस समय सभ्य देशों की दशा थी। परंतु समय के फेर से उन लोगों के मन इस दुर्नीति की ओर से अब हट गए हैं और हटने के साथ ही उनके जातीय जीवन में नवीन रक्त का संचार हुआ है। स्त्री-शिक्षा की ओर ध्यान देने से ही उनकी कायापलट हो गई। यूरोप और अमेरिका ने जितनी उन्नति गत पचास वर्ष में की, उतनी उन्नति पिछली दो शताब्दियों में भी न कर सके।"[12]

महामना की पत्रकारिता के विविध आयाम

पत्रकारिता का मूल ही है लोगों तक सूचनाएँ पहुँचाना, उन्हें शिक्षित करना एवं उनका मनोरंजन करना। यह कोई अचरज की बात नहीं कि महामना एक संचारक एवं पत्रकार की भूमिका को, पत्रकारिता की एक अलग विधा के तौर पर अध्ययन के क्षेत्र में विकसित होने के पूर्व ही बखूबी समझते थे। काशी हिंदू विश्वविद्यालय में ही पत्रकारिता विषय का शिक्षण उनके निधन (1946) के दो-ढाई दशकों के बाद 1973 शुरू हुआ। यह देश के उन शुरुआती विश्वविद्यालयों में था जहाँ पत्रकारिता में डिग्री देने की शुरुआत हुई। एक पत्रकार के तौर पर वह शिक्षा को लेकर लगातार लेखन करते रहते थे 'हमारी शिक्षा' शीर्षक से छपे लेख में वे लिखते हैं - "भारतवर्ष का एक वह समय था कि यहाँ ऊँच-नीच सब लोग विद्वान् कला-कौशल में निपुण, उद्योगी, साहसी और धार्मिक हुआ करते थे। यह बात बहुत प्राचीन समय की नहीं है। अभी महाराजा भोज के समय तक इस देश की यह दशा बनी रही। महाराजा भोज के दरबार में यदि कोई एक नवीन श्लोक बनाकर ले जाता था तो वे उसे एक लाख मुद्रा बतौर इनाम में देते। उसी भारत की ऐसी शोचनीय दशा हो गई है कि नीच जातियों में विद्या-प्रचार के लिए क्या कहा जाय, उच्च जातियों में भी विद्या का अभाव है। इसका कारण हमारी सरकार की उदासीनता और सर्वसाधारण का उसकी ओर उचित ध्यान न देना ही है। भारत सरकार हमारी शिक्षा के लिए क्या व्यय करती है, इसे सुनकर पाठकों को चकित और दुःखित होना पड़ेगा। सरकार इस देश में शिक्षा प्रचार के लिए एक आना के लगभग प्रति व्यक्ति व्यय करती है। जिन देशवासियों से सरकार

एक अरब से कुछ अधिक धन वार्षिक वसूल करती है, उनकी शिक्षा के लिए इतना कम खर्च करना न्याय है अथवा अन्याय, इसे हमारे पाठकगण स्वयं सोच लें।" वह सिर्फ सरकार के समक्ष प्रश्न ही नहीं उठाते बल्कि वह आगे लिखते हैं - "यह बात हम स्वीकार करते हैं कि सरकार हमारे शिक्षा के कामों में अब तक जितना चाहिए उससे बहुत-बहुत कम व्यय करती है, परंतु सरकार से अधिक उदासीन हम हैं, जिनको शिक्षा प्राप्त होनी चाहिए। क्या हम स्वयं अपनी शिक्षा का कुछ भी प्रबंध नहीं कर सकते? सरकार जब कोई नया टैक्स हमारे सिर पर मढ़ देती है, या हर तीस तीस वर्ष बाद मालगुजारी बढ़ा देती है तो हम यह धन, प्रसन्नता अथवा अप्रसन्नता से, किसी न किसी प्रकार देते जरूर हैं। हम क्यों देते हैं ? सरकार जबरदस्त है, और हम प्रसन्नतापूर्वक टैक्स न दें तो सरकार तो उसे वसूल कर ही लेती है। यदि हम देश में शिक्षा-प्रचार के लिए अपने ऊपर टैक्स लगा लें और उसे नियमित रूप से शिक्षा-प्रचार के काम में लगाते जावें, तो क्या हमारी शिक्षा में उन्नति नहीं हो सकती? जो लोग व्याख्यान देकर अथवा लेखनी को वृथा ही कष्ट पहुँचाकर दूसरों की निंदा करने में अपना अभीष्ट कार्य पूरा हुआ समझते हैं, उन्हें यह बात अवश्य सोचनी चाहिए।"

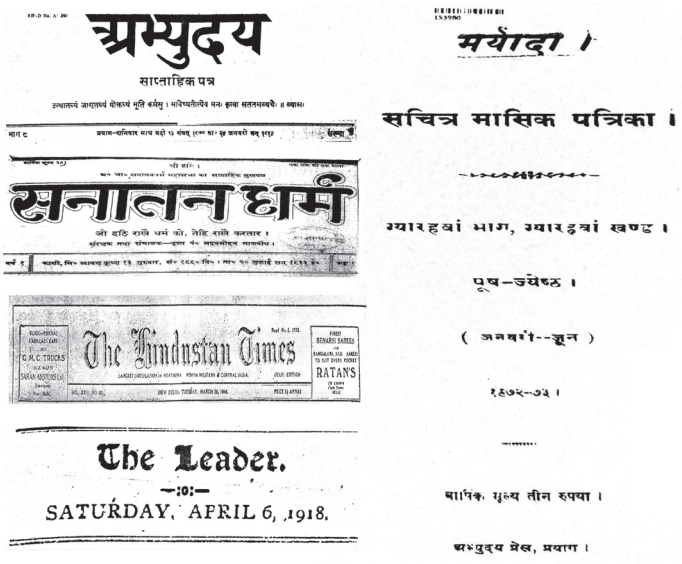

- महामना पं० मदन मोहन मालवीय के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के मास्टहेड

इस प्रकार महामना सिर्फ सरकार पर निर्भर रहने के बजाय समाज के उत्थान के लिए स्वयं से किए जा सकने वाले बदलाव के उपाय भी सुझाते हैं। उन्होंने न सिर्फ उपाय सुझाए बल्कि स्वयं ही इस दिशा में प्रयत्न भी किया और सरकारी मदद की राह देखने के बजाय देश के कोने-कोने से चंदा जुटा कर एक ऐसे नागरिक विश्वविद्यालय का निर्माण किया जिसमें देश की तमाम रियासतों के राजा-महाराजा से लेकर देश की आम जनता के खून-पसीने की कमाई लगी। यह उनकी तपनिष्ठा ही थी कि उनके द्वारा स्थापित यह विश्वविद्यालय पिछले सौ बरसों से देश का न सिर्फ आधुनिक तकनीक एवं ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में नेतृत्व कर रहा है बल्कि प्राचीन ज्ञान, संस्कृति एवं परंपराओं का संवर्धन भी कर रहा है।

महामना शिक्षा को भारतीय समाज के पुनर्निर्माण का एक प्रमुख माध्यम मानते थे। शिक्षा को लेकर के उनका समर्पण एवं प्रयास कितना विराट व भारतीय मनीषा और चिंतन परंपरा का वैभव लिए उनके अंतस तक था, उसे 1905 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना से जुड़ी एक प्रारंभिक प्रस्तावना में उनके द्वारा उद्घाटित विचार से समझ सकते हैं -"व्यक्ति और समाज की उन्नति के लिए बौद्धिक विकास से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है चारित्रिक विकास। मात्र औद्योगिक प्रगति से ही कोई देश खुशहाल, समृद्ध और गौरवशाली राष्ट्र नहीं बन जाता। अत: युवाओं का चरित्र निर्माण करना प्रस्तावित विश्वविद्यालय का एक प्रमुख लक्ष्य होगा। उच्च शिक्षा द्वारा यहाँ केवल अभियंता, चिकित्सक, विधि-वेत्ता, वैज्ञानिक, शास्त्रज्ञ विद्वान ही नहीं तैयार किए जाएँगे, वरन् ऐसे व्यक्तियों का निर्माण किया जाएगा जिनका चरित्र उज्ज्वल हो, जो कर्त्तव्य परायण और मूल्यनिष्ठ हों। यह विश्वविद्यालय केवल अर्जित ज्ञान के स्तर को प्रमाणित कर डिग्रियां देने वाली संस्था न होकर सुयोग्य सच्चरित्र नागरिकों की पौधशाला होगा।"

महामना की ये बातें नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी परिलक्षित दिखती हैं। जुलाई 2020 में भारत के केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा नई शिक्षा नीति को मंजूरी दी गई। इसके मसौदे को देखें तो यह- "भारत-केंद्रित शिक्षा प्रणाली को लागू करने बात करता है जिसमें सभी को उच्च-गुणवत्ता की शिक्षा के मौके प्रदान किए जाएँ जिससे एक ऐसे राष्ट्र या समाज का निर्माण हो सके जिसमें जीवंत एवं न्यायसंगत ज्ञान हो।" यह समानता महज एक संयोग नहीं है। कला से लेकर आधुनिक विज्ञान, धर्म से लेकर तकनीकी शिक्षा, विधि, आधुनिक एवं आयुर्वेदिक चिकित्सा जैसे विविध विषयों के अध्ययन-अध्यापन को समर्पित संस्थान की स्थापना करना उनकी दूरदृष्टि का ही परिचायक है। आज जिस अंतर्विषयक अध्ययन और शोध की बात हम करते हैं, यह कहना जरा भी अतिश्योक्ति नहीं होगा कि वह दृष्टि महामना को आज से तकरीबन 100 वर्षों पूर्व ही थी।

महामना अपने लेखों में तथ्यों को प्रधानता देते थे। अभ्युदय में प्रकाशित 'स्वराज्य : योग्यता और साधन' शीर्षक लेख में मालवीय जी लिखते हैं कि - "प्राय: यह कहा जाता है कि स्वराज्य या प्रतिनिधि शासन प्रणाली के जारी करने के लिए यह आवश्यक है कि सर्वसाधारण में शिक्षा का प्रसार हो जाए।" इस बात को तर्कों से खारिज करने के लिए वे आगे लिखते हैं - "हिन्दुस्तान में अब हर 9 आदमियों से एक लिख-पढ़ सकता है। प्रोफेसर राजर्स अपनी 'ब्रिटिश सिटिजन' नामक पुस्तक में लिखते हैं कि 'मैं नहीं विश्वास करता कि (इंग्लैंड में) 100 वर्ष पहले दस पुरुषों में से एक और बीस स्त्रियों में से एक से अधिक पढ़-लिख सकते थे। जब मैं हैम्पशायर नामक गाँव में बाल्यावस्था में था, तब किसानों में चालीस वर्ष से ऊपर की अवस्था वाले पुरुषों में मुश्किल से एक-दो ही पढ़-लिख सकता था? एक या दो सदी और पहले इंग्लैंड के निवासी, पुरुष और बालक, ऊँचे और नीचे, कुछ मुट्ठी भर आदमियों को छोड़कर, घोर अज्ञान में डूब रहे थे और तब भी इंग्लैंड में हाउस आफ कामन्स था।"...

मि० यूल ने बहुत ठीक कहा था कि विद्या की योग्यता के विचार से भी हिंदुस्तान में इतने लोग उस योग्यता और गुण के रखने

वाले थे जितने दो-तीन पुश्त पहले इंग्लैंड में थे, जो मर्यादाबद्ध शासन में अच्छी रीति से शामिल किए जा सकते थे। पिछले बीस वर्षों में देश में विद्या की और अधिक उन्नति हुई। पढ़े-लिखे लोगों की संख्या बहुत बढ़ गई है।"

इस प्रकार महामना अंग्रेजों द्वारा शिक्षा के प्रसार में कमी के आधार पर स्वराज्य या प्रतिनिधि शासन प्रणाली न देने के कारणों को तर्कों के साथ खारिज करते हैं। अपने लेख के माध्यम से वे यह सिद्ध करते हैं कि ब्रिटेन में स्वराज्य या प्रतिनिधि शासन प्रणाली के लागू होते वक्त वहाँ के समाज में शिक्षा का जो स्तर था। उसकी तुलना में तत्कालीन भारतीय समाज में शिक्षा की स्थिति बहुत बेहतर थी।

प्रबंधकीय गुण

महामना का व्यक्तित्व बहुत विराट एवं बहुआयामी था। उनके अंदर नेतृत्व और प्रबंधन का गुण नैसर्गिक था। अध्यापन, वकालत, सक्रिय राजनीतिक जीवन के बावजूद उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में विस्तृत योगदान किया। 'हिन्दोस्थान' के अलावा उनकी बाकी सभी पत्र-पत्रिकाएँ उनके अपने प्रकाशन प्रकल्पों के अधीन ही प्रकाशित हुई। अंग्रेज सरकार की तमाम दमनकारी नीतियों के बावजूद उनका अपने समाचार पत्रों को लंबे समय तक चलाए रखना, उनके प्रबंधन कौशल को ही दर्शाता है। अभ्युदय में लेखकों को पारिश्रमिक देने की परंपरा की नींव रखना उनके अपने वित्त के उचित प्रबंधन के बिना शायद ही संभव हो पाता। यह शायद इसलिए भी संभव हो सका था क्योंकि उस समय पत्रकारिता सिर्फ जीवेकोपर्जन का साधन न थी, लोग अखबारों का प्रकाशन सिर्फ निजी फायदे के उद्देश्य से नहीं करते थे। अपितु पत्रकारिता देश की सेवा का अत्यंत श्रेष्ठ एवं श्रेयस्कर साधन था। उनके अंग्रेजी दैनिक समाचार पत्र 'लीडर' पर जब वित्तीय संकट के बादल मंडराने लगे तो उन्होंने उस संकट से निकलने के लिए धनसंग्रह करने का निर्णय लिया। उन्होंने सबसे पहले अपनी पत्नी कुंदन देवी के सामने झोली फैलाते हुए कहा कि - "यह न समझो की तुम्हें चार पुत्र हैं। तुम्हारा पाँचवाँ पुत्र दैनिक 'लीडर' है। आज वह मृत्युशैय्या पर पड़ा है। क्या उसे मरने दूँ?" यह सुनकर उनकी पत्नी ने अपने सारे आभूषण बेचकर साढ़े तीन हजार रुपये 'लीडर' की रक्षा के लिए दे दिए। इस तरह तमाम मुश्किलें आने के बावजूद महामना बतौर प्रबंधक, संपादक अपने पत्र-पत्रिकाओं के सतत संचालन के लिए हरसंभव प्रयास करते थे। अपने ऊपर आने वाली मुश्किल परिस्थितियों से साम्य के कारण गालिब का एक शेर महामना को प्रिय था -

रंज से खूगर हुआ इंसां तो मिट जाता है रंज
मुश्किलें हम पर पड़ीं इतनी कि आसां हो गई

उपरोक्त विवेचना से हमें महामना की पत्रकारिता की एक सम्यक अंतर्दृष्टि मिलती है। महामना के व्यक्तित्व की तरह ही, उनकी पत्रकारिता भी समग्र है। पत्रकारिता, पत्रकार अथवा संपादक की समाज में जनमत निर्माण की भूमिका का महत्त्व जानने के कारण वह तटस्थता के साथ अपनी भूमिका निभाते हैं। अपने समाचार पत्रों में स्वकेंद्रित होने के बजाय वह ज्यादा से ज्यादा लोगों को लेख आदि के माध्यम से जोड़ने का प्रयत्न करते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु वह लेखकों को पारिश्रमिक देने जैसा न सिर्फ विचार प्रस्तुत करते हैं बल्कि छोटे अंश (जो तत्कालीन समय के हिसाब से बहुत कम नहीं था) से ही उसकी शुरुआत भी करते हैं। वह पत्र-पत्रिका के प्रसार के लिए नित प्रयासरत रहते थे। अभ्युदय में तो वह बाकायदा पत्र में यह छापते थे कि - इस पत्र को पढ़ने के बाद किसी किसान भाई को दे दीजिए। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि वह पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से लोगों को जागरूक बनाने, उन तक विभिन्न विचारों को पहुँचाने के कितने हिमायती थे। वह जनमाध्यमों की ताकत को समझते थे। महामना के ये सारे प्रयास उन्हें पत्रकारिता के प्रतिमान के रूप में स्थापित करते हैं।

संदर्भ

1. व्यास, डॉ. लक्ष्मीशंकर (1987)। महामना मालवीय और हिंदी पत्रकारिता। वाराणसी : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
2. पृष्ठ संख्या-19. व्यास, डॉ. लक्ष्मीशंकर (1987)। महामना मालवीय और हिन्दी पत्रकारिता। वाराणसी : काशी हिंदू विश्वविद्यालय
3. पृष्ठ संख्या-20. व्यास, डॉ. लक्ष्मीशंकर (1987)। महामना मालवीय और हिंदी पत्रकारिता. वाराणसी : काशी हिंदू विश्वविद्यालय
4. पृष्ठ संख्या-20. व्यास, डॉ. लक्ष्मीशंकर (1987). महामना मालवीय और हिंदी पत्रकारिता. वाराणसी : काशी हिंदू विश्वविद्यालय
5. पृष्ठ संख्या-92. पाठक, समीर कुमार (2016)। मदनमोहन मालवीय : नवजागरण का लोकवृत्त। दिल्ली : नई किताब
6. पाण्डेय, भुवनेश्वर (1991)। उत्तर प्रदेश में पत्रकारिता, जनमत और राजनीति 1905-1920। इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
7. पृष्ठ संख्या-142. व्यास, डॉ. लक्ष्मीशंकर (1987)। महामना मालवीय और हिन्दी पत्रकारिता। वाराणसी : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
8. पृष्ठ संख्या-85. व्यास, डॉ. लक्ष्मीशंकर (1987). महामना मालवीय और हिन्दी पत्रकारिता. वाराणसी : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
9. पृष्ठ संख्या-84. व्यास, डॉ. लक्ष्मीशंकर (1987). महामना मालवीय और हिन्दी पत्रकारिता. वाराणसी : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
10. पृष्ठ संख्या-183. पाठक, समीर कुमार (2016). मदनमोहन मालवीय : नवजागरण का लोकवृत्त. दिल्ली : नयी किताब
11. पाण्डेय, डॉ.विश्वनाथ (2011). महामना पं० मदन मोहन मालवीय स्मृति अंक. वाराणसी : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
12. पृष्ठ संख्या-108. व्यास, डॉ. लक्ष्मीशंकर (1987). महामना मालवीय और हिन्दी पत्रकारिता. वाराणसी : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

भारतीय पत्रकारिता के अग्रदूत

श्री अरविन्द: राष्ट्र के पत्रकार

भानु कुमार

हम आप श्री अरविंद जितना जानेंगे, खुद की उतनी ही पहचान कर पाएंगे। समृद्ध कर पाएंगे। जीवन की जिस भाव अवस्था में आप हैं और जिन संकल्पों को सिद्ध करने के लिए हम सब प्रयासरत हैं, उनके बीच, हमेशा से श्री अरविंद को नई प्रेरणा देते पाएंगे। वे नया रास्ते की पहचान कराते प्रतीत होंगे-

श्री नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री (29 नवम्बर 2020, मन की बात)

बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी श्री अरविंद का एक पक्ष लेखन और पत्रकारिता का भी है। यह वह पक्ष है जो भारत राष्ट्र के प्रति हमें स्वदेशी अवधारणा से परिचित कराता है और इसीलिए इसका सामने आना अनिवार्य है

आखिर राष्ट्र क्या है? राष्ट्रवाद क्या होता है? भारत कैसे राष्ट्र है? भारत का राष्ट्रवाद कैसे पुरातन है? स्वदेशी क्या है? ऐसे तमाम वैचारिक प्रश्न जिनका सटीक उत्तर हम आज भी भारतीय दृष्टि से खोजने में प्रयासरत हैं, सभी का तर्कपूर्ण और व्यावहारिक विश्लेषण श्री अरविंद के वंदे मातरम के लेखों में मिलता है।

अरविंद को पढ़ने के बाद लगता है भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का जो अध्याय हमें पढ़ाया गया है, वह आधा-अधूरा है। इसमें अरविंद के विचारों के बिना अपूर्णता है। अभी तक भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के बारे में जो भी प्रचलित वैचारिक सामग्री है, उनमें न श्री अरविंद हैं, न उनके द्वारा स्थापित किए गए वैचारिक कार्यों का प्रमाण। संभवत: श्री अरविंद को लेकर इतिहासकारों की अनदेखी उनके व्यक्तिगत स्वार्थ और सत्ता से नजदीकी के कारण रही होगी। भारतीय इतिहास लेखन के पाँचों (इंपीरियलिस्ट, कैंब्रिज, राष्ट्रवादी, मार्क्सवादी और सबल्टन) स्कूलों ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का जो इतिहास उसमें सबसे केंद्रीय विवाद का प्रश्न भारत के राष्ट्र और राष्ट्रवाद को लेकर रहा। इतिहासकारों ने इस विवाद को निरंतर जीवित रखने के लिए राष्ट्रवादी कलम के साधकों जैसे श्री अरविंद और बिपिन चंद्र पाल जैसे लोगों के विमर्शों को मुख्य धारा में आने ही नहीं दिया। समय के साथ इतिहास के पन्नों में दबे शब्द जब जब बाहर आएंगे, एक तरफ हमारे राष्ट्र की संकल्पना को और मजबूती प्रदान करेंगे तो दूसरी तरफ उन इतिहासकारों पर सोचने के लिए विवश होना पड़ेगा, जिसने भारतीय जनमानस से राष्ट्र के विचार पर छल किया है।

1957 में प्रकाशित 'वंदे मातरम एण्ड इंडियन नैशनलिजम' में हरीदास और उमा मुखर्जी लिखते हैं अरविंद के कलम से निकले शब्द तलवार से अधिक धारदार थे। उनका लेखन न सभी से अलग था, बल्कि जनमानस को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला माध्यम भी था। लगभग दो साल के दौरान ही वंदे मातरम ने लोगों के मन में यह बात स्थापित कर दिया कि अंग्रेजों से आजादी लेना, किसी बाजार में मिलने वाली सस्ती वस्तु जैसा नहीं, बल्कि सामर्थ्य से छीनने की जरूरत है। श्री अरविंद ने वंदे मातरम मंत्र के उद्घोषक बंकिम चंद्र को समर्पित एक लेख लिखा। उसमें उन्होंने माना, वंदे मातरम एक ऐसा मंत्र है, जिसने पूरे भारत देश को भक्ति के एक सूत्र से बांध दिया। श्री अरविंद के वंदे मातरम के अध्ययन के बाद पत्रकारिता को लेकर उनकी समझ का भी व्यापक ज्ञात होता है। अपने लेखों में अरविंद ने राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक सहित वैश्विक परिदृश्यों पर बड़े ही खुले मन से लेखनी की है।

परिचय

15 अगस्त, 1872 को श्री अरविंद का जन्म

कलकत्ता में हुआ था। सात वर्ष की उम्र में पढ़ने के लिए इंग्लैंड चले गए। 6 फरवरी 1893 को भारत वापस आए। इसके बाद शुरू हुआ उनका जीवन संघर्ष। पहले बड़ौदा में अधिकारी, फिर कलकत्ता में प्रोफेसर, संपादक, नेता होते हुए एक योगी बने।

उनके योगी, क्रांतिकारी और आध्यात्मिक संत स्वरूप से पूरा भारतीय जनमानस परिचित है। किन्तु इसके इतर वे एक पत्रकार भी थे- राष्ट्रवादी पत्रकार। इस बात की चर्चा बहुत कम मिलती है। तिलक के बाद अरविंद ही थे, जिन्होंने भारत की चेतना में कलम से राष्ट्रवाद का बीज बोया था। तिलक के 'मराठा','केसरी' और अरविंद के वंदे मातरम के शब्दों ने युवाओं को व्यापक स्तर पर प्रेरित किया। यही कारण रहा कि राष्ट्रवादी पत्रकारिता का जनक माना जा माना जाता है।

श्री अरविंद की पत्रकारिता के बारे में देशवासियों को बहुत अधिक जानकारी नहीं रही है। जिसके बारे में जानना नवोदित पत्रकार पीढ़ी के लिए आवश्यक है। श्री अरविंद उन पत्रकारों में एक थे, जिन्होंने समाचार पत्रों के माध्यम से तत्कालीन जनमानस को स्वाधीनता संग्राम के लिए तैयार करने में प्रमुख भूमिका निभाई थी।

स्वतंत्रता संग्राम में प्रवेश

19 जून 1906 को श्री अरविंद ने बड़ौदा कॉलेज से एक साल की छुट्टी लेकर बंगाल आए, किन्तु वह छुट्टी फिर कभी खत्म नहीं हुई। इसके बाद कलकत्ता के राष्ट्रीय महाविद्यालय में कुछ दिनों तक आचार्य के रूप में कार्य किया। साथ ही बंगाल के क्रांतिकारियों का मार्गदर्शन भी करते रहे। इस समय देश में बंगाल विभाजन के बाद राजनीति ने राष्ट्र के सामर्थ्य पर प्रश्न चिन्ह खड़ा कर दिया था। अरविंद इस राष्ट्र की पीड़ा को समझ रहे थे। इस पीड़ा के दर्द को शब्दों की जरूरत थी, जिससे कि राष्ट्र का सामर्थ्य पुनः स्थापित हो सके।

पत्रकार अरविंद

श्री अरविंद का पत्रकारिता के क्षेत्र में पदार्पण 1893 में मराठी साप्ताहिक 'इन्दु प्रकाश' से हुआ था। 26 जून 'भारत और ब्रिटिश संसद' शीर्षक से उनका पहला लेख प्रकाशित हुआ। इसके बाद 16 जुलाई से 27 अगस्त, 1894 के दौरान उनकी सात लेखों की एक श्रृंखला छपी थी। ये लेख उन्होंने 'वन्दे मातरम' के रचयिता एवं बांग्ला के महान साहित्यकार बंकिम चंद्र चटर्जी को श्रद्धांजलि देते हुए लिखे थे। इसके बाद अरविंद ने बंगाली दैनिक 'युगांतर' के लिए भी लिखे। युगांतर की शुरुआत मार्च, 1906 में उनके भाई बरिन्द्र घोष और अन्य साथियों ने किया था।

7 अगस्त, 1906 से वंदे मातरम का प्रकाशन शुरू हुआ। बिपिन चंद्र पाल के साथ सहायक संपादक के रूप में श्री अरविंद जुड़े। शुरुआत में यह दैनिक पत्र था, लेकिन 2 जून 1907 से इसका साप्ताहिक प्रकाशन भी शुरू हो गया। वंदे मातरम का अंतिम अंक 29 अक्टूबर ,1908 को प्रकाशित हुआ था।

श्री अरविंद ने 29 अक्टूबर 1906 को अपने पहले संपादक के रूप में 'कलकत्ता के पास आकाल'लेख लिखा। इस लेख में उन्होंने इस अकाल के लिए अंग्रेजी अधिकारिया की दया पर निर्भर भारतीयों को जगाने का प्रयास किया। अरविंद ने लिखा कि अगर हमें इस तरह की समस्या का समाधान अपने संगठित होने से ही संभव है, अर्थात अपने पहले संपादकीय से उन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ जनमानस में एकता का भाव भरना शुरू कर दिया था।

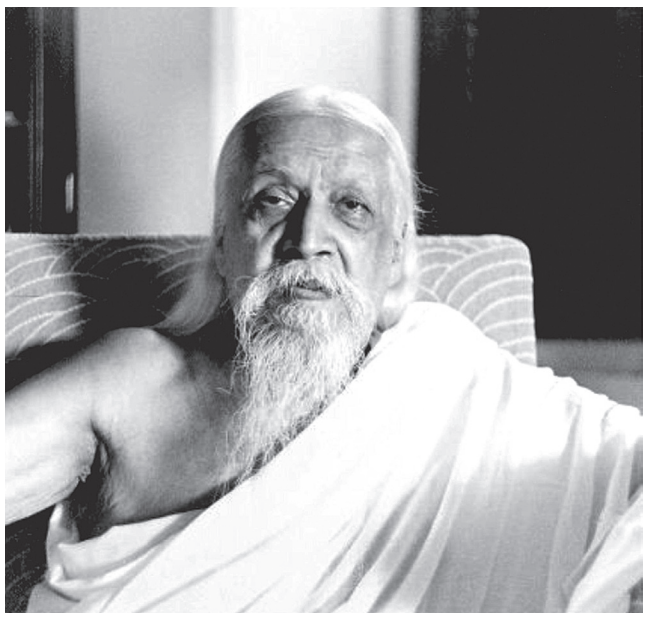

महर्षि अरविंद उन पत्रकारों में से एक थे, जिन्होंने समाचार पत्रों के माध्यम से तत्कालीन जनमानस को स्वाधीनता संग्राम के लिए तैयार करने में प्रमुख भूमिका निभाई थी। वंदे मातरम में अरविंद की पत्रकारिता में स्पष्ट निर्भीकता थी। वे राष्ट्रवाद की चेतना के लिए कृत संकल्प थे। इस मार्ग में जो भी आए, अरविंद ने सभी के मनसा पर प्रश्न उठाए, चाहे वे अंग्रेज थे या भारतीय। अरविंद के वंदे मातरम के अध्ययन से एक बात स्पष्ट जान पड़ती है कि एक तरफ वो कांग्रेस की जड़ता को तोड़ रहे थे, दूसरी तरफ पश्चिम के दिखावटी विचार के मिथ को भारतीय के सामने उजागर कर रहे थेष साथ ही राष्ट्रीय चरित्र की उस फौज को भी खड़ा कर रहे थे, जिसके लिए स्वराज्य एक मात्र साधना था।

अरविंद सम्पादन कला में इतने निपुण साधक थे कि उनके विरोधी चाहते हुए भी उन पर प्रत्यक्ष आरोप नहीं लगा पाते थे। उनके लेख के चतुराई के बारे में तत्कालीन न्यूज पेपर स्टेट्समैन के संपादक ने लिखा की वंदे मातरम की पंक्ति पंक्ति में राजद्रोह भरा है, परंतु वह इतनी अच्छी तरह छिपाया गया है कि कहीं भी कानून को पकड़ में नहीं आ सकता । इस बात का दूसरा प्रमाण तत्कालीन वायसराय के सचिव के निजी पत्रों से भी मिलता है, जिसमें वो लिखते है कि इस समय जो देश राजद्रोह की लहर चल रही है उसकी जड़ श्री अरविंद है, जो चुप-चाप अपने पत्र के माध्यम से बागियों की सेना तैयार कर रही है।

एक समय ऐसा भी था, जब बंगाल के लोगों को डरपोक और कमजोर माना जाता था । मेकॉले ने तो यहाँ तक लिख दिया था, कि बंगालियों को अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह करना भेड़-बकरियो का खूंखार भेड़ियो से, मानव का दानव से वैर मोल लेना है। किन्तु वो श्री अरविंद हीं थे जिहोने भवानी मंदिर के निर्माण से लेकर वंदे मातरम के माध्यम से बंगाल की सुसुप्त चेतना को न सिर्फ जागृत

किया बल्कि उस ज्वालामुखी में बदल दिया, जिससे अंग्रेजी शासन भय खाने लगी। श्री अरविंद के कलम के शब्दों का ही प्रभाव था कि बंगाल में मृत्यु से खेलने वाले ऐसे-ऐसे युवकों का जन्म हुआ कि अंग्रेज उनके नाम से काँपने लगे। उनकी वीरता, देश के लिए मिट जाने की क्षमता अपने हाथों फाँसी का फंदा डाल लेने का साहस देखकर जनता उनकी राख का तावीज बनाकर पहनने लगी।

श्री अरविंद की पत्रकारिता की भाषा अंग्रेजी थी। उनके लेखों में अंग्रेजी के कठिन शब्दों और वाक्यों के संरचना को पढ़कर लगता है, उनका ध्येय अपने पत्रकारिता से न सिर्फ जनमानस को राष्ट्र की चेतना से जोड़ना है बल्कि अंग्रेजों और उनके वफादारों के बुद्धिजीवी और ज्ञानी होने के दंभ को तोड़ना भी था। श्री अरविंद ने जब संपादक के रूप में वंदे मातरम में शामिल हुए तो उन्होंने एक कंपनी की स्थापना कारवाई और उस बोर्ड ऑफ डायरेक्टर में कई लोगों को शामिल किया। यही कारण रहा कि वंदे मातरम के लेखों की जिम्मेदारी कभी भी व्यक्तिगत नहीं हो पाई।

अंग्रेजी में प्रकाशित वंदे मातरम अपने काल खंड का सबसे अधिक लोकप्रिय पत्र था, जिसने हजारों युवकों के अंदर नई जान ला दी। अरविंद ने वंदे मातरम के नारे में इस पत्र में ऐसी शक्ति भर दी कि विदेशी सरकार का एक-एक आदमी उनसे भड़क उठता था।

धर्म और कर्मयोगिन

अरविंद ने अपने राजनीतिक जीवन के परित्याग के बाद दो और पत्रिकाओं का भी सम्पादन किया, बांग्ला में 'धर्म' और अंग्रेजी में 'कर्मयोगिन'। इस समय तक अरविंद के मत में व्यापकता आ चुका था। उनके अनुसार केवल सरकार का रूप बदलना उनका लक्ष्य नहीं है बल्कि राष्ट्र को गढ़ना उद्येश्य है। बाद में अंग्रेजी पत्र 'आर्य' का भी संपादन उनके द्वारा किया गया।

अरविंद का राष्ट्र

अरविंद के जीवन में राष्ट्र और मातृभूमि और पूर्ण-स्वराज्य हमेशा केन्द्रीय प्रश्न के रूप में रहा है। इन्हीं प्रश्नों के उत्तर को समझने के लिए उन्होंने अपने जीवन के सभी खंडों में प्रयास किया। बड़ौदा में रहते हुए "राष्ट्र क्या है? हमारी मातृभूमि क्या है? इसे समझने और समझाने का प्रयास किया। अरविंद के अनुसार राष्ट्र कोई शब्द अलंकार नहीं है बल्कि, करोड़ों व्यक्तियों के शक्तियों से मिलकर बना एक महान शक्ति की इकाई है।[पृ. 12] अरविंद के राष्ट्र की अवधारणा पर एक महत्वपूर्ण भाषण है। 15 जनवरी 1908 का यह भाषण मुंबई में हुआ था। इसे 19 जनवरी 1908 को लेख के रूप में प्रकाशित किया गया। इसका विषय 'राष्ट्रीय शिक्षा' था, एवं संदर्भ था, गोखले द्वारा कलकत्ता अधिवेशन में पारित 'राष्ट्रीय शिक्षा' प्रस्ताव को 1907 के सूरत अधिवेशन में बदलने का था। इस अधिवेशन में प्रस्ताव का नाम परिवर्तित कर 'स्वतंत्र शिक्षा व्यवस्था' कर दिया गया। अरविंद इस बात से बहुत नाराज थे। उन्होंने इस बात का प्रखर विरोध करते हुए लिखा की राष्टीय शिक्षा के प्रस्ताव के नाम को बदला जाना काँग्रेस के नेताओं की राष्ट्रीय शब्द के संकीर्ण समझ को दर्शाता है। उन्होंने राष्ट्रीयता को समझाने के लिए राष्ट्र शब्द को तर्कपूर्ण रूप में समझाया। जब भी हम भारत में राष्ट्र की बात करते हैं तो भौगोलिक, एतहासिक, भावनात्मक की स्मृति हमारे समक्ष बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है। अरविंद ये स्पष्ट रूप से मानते थे कि जिसप्रकार मोक्ष के लिए प्राणी सब कुछ छोड़कर मोक्ष पाने में रम जाता है उसी प्रकार इस राष्ट्र के पुनरुत्थान में सभी को रम जाना चाहिए। अरविंद की यह बातें भले ही साधारण लगती हो, लेकिन सत्य यही है कि राष्ट्र और सभ्यता के निरंतर जीवित रखने के लिए यह एक मात्र सत्य है।

अरविंद के लिए स्वराज

सूरत अधिवेशन के विवाद के बाद अरविंद ने महाराष्ट्र के कई शहरों में भाषण दिया था। 24 जनवरी 1908 को नासिक में उनका भाषण हुआ । अगले दिन यह भाषण नासिक वृत्त में प्रकाशित हुआ। वैसे ये भाषण उनका था, किन्तु प्रकाशित लेख को पढ़ने के बाद ज्ञात होता है कि उनके वक्तव्य में भी संपादन की स्पष्ट कला थी। स्वराज का अर्थ विषय पर इस भाषण में उन्होंने इसकी सबसे व्यवहारिक परिभाषा लोगों के समक्ष रखी थी। मेरे अपने अध्ययन के अनुसार इतनी स्पष्ट परिभाषा गांधी और तिलक को पढ़कर भी नहीं होता है। स्वराज्य का अर्थ समझाते हुए उन्होंने कहा था, 'स्वराज राष्ट्र का जीवन है, साथ हीं इसी अमृत पर राष्ट्र टिका हुआ होता है। स्वराज ही वो निश्चित मार्ग है जिसपर राष्ट्र को मोक्ष की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार वायु के बिना जीवन संभव नहीं है, उसी प्रकार स्वराज के बिना राष्ट्र का अस्तित्व भी संभव नहीं है। उन्होंने इतिहास का उदाहरण देते हुए कहा वो सभी राष्ट्र समाप्त हो गए जहां स्वराज नहीं रहा।

अरविंद शब्दों से लोगों को उद्वेलवित करने में सफल हुए थे। नासिक के इसी भाषण में महाराष्ट्र के लोगों से निवेदन करते हुए कहा 'इस आर्यभूमि के एक छोर पर बंगाली है तो दूसरे छोर पर आप, इस भूमि के स्वराज के लिए हम सभी को सामूहिक प्रयास करते हुए स्वराज स्थापित करना चाहिए। चूंकि यहाँ के लोगों ने शिवाजी के नेतृत्व में इस्लामिक आक्रान्ताओं से लड़कर यहाँ स्वराज स्थापित किया था, यह आपके बहादुरी का उदाहरण है और आज देश पुनः स्वराज की मांग कर रहा है, यह आपका दायित्व है कि इसके पुनर्स्थापना के लिए आप पुनः प्रयास करें।

इक्स्ट्रीमिस्ट (गरमदल) नहीं राष्ट्रवादी

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में कॉंग्रेस के दो धडे की चर्चा होती है। एक नरम दल दूसरा गरम दल। लेकिन अरविंद के लेखों के अध्ययन से हमें यह पता चलता है कि जिसे हम इक्स्ट्रीमिस्ट या गरम दल के रूप में जान रहे थे वे अपने-आपको राष्ट्रवादी धड़ा मान रहा था और इसे परिभाषित भी कर रहा था कि क्यों उनका धड़ा राष्ट्रवादी है। 26 अप्रैल 1907 के लेख "नैशनलिस्ट, नोट इक्स्ट्रीमिस्ट" में अरविंद लिखते हैं की अंग्रेजों के वफादार राजनीतिक वर्ग ने सीमित राजनीतिक समझ और स्वार्थ के कारण राष्ट्रवादियों को इक्स्ट्रीमिस्ट घोषित कर दिया है। अरविंद अपने स्पष्टवादिता का परिचय देते हुए अपने लेख में गरम दल के नेता डा. रास बिहारी घोष के समझ पर भी प्रश्न उठाते हैं।

अरविंद के अनुसार भारत में तीन दल हैं। पहला वफादार, जोकि भारत में अंग्रेजों के शासन में सीमित हिस्सेदारी से संतुष्ट हैं और मानते हैं कि भारतीय शासन करने के योग्य नहीं है। दूसरा मॉडरेट, जो अंग्रेजों के अधीन स्वराज की मांग करते हैं एवं मानता है कि अभी भारत अभी बहुत कमजोर है और आजादी पाने के लिए तैयार नहीं है, और तीसरा धड़ा है राष्ट्रवादियों का, जिन्हें केवल और स्वराज से कम कुछ भी नहीं चाहिए और भारत के लोग सामर्थ्यवान है आजादी के लिए। श्री अरविंद ने सूरत अधिवेशन के काँग्रेस विभाजन पर भी निडर भाव से लिखा, जिसमें उन्होंने तत्कालीन मॉडरेट नेताओं के सोच और मंशा पर व्यापक रूप से प्रश्न खड़ा किया। अरविंद के लेखों के अध्ययन से पता लगता है किस प्रकार स्वतंत्र भारत में इतिहास के एक पक्ष को कैसे अनदेखा कर दिया गया है।

अरविंद और राष्ट्रवाद

भारत में राष्ट्रवाद की अवधारणा पर इतिहास और राजनीतिक शास्त्र के बुद्धिजीवियों में व्यापक बहस चलते रहता है, किन्तु जन साधारण को समझ आ सके न हीं ऐसी परिभाषा आज तक उन्होंने दिया न हीं साधारण परिभाषा को स्वीकार्य करने दिया। यही कारण है कि आज भी देश में सबसे में यह विवाद निरंतर चला आ रहा है।

राष्ट्रवाद पर अरविंद के 16 नवंबर 1907 के लेख को पढ़ने के बाद संभवत: राष्ट्रवाद की परिभाषा को समझने में बड़ी आसानी होगी। अरविंद लिखते हैं की भारत में राष्ट्रवाद न ही कर्जन के विरोध से उत्पन्न वाद है काँग्रेस नेताओं के ब्रिटिश अधिकारियों में विश्वास खोने के कारण उत्पन्न रोष की देन है। वे आगे लिखते हैं, भारत में राष्ट्रवाद न हीं कॉग्रेस के पंडाल में जन्म लिया है, न बॉम्बे प्रेजिडन्सी एसोसिएशन में, न हीं तथाकथित अर्थशास्त्रियों और ज्ञानियों के मण्डल में, न हीं यह गोखले और मेहता के दिमाग की उपज है, न हीं सुरेन्द्रनाथ और ललमोहन के जुबान से, न हीं संभ्रांत अंग्रेजीयत को मनाने वालों से। राष्ट्रवाद का जन्म कृष्ण के तरह भारत के बंदी-गृह में हुआ है, इसका जन्म और वृद्धि भारतीयों के मन से हुआ है। [पृ 747] अरविंद के राष्ट्रवाद की यह परिभाषा तत्कालीन समय में पश्चिम के राष्ट्रवाद का तो जवाब था हीं साथ हीं भारतीय राष्ट्रवाद के उस सिद्धांत का भी आधार है जिस पर वर्तमान जनमानस इस राष्ट्रवाद के तत्वों को स्वीकार्य करते हैं। भारत में राष्ट्रवाद का जन्म पुरातन काल में हुआ है और यह निरंतर चला आ रहा है।

स्वदेशी और अरविंद

29 नवंबर 2020 को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने अपने मन के बात में श्री अरविंद के स्वदेशी के सिद्धांत की चर्चा की। प्रधानमंत्री ने श्री अरविंद के स्वदेशी के अर्थ को समझाते हुए कहा कि विदेशों से कुछ सीखना गलत नहीं है, जहाँ जो नया है वहां से हम सीखें जो हमारे देश में अच्छा हो सकता है उसका हम सहयोग और प्रोत्साहन करें, यही तो आत्मनिर्भर भारत अभियान में, वोकल फॉर लोकल के मंत्र का भी मूल भावना यही है। प्रधानमंत्री ने आगे कहा स्वदेशी अपनाने को लेकर अरविंद ने जो कुछ कहा वो आज हर देशवासी को पढ़ना चाहिए। इसी संदर्भ में जब हमने अरविंद के स्वदेशी के अर्थ का अध्ययन करना शुरू किया तो, वंदे मातरम के पन्नों में स्वदेशी न केवल एक मंत्र के रूप में मिला बल्कि एक योजना, एक तंत्र और एक भाव के रूप में ज्ञात हुआ। कुल मिलाकर स्वदेशी भारत के आर्थिक राष्ट्रवाद का मंत्र था, जिसकी पूरी योजना वंदे मातरम में अरविंद ने परिभाषित किया। उनके विचार न सिर्फ आज भी प्रासंगिक है बल्कि हमें अपने नए संदर्भों के खोज के लिए भी प्रेरित करता है।

11 जुलाई 1907 को वंदे मातरम में श्री अरविंद ने एक लेख लिखा था, औद्योगिक भारत। श्री अरविंद के अनुसार भारत के इतिहास को पढ़ने के बाद स्पष्ट समझ में आता है कि अंग्रेजी नीतियों ने भारत के औद्योगिक संरचनाओं को न सिर्फ नष्ट किया है बल्कि हमें अपने ऊपर परजीवी बना लिया है। इस स्थिति से हम केवल राष्ट्रीय शिक्षा के माध्यम से हीं हो सकते है, जैसा की जर्मनी ने अपने औद्योगिक विकास के लिए किया है। राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था स्थापित करते हुए औद्योगिक भारत का निर्माण करना होगा, जिससे भारत के लोग आत्मनिर्भर बन सकें। अर्थात आपकी आत्मनिर्भरता बिना स्वदेशी शिक्षा व्यवस्था के संभव नहीं है, ये बात अरविंद आज से 100 वर्ष पूर्व ही बता चुके हैं।

देश में नई शिक्षा नीति लागू करने की पहल चल रही है। इस शिक्षा नीति के निर्माण का वैचारिक स्तंभ स्वदेशी रखा गया है। सरकार इसमें स्वदेशी तत्वों के माध्यम से राष्ट्र के सर्वांगीण विकास की बात कर रही है लेकिन इन सभी बातों की पृष्टभूमि अरविंद के लेखन में आज से लगभग 100 वर्ष पूर्व ही दिखता है। 13 जुलाई 1907 के अपने लेख 'शिक्षा में स्वदेशी' का विश्लेषण करते हुए वे लिखते हैं की शिक्षा में स्वदेशी का अर्थ यह बिल्कुल नहीं है कि आप भारतीय शिक्षकों से पढे या सिर्फ भारतीय संचालित संस्थानों में पढे बल्कि इसका अर्थ है हम उस प्रकार की शिक्षा ग्रहण करें जो हमारी आवयशकता और स्वभाव से मेल खाए।

पत्रकारिता की ख्याति

अरविंद की पत्रकारिता की लोकप्रियता का ही कारण था कि कलकत्ता के लालबाजार की पुलिस अदालत के बाहर हजारों युवा एकत्र होकर वन्दे मातरम के नारे लगाते थे, जहां अरविंद के मामले की सुनवाई चल रही थी। सितंबर 1908 में वन्दे मातरम का प्रकाशन बंद हो गया। जिसके बाद उन्होंने 15 जून, 1909 को कलकत्ता से ही अंग्रेजी साप्ताहिक कर्मयोगी और 23 अगस्त, 1909 को बंगााली साप्ताहिक धर्म की शुरूआत की, जिनका मूल स्वर राष्ट्रवाद ही था। श्री अरविंद ने इन दोनों पत्रों में राष्ट्रवाद के अलावा सामाजिक समस्याओं पर भी लिखा।

श्री अरविंद का भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के ऐसे राष्ट्रवादी थे, जिनके कलम से जनमानस को राष्ट्रवाद की शक्ति मिलती थी तो वहीं अंग्रेजों में भय का संचार होता था। श्री अरविंद के पत्रकारिता में राष्ट्रवादी स्वर इतने प्रखर थे के उनका प्रभाव भारत में आज भी व्याप्त है। 5 दिसंबर 1950 को श्री अरविंद ने योगी के रूप में देह तो त्याग दिया किन्तु राष्ट्र योगी के रूप में उनके गढ़े शब्द आज भी राष्ट्रवाद की दिया को प्रदीप्तमान कर रही है।

भारतीय पत्रकारिता के अग्रदूत

डॉ. कमलकिशोर गोयनका

गांधी जी की पत्रकारिता का मूलाधार राष्ट्रीयता

गांधी के लिए पत्रकारिता कोई साध्य नहीं, बल्कि साधन था। यह उनके लिए साधन था आमजन की सेवा एवं राष्ट्रीयता का। एक दृष्टि

गांधी के दक्षिण अफ्रिका पहुँचने और वहाँ से इंडियन ओपिनियन का पहला अंक 4 जून, 1903 (पहले अंक पर यही तारीख है पर बाजार में 6 जून, 1903 को पहुँचा) तक लगभग दस वर्ष का समय व्यतीत हो चुका था। इन दस वर्षों में गांधी के कार्यों की सूची काफी लंबी है, जिसमें वकालत करके धन कमाने के स्थान पर प्रवासी हिंदुस्तानियों के अधिकार के लिए संघर्ष की घटनाएँ ही अधिक हैं। गांधी ने मताधिकार के मामले में हिंदुस्तानियों को जोड़कर एक सूत्र में बाँध लिया था और अब उन्हें राजनीतिक रूप में संघर्षशील बनाना आवश्यक था। इसके लिए उन्होंने 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' से प्ररित होकर 22 मई, 1894 को 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' की स्थापना की जो उनकी राष्ट्रीयता का ज्वलंत प्रमाण है। गांधी ने लिखा भी है कि दक्षिण अफ्रिका के कंजर्वेटिव (पुराणपंथी) इसे पसंद नहीं करेंगे, पर कांग्रेस तो हिंदुस्तान की प्राण थी। उसकी शक्ति तो बढ़नी ही चाहिए। उस नाम को छिपाने में अथवा अपनाते हुए संकोच करने में नामर्दी की गंध आती थी। अतएव मैंने अपनी दलीलें पेश करके संस्था का नाम 'कांग्रेस' ही रखने का सुझाव दिया और सन् 1894 के मई महीने की 22 तारीख की नेटाल इंडियन कांग्रेस का जन्म हुआ।[1] इस प्रकार गांधी ने हिंदुस्तान के प्राण तत्व को ही नेटाल इंडियन कांग्रेस के रूप में स्थापित किया और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के दादा भाई नौरोजी जैसे अध्यक्षों के साथ बराबर पत्र व्यवहार एवं संपर्क रखा। गांधी जुलाई, 1906 में भारत गए और राजकोट में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'हरी पुस्तिका' प्रकाशित की और बंबई, पूना, मद्रास, कलकत्ता आदि नगरों में उसे वितरित किया और दक्षिण अफ्रिका के हिंदुस्तानियों की दुख भरी तथा अपमानजनक स्थितियों की जानकारी दी। इस यात्रा के बाद जब गांधी दक्षिण अफ्रीका लौटे तो इस 'हरी पुस्तिका' के विवरणों से क्रुद्ध गोरों की भीड़ ने पहले तो जहाज से उतरने नहीं दिया और फिर उन पर जानलेवा हमला किया। गांधी की बड़ी मुश्किल से जान बची, किंतु गांधी ने हमलावर गोरों को समझा करके हिंदुस्तानियों के प्रति सम्मान में वृद्धि कर ली।

गांधी के सभी समाचार पत्रों के नामकरण में भारतीय विचार-दृष्टि ही केंद्र में रही। 'इंडियन ओपिनियन' में तो स्पष्टतः भारतीय दृष्टिकोण तथा भारतीय विचार पक्ष था, सन 1919 में निकाले गए समाचार-पत्रों में 'यंग इंडिया' में युवा भारत था और 'नवजीवन' में भारत के नए युग में प्रवेश करने का विचार था तथा 'हरिजन' में भी सभी भारतीय समाहित थे, क्योंकि सभी ईश्वर (हरि) के प्रिय (जन) थे। इन नाम कारणों से ही सिद्ध हो जाता है कि गांधी की पत्रकारिता की बुनियाद भारत-प्रेम और राष्ट्रीयता थी। दक्षिण अफ्रीका में 'इंडियन ओपिनियन' गांधी के दो सहयोगियों ने आरंभ किया। मदन जी व्यावहारिक तथा मनसुखलाल नाजर। नाजर 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' के सेक्रेटरी थे और गांधी के ही साथ थे। नाजर इसके पहले संपादक बने। मदनजीत के पास छापाखाना था

और समाचार-पत्र का विचार भी उन्हीं का था। नाजर संपादक थे परंतु संपादन का सच्चा बोझ तो गांधी पर ही था।

गांधी ने फीनिक्स आश्रम से जब इसका पहला अंक प्रकाशित किया तो उन्होंने इसके मुद्रण एवं वितरण की कठिनाइयों का रोचक विवरण 'पहली रात' शीर्षक से अपनी आत्मकथा में दिया। गांधी ने इस प्रथम अंक से लेकर वर्ष 1914 के अंत तक, जब वे स्थाई रूप से भारत आए, कोई ही ऐसा अंक होगा जिसमें लिखा ना हो तथा जिसमें गांधी ने अपनी आत्मा को उड़ेल कर ना रखा हो। 'इंडियन ओपिनियन' का पूर्ण रूप से उपयोग दक्षिण अफ्रीका के हिंदुस्तानियों के हितों के लिए था। उसमें उनकी दुर्दशा के प्रसंग थे, प्रतिकूल कानूनों की व्याख्या तथा विरोध था, पंजीकरण के सफल विरोध के समाचार थे, 'साप्ताहिक डायरी' थी जिसे पाठक रुचि से पढ़ते थे, सत्याग्रह के संबंध में विचारों का प्रकाशन था, भारत तथा विश्व की महत्वपूर्ण खबरें थीं, हिंदुस्तानियों की एकता तथा जागृति का संदेश था तथा हिंदुस्तानियों के देशप्रेम की प्रशंसा थी। गांधी ने 'इंडियन ओपिनियन' के जो उद्देश्य स्पष्ट किए थे, दक्षिण अफ्रीका के हिंदुस्तानियों के कल्याण तथा एकता के लिए थे। गांधी ने 'इंडियन ओपिनियन' (गुजराती) के 28 अप्रैल 1906 के अंक में इसके तीन हेतुओं की चर्चा करते हुए लिखा, "एक तो हमारे दुख शासनकर्ताओं के सामने, गोरों के सामने, इंग्लैंड में, दक्षिण अफ्रीका में और भारत में जाहिर करना। दूसरा यह कि हममें जो भी दोष हो उन्हें बताना और उन्हें दूर करने के लिए लोगों से कहना। तीसरा और कहे तो सबसे बड़ा उद्देश्य हिंदू-मुसलमानों के बीच का भेद तोड़ना और साथ ही गुजराती, तमिल. कलकत्ते वाले जैसी खाइयों को पाटना। भारत में राजकर्ताओं की विचारधारा दूसरे प्रकार की मालूम होती है। वहाँ पर यह नहीं दिखता कि वे हममें एकता पैदा होने देना चाहते हैं। दक्षिण अफ्रीका में हम सब थोड़े-थोड़े हैं, इस पर एक सी मुसीबतें हैं, कोई-कोई बंधन भी यहाँ ढीले हो गए हैं, इसलिए हम एक दिल होने का प्रयोग यहाँ बहुत ही आसानी से कर सकते हैं। इन विचारों को प्रजा में दृढ़ करना भी इस पत्र का हेतु है। ..... पत्र शिक्षा का बड़ा साधन है। यह समझना बहुत जरूरी है कि यह अखबार मेरा नहीं, बल्कि हर एक भारतीय भाई का है।[2] इसके डेढ़ वर्ष के बाद गांधी ने लिखा कि हमारा उद्देश्य सेवा करना और शिक्षा एवं स्वाभिमान में वृद्धि करना है।[3] वह 23 अप्रैल, 1910 को 'इंडियन ओपिनियन' में फिर लिखते हैं कि समाचार पत्र का उद्देश्य राज्य और प्रजा दोनों का सुधार तथा लोकसेवा है।[4] इसके ढाई वर्ष उपरांत उन्होंने लिखा, इस समाचार-पत्र को प्रकाशित करने के दो उद्देश्य हैं - दक्षिण अफ्रीका के ब्रिटिश भारतीयों की शिकायतों को लोगों के सामने लाना और उन्हें दूर करने के उपाय करना तथा साथ ही जीवन को ऊंचा करने वाली पाठ्य सामग्री प्रकाशित करके जनशिक्षण का कार्य करना।[5] गांधी इसके उद्देश्यों की फिर चर्चा करते हैं, "इस अखबार के प्रकाशन के केवल दो उद्देश्य हैं - एक तो यह कि इस देश में भारतीयों को जो कष्ट सहने पड़ते हैं उन्हें दूर करने का प्रयत्न किया जाए और दूसरा यह कि सुनीति की शिक्षा का प्रचार किया जाए। यह दूसरा कार्य मुख्यत: हमारी अपनी जीवन-पद्धति सुधारने पर निर्भर है।"[6] गांधी के विचार में पत्रकारिता का उद्देश्य आजीविका कमाना नहीं है, बल्कि लोक-शिक्षा ही उसका मुख्य कार्य है।[7]

गांधी ने फीनिक्स आश्रम से जब इसका पहला अंक प्रकाशित किया तो उन्होंने इसके मुद्रण एवं वितरण की कठिनाइयों का रोचक विवरण 'पहली रात' शीर्षक से अपनी आत्मकथा में दिया। गांधी ने इस प्रथम अंक से लेकर वर्ष 1914 के अंत तक, जब वे स्थाई रूप से भारत आए, कोई ही ऐसा अंक होगा जिसमें लिखा ना हो तथा जिसमें गांधी ने अपनी आत्मा को उड़ेल कर ना रखा हो

गांधी की यह स्वेदेशाभिमान की भावना उनमें ही नहीं थी, बल्कि उनके सहयोगी कर्मचारियों में भी थी। तभी गांधी ने 28 अप्रैल, 1906 को 'इंडियन ओपिनियन' में लिखा, "हमारा ख्याल है कि इसकी मदद करना हर एक भारतीय का फर्ज है। पत्र के प्रकाशन से संबंधित सभी लोगों की स्थिति ऐसी है कि वे अपना निर्वाह दूसरे साधनों से कर सकते हैं। फिर भी, हम मानते हैं कि वह पत्र के साथ इसलिए बँधे हुए हैं कि वे अपने हृदय में स्वदेशाभिमान की चिंगारी जगाए रखते हैं।"[8] गांधी की राष्ट्रीयता और देशभक्ति उन्हें तथा उनके साथियों को लोकसेवा में प्रवृत्त करती है।

इसी कारण गांधी 'इंडियन ओपिनियन' को सभी भारतीयों की सार्वजनिक संपत्ति मानते थे।[9] गांधी ने अपनी 'आत्मकथा' में लिखा कि 'इंडियन ओपिनियन' मेरे जीवन के कुछ अंश का निचोड़ है तथा इस अखबार ने हिंदुस्तानी समाज की सेवा की है।.....इस अखबार के बिना सत्याग्रह की लड़ाई चल नहीं सकती थी। पाठक समाज इस अखबार को अपना समझ कर इसमें से लड़ाई का और दक्षिण अफ्रीका के हिंदुस्तानियों की दशा का सही हाल जानता था। .....निष्कर्ष था कि समाचार-पत्र सेवा-भाव से ही चलाने चाहिए (तथा) समाचार-पत्र एक जबरदस्त शक्ति है।[10] गांधी ने इस तरह लोक-शिक्षा और लोक-सेवा के साथ लोग-जागृति एवं लोक-संघर्ष को जोड़कर 'इंडियन ओपिनियन' को संपूर्ण हिंदुस्तानी जाति का मुख-पत्र बनाया और दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी हिंदुस्तानियों और हिंदुस्तान के अपने देश बंधुओं को एक मंच पर लाकर उनकी मुक्ति का संघर्ष एवं दर्शन प्रदान किया।

गांधी ने 'इंडियन ओपिनियन' (1904 -1914 तक) की बुनियाद और उसके भवन की संरचना अपनी अपराजेय राष्ट्रीयता, देश-भक्ति और भारतीयता पर स्थापित की। इसका सबसे ज्वलंत प्रमाण उनकी विश्व-प्रसिद्ध पुस्तक 'हिंद स्वराज्य' है जो मूल रूप में 'इंडियन ओपिनियन' के गुजराती पाठकों के लिए गुजराती में लिखी गई थी और उसके सभी 20 परिच्छेद सिलसिलेवार लेखों के रूप में 'इंडियन ओपिनियन' के गुजराती स्तंभ में छपे थे।

गांधी वर्ष 1909 में लंदन गए थे तो वहाँ क्रांतिकारी स्वराज्य-प्रेमी भारतीय युवकों (जिनमें वीर सावरकर भी थे) से मिले थे। गांधी की इन नवयुवकों से जो बातचीत हुई थी वही 'हिंद स्वराज्य' की प्रेरणाभूमि थी। गांधी ने 'हिंद स्वराज्य' की भूमिका में लिखा था, "1909 में लंदन से दक्षिण अफ्रीका लौटते हुए जहाज पर हिंदुस्तानियों के हिंसावादी पंथ को और उसी विचारधारा वाले दक्षिण अफ्रीका के एक वर्ग को दिए गए जवाब के रूप में यह लिखी गई थी। लंदन में रहने वाले हर एक नामी अराजकतावादी हिंदुस्तानी के संपर्क में मैं आया था। उनकी शूरवीरता का असर मेरे मन पर पड़ा था, लेकिन मुझे लगा कि उनके जोश ने उल्टी राह पकड़ ली है। मुझे लगा कि हिंसा हिंदुस्तान के दुखों का इलाज नहीं है और उसकी संस्कृति को देखते हुए आत्मरक्षा के लिए कोई अलग और ऊँचे प्रकार का शस्त्र काम में लाना चाहिए। .....यह (पुस्तक) देश-धर्म की जगह प्रेम-धर्म सिखाती है, हिंसा की जगह आत्मबलिदान को रखती है, पशुबल से टक्कर लेने के लिए आत्मबल को खड़ा करती है। .....हिंदुस्तान अगर प्रेम के सिद्धांत को अपने धर्म के एक सक्रिय अंश के रूप में स्वीकार करे और उसे अपनी राजनीति में शामिल करें, तो स्वराज्य स्वर्ग से हिंदुस्तान की धरती पर उतरेगा।"[11]

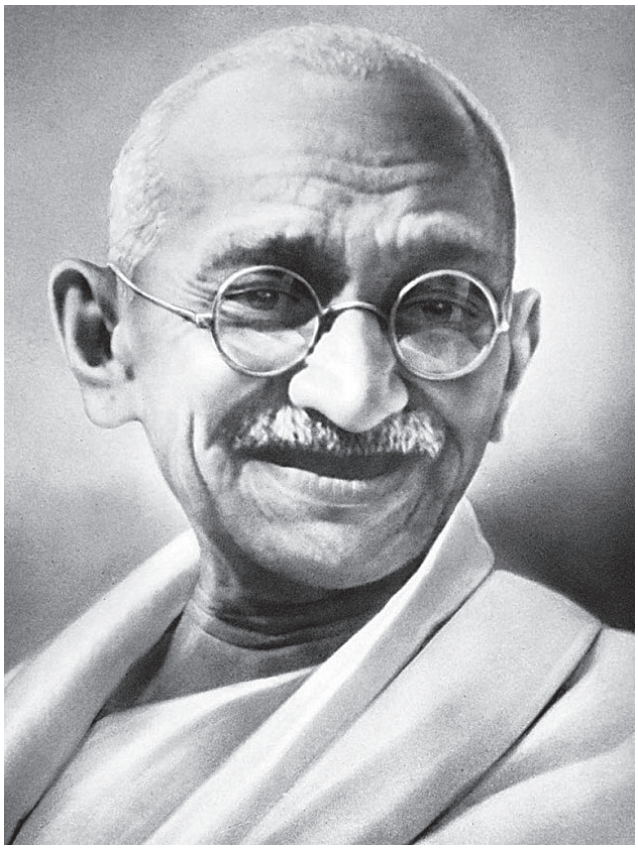

गांधी का यह वक्तव्य आंशिक सत्य का ही प्रतीक है और 'हिंद स्वराज्य' केवल हिंसा के विरुद्ध अहिंसा एवं आत्मबल की श्रेष्ठता का ही आख्यान नहीं है, वह भारतीय संस्कृति, जीवन-पद्धति, मानवीय मूल्यों की श्रेष्ठता एवं योग के नवजागरण का शंखनाद है। गांधी वर्ष 1915 में भारत आने से लगभग 6 वर्ष पूर्व ही स्वराज्य के साथ स्व-संस्कृति, स्व-शिक्षा, स्व-भाषा तथा स्व-मूल्यों की स्थापना के संबंध में चिंतन कर रहे थे तथा एक प्रकार से वह अपना जीवन-दर्शन को भी स्पष्ट कर रहे थे।

यह वर्ष 1909 की पुस्तक 'हिंद स्वराज्य' के लेख 'इंडियन ओपिनियन' में दक्षिण अफ्रीका के बहुसंख्यक गुजराती-भाषी हिंदुस्तानियों के लिए लिखे गए थे, परंतु इनमें कहीं भी दक्षिण अफ्रीका का वर्णन नहीं है। यह लेख भारत की गुलामी, समाज की दुर्बलताओं, यूरोप की सभ्यता के कुप्रभावों, भारतीय जीवनशैली एवं संस्कृति की श्रेष्ठता तथा स्वराज्य की धारणा को सबल तर्कों के साथ प्रस्तुत करते हैं।

गांधी की पत्रकारिता में राष्ट्रीयता ही ऐसा मूलाधार है जो भारतीय पत्रकारिता की आधारशिला रखता है और पराधीन भारत में पत्रकारिता के लिए सबसे प्रबल एवं स्वीकार्य विचार स्तंभ एवं प्रतिमान बनता है। गांधी ने वैसे तो 'इंडियन ओपिनियन' के गुजराती पाठकों के लिए 'हिंद स्वराज्य' के लेख लिखे थे, परंतु उसका अंग्रेजी अनुवाद करके उन्होंने भारत की विशाल जनता ही नहीं विश्व के मानव-समुदाय के सम्मुख अपने राष्ट्रीय चिंतन एवं प्रतिबद्धताओं को सहज सुलभ बना दिया। गांधी ने 'हिंद स्वराज्य के चिंतन को ही भारत में आकर अपनी स्वाधीनता-संग्राम का आधार बनाया और उसमें संशोधन की उन्हें कभी आवश्यकता अनुभव न हुई। इस प्रकार गांधी की पत्रकारिता से ही भारतीय स्वाधीनता के संघर्ष की विचारभूमि तैयार हुई और पूरा राष्ट्र गांधी के साथ खड़ा हुआ।

गांधी ने दक्षिण अफ्रीका से भारत आकर वर्ष 1919 में 'नवजीवन' गुजराती तथा 'यंग इंडिया' (अंग्रेजी) साप्ताहिक समाचार-पत्र निकाले और इनके उपरांत 'हरिजन' साप्ताहिक-पत्र निकाला। ये भी 'इंडियन ओपिनियन' के समान समाचार-पत्र न होकर विचार-पत्र थे और इनका मूल आधार भी राष्ट्रीयता ही था। 'इंडियन ओपिनियन' के संपादन-प्रकाशन में राष्ट्रीयता के जिन तत्वों की प्रधानता थी, इन साप्ताहिक पत्रों के जन्म और प्रकाशन में भी वही तत्व प्रेरक तथा सक्रिय थे। गांधी की पत्रकारिता का मंच बदला था, विचार नहीं बदले थे क्योंकि दक्षिण अफ्रीका और भारत दोनों ही स्थानों पर प्रवासी भारतीयों एवं भारत की दास्तां एवं अन्याय से मुक्त करके स्वतंत्र जीवन प्रदान करने का महान लक्ष्य था। भारत के निवासी दोनों ही देशों में अंग्रेजों के गुलाम थे और अंग्रेजी क्रूरता, दमन और अन्याय के शिकार थे। अतः गांधी की भारत में पत्रकारिता का आधार देश-भक्ति और राष्ट्रीयता ही हो सकता था। 'नवजीवन' गुजराती का मासिक समाचार पत्र था और इंदूलाल कन्हैयालाल याज्ञिक इसके संपादक थे। याज्ञिक ने 'नवजीवन' गांधी को सौंप दिया और गांधी ने 'यंग इंडिया' अंग्रेजी के साथ अपनी गुजराती भाषा के समाचार पत्र का दायित्व भी स्वीकार कर लिया, क्योंकि भारतीय भाषा के समाचार पत्र से ही वे जनता तक पहुँच सकते थे। गांधी के विचार में देश की सेवा करने वाले समाचार पत्र ही राष्ट्रवादी अखबार थे।[12] वह 'इंडिपेंडेंट' को राष्ट्रवादी अखबार मानते थे। और स्वाभाविक है कि वह अपने 'नवजीवन' 'यंग इंडिया' को भी इस कोटि में रखते हैं। इसीलिए वह 'नवजीवन' के उद्देश्यों की

चर्चा में जनता की सेवा का संकल्प लेते हैं। वे 'नवजीवन' (गुजराती) के 7 मार्च, 1920 के अंक में लिखते हैं "नवजीवन" को प्रकाशित करने का उद्देश्य व्यवसाय करना नहीं है, अपितु उसके माध्यम से जनता की थोड़ी बहुत सेवा करना और जनता में नवजीवन का संचार हो जाने पर उसे यथाशक्ति सरल और सीधी राह बताते हुए जटिल प्रश्नों को सुलझाने में मदद करना है।[13]

गांधी अपने इस राष्ट्रधर्म को "स्वच्छ देश-सेवा"[14] में रूपायित करते हैं और अपने समाचार -पत्रों से वे जनता के कल्याण हेतु अपना संदेश देना चाहते हैं। वह 'नवजीवन' के प्रकाशन पर लिखते हैं, "मुझे हिंदुस्तान को कुछ संदेश देकर उसकी सेवा करनी है। मेरे मन में जो कुछ विचार आए हैं, वह कल्याणकारी हैं। मैं इन सब विचारों को आपको समझाने का प्रयत्न कर रहा हूँ (और) ऐसा करने का सबसे बड़ा आधुनिक साधन समाचार पत्र है।"[15] गांधी इसी मंतव्य को प्रसिद्ध पत्रकार एवं 'हिंदू' के संपादक कस्तूरी रंगा आयंगर को श्रद्धांजलि देते समय कहते हैं कि पत्रकारिता देश के लिए तभी उपयोगी और कारगर होगी और उचित स्थान प्राप्त करेगी जब वह निस्वार्थ भाव से चलाई जावेगी, जब उसकी अधिकांश शक्ति संपादकों या स्वयं पत्र-पत्रिकाओं पर आने वाली किसी भी विपत्ति पर विचार किए बिना देश की सेवा में लगेगी और जब संपादक परिणामों की परवाह छोड़कर देश की जनता के विचारों को व्यक्त करेंगे। मैं समझता हूँ कि हमारे देश में इस तरह की पत्रकारिता पनप रही है। ...पत्रकार का खास काम तो देश की जनता के मनोभाव को समझना और उसे निश्चयात्मक शब्दों में निर्भयता के साथ व्यक्त करना ही है।[16] गांधी पत्रकार के रूप में जनता के मनोभाव को जानते हैं, अतः वे 'नवजीवन' में समाचारों को महत्व न देकर 'शांतिपूर्ण स्वराज्य' के लिए सत्याग्रह, अहिंसा आदि का प्रचार करते हैं।[17] और स्पष्ट घोषणा करते हैं की 'नवजीवन' का उद्देश्य स्वराज्य प्राप्ति है।"[18] अतः गांधी की दृष्टि में 'नवजीवन' खरीदने का मतलब है स्वराज्य के मार्ग में प्रवृत्त होना, 'नवजीवन' खरीदने का मतलब है चरखे का स्तवन करना (तथा) 'नवजीवन' का ग्राहक होना तो सत्य और अहिंसा का सौदा है।[19] गांधी को ज्ञात है कि 'नवाजीवन' के ग्राहक गुजरातीभाषी हैं। इससे वे भारतीय भाषा में समाचार-पत्र निकालने के महत्व को समझते हैं। वे इस वास्तविकता को 'इंडियन ओपिनियन' के संपादन-काल में भी जानते थे, जब वे अंग्रेजी के साथ गुजराती, हिंदी तथा तमिल में भी स्तंभ प्रकाशित करते थे। गांधी की राष्ट्रीय पत्रकारिता में राष्ट्र की भाषाओं में समाचार पत्रों के प्रकाशन की प्रवृत्ति महत्वपूर्ण थी, क्योंकि वह जानते थे कि देशी भाषाओं के माध्यम से ही वे देश के किसान मजदूरों की विशाल जनता तथा अंग्रेजी न जानने वाले बहुसंख्यक समाज तक पहुँच सकते हैं। असल में भारतीय भाषाओं वाला समाज ही वास्तविक भारत था[20] और भारत लोक की सेवा तथा 'लोक शिक्षा'[21] इसी राष्ट्रीयता के अंग थे।

'यंग इंडिया' (अंग्रेजी) का वैचारिक आधार भी राष्ट्रीयता ही है। समाचार-पत्र की भाषा बदलने से उसके पाठक तो बदलते हैं, लेकिन गांधी के विचार पूर्ववत रहते हैं। गांधी शिक्षित-अशिक्षित तथा अंग्रेजी भाषा एवं भारतीय भाषा भाषियों को संदेश तो एक जैसा ही देना चाहते हैं, अतः वे जब यरवदा जेल से लौटकर 'यंग इंडिया' का संपादन पुनः शुरू करते हैं तो लिखते हैं कि 'यंग इंडिया' के पृष्ठों में कोई नई रीति या नीति नहीं मिलेगी तथा मेरे पास कोई नया कार्यक्रम या पैगाम नहीं है।[22] गांधी के लिए 'यंग इंडिया' के संपादन-प्रकाशन का कारण यह था कि वे देश के अंग्रेजी में ही समझने-पढ़ने वाले हिंदुस्तानियों, अंग्रेजी सरकार तथा विश्व तक अपने विचारों तथा गतिविधियों का परिचय कराते रहना चाहते थे। गांधी मानते थे कि अंग्रेजी अखबार निकालना उनके लिए कोई बहुत प्रसन्नता की बात नहीं है, लेकिन वह यह भी स्वीकार करते हैं कि वे अपने अंग्रेजी समाचार-पत्र को छोड़ नहीं सकते, क्योंकि अंग्रेज मानते हैं कि उनकी अंग्रेजी में कुछ खूबी है और पश्चिम में भी मेरा संबंध बढ़ा है।[23] गांधी इन आकर्षणों के बावजूद 'यंग इंडिया' अंग्रेजी समाचार पत्र को अपनी भारतीय दृष्टि से ही चलाते हैं और अपनी रीति-नीति की घोषणा करते हैं। 'यंग इंडिया' के अपने पहले संपादकीय में गांधी 'देश की सेवा' एवं 'पत्रकारिता की शुद्धता' पर बल देते हुए इसके उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं, "यह व्यक्तियों के प्रति होने वाले अन्याय की ओर ध्यान आकृष्ट करने का अपना कर्तव्य तो निभाएगा ही, साथ ही रचनात्मक सत्याग्रह और यदा-कदा परिशोधन सत्याग्रह की ओर भी शक्ति लगाएगा।"[24] गांधी का यह रचनात्मक सत्याग्रह वास्तव में 'लोकमत के जागरण' और 'स्वराज्य' के ही लिए था। गांधी 'यंग इंडिया' के 12 जनवरी, 1922 के अंक में एक महत्वपूर्ण लेख 'अखबारों की स्वतंत्रता' शीर्षक से लिखते हैं और स्वराज्य, खिलाफत आंदोलन तथा पंजाब के हिंसक संघर्ष एवं प्रतिबंधों के विरुद्ध लोकमत को जागृत करने वाले भाषण, सभा-सम्मेलन तथा मुद्रण की विविध स्वतंत्रता की माँग करते हैं और इन स्वतंत्रता को ही स्वराज का नाम देते हैं। गांधी मानते हैं कि अन्याय का विरोध करने के लिए भाषण, सभा-सम्मेलन तथा मुद्रण की स्वतंत्रता शक्तिशाली और महत्वपूर्ण है और इन तीनों अधिकारों की पुनः

गांधी पत्रकार के रूप में जनता के मनोभाव को जानते हैं, अतः वे 'नवजीवन' में समाचारों को महत्व न देकर 'शांतिपूर्ण स्वराज्य' के लिए सत्याग्रह, अहिंसा आदि का प्रचार करते हैं। और स्पष्ट घोषणा करते हैं की 'नवजीवन' का उद्देश्य स्वराज्य प्राप्ति है।" अतः गांधी की दृष्टि में 'नवजीवन' खरीदने का मतलब है स्वराज्य के मार्ग में प्रवृत्त होना, 'नवजीवन' खरीदने का मतलब है चरखे का स्तवन करना (तथा) 'नवजीवन' का ग्राहक होना तो सत्य और अहिंसा का सौदा है

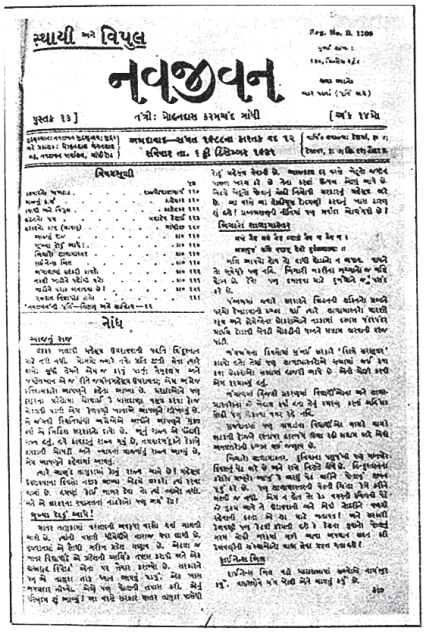

સ્થાયી અને વિપુલ
નવજીવન
તંત્રી: મોહનદાસ કરમચંદ ગાંધી

स्थापना लगभग पूर्ण स्वराज्य के समान है।[25] इसी कारण गांधी लोकमत को बड़ा महत्व देते हैं और मानते हैं कि पत्रकारिता लोकमत को उत्पन्न करने का एक साधन भी है।[26]

गांधी 'यंग इंडिया' के अपने संपादकीय में दो और महत्वपूर्ण बात कहते हैं एक तो यह कि पत्रकारिता उनके जीवन का ध्येय नहीं बल्कि साधन है तथा दूसरी कि वह अपने आदर्शों को समाचार-पत्र के द्वारा जन-समुदाय तक पहुँचाना चाहते हैं। गांधी 2 जुलाई 1925 को 'यंग इंडिया' में लिखते हैं, "मैंने पत्रकारिता को पत्रकारिता की खातिर नहीं अपनाया है, बल्कि जिसे मैंने अपना जीवन का ध्येय समझा है, उसके सहायक के रूप में अपनाया है। मेरे जीवन का ध्येय है अत्यंत संयमपूर्ण जीवन और संयत उपदेश के द्वारा सत्याग्रह के अद्‌भुत अस्त्र का प्रयोग सिखाना-सत्याग्रह सत्य और अहिंसा से सीधा फलित होने वाला व्यवहार है।[27] इसी उद्देश्य को हुए अंग्रेजी भाषा जानने वाले पाठकों तक पहुँचाना चाहते हैं। वे 'यंग इंडिया' के 30 अप्रैल 1925 के अंक में लिखते हैं 'यंग इंडिया' का अपना निश्चित उद्देश्य है। मैं इसके माध्यम से उन आदर्शों को जिनका मैं प्रतिनिधित्व करने की कोशिश करता हूँ, उस विशाल जन-समुदाय में सर्वप्रिय बनाना चाहता हूँ, जो केवल अंग्रेजी ही जानते हैं, हिंदी और गुजराती नहीं।"[28] गांधी ऐसे समाचार पत्रों को 'राष्ट्रवादी अखबार'[29] कहते हैं और अपने इस कार्य को 'स्वदेशी धर्म' जो उन्हें भारत-माता की सेवा का अधिकार देता है।[30]

गांधी ने 'हरिजन' का संपादन-प्रकाशन कुछ भिन्न रूप में किया। उन्होंने 'हरिजन' को अपने अन्य समाचार-पत्रों के समान ही 'विचार-पत्र'[31] बनाया, परंतु उनकी विषय-परिधि को सीमित करके उसे अस्पृश्यता-निवारण आंदोलन का मुखपत्र बनाया। गांधी का विचार था कि यह आंदोलन हिंदू समाज तक सीमित होते हुए भी इसका विश्वव्यापी महत्व है तथा इसे सारी मानव-जाति की सहानुभूति की आवश्यकता है, अतः इसके फलितार्थ एवं इसकी प्रगति की जानकारी विश्व को देना आवश्यक है।[32] गांधी ने 'हरिजन' को हरिजन सेवा के लिए ही प्रकाशित किया और इसे राजनीति विषयक सामग्री से दूर रखा। उनका विश्वास था कि छुआछूत का भूत जब तक हममें भरा है, तब तक स्वराज आकाशपुष्प-सा रहेगा।"[33] इस प्रकार 'हरिजन' का उद्देश्य और अस्पृश्यता-निवारण एक 'जबरदस्त सामाजिक सुधार' बना गांधी ने इसे 'सत्य का पक्षपोषक' कहा तथा यह विश्वास प्रकट किया कि यदि सुधारकों ने धीरज रखा तो आज के विरोधी कल के सुधारक बन जाएंगे।"[34] इस प्रकार गांधी का मूल उद्देश्य

Ten Pages

Non-Cooperation or Civil Resistance ?

Subscription { Single copy As. 2 / One year Rs. 5 / Six months Rs. 3 }
Foreign Rs. 7, -12s. $ 3

Young India

A Weekly Journal — Edited by M. K. Gandhi

Vol. X — Ahmedabad: Thursday, July 19, 1928 — No. 29

The Poverty Problem in India
By C. N. Vakil
University Professor of Economics, Bombay
II

II. Whether India is richer or poorer to-day than 25 years ago?

The answer to the question whether India is richer or poorer to-day than she was, say, 25 years or a longer period ago involves statistical investigations of an extremely complicated nature. The Indian Economic Enquiry Committee presided over by Sir M. Visveswaraya recently reported about the inadequacy of the material for an accurate conclusion on the subject even for recent years. They have suggested elaborate changes for overhauling the machinery of collecting statistical data which would be useful for such and other allied purposes. But these recommendations have been shelved.

In spite of this, estimates have been made from time to time of the average per head income of the people of India. These estimates must be taken with great caution, because in addition to the inadequacy of the statistical data on which they are based the method employed in each case is different. In the absence of better estimates, however, they may be taken for what they are worth as showing at least the general tendency.

The estimates* are as under:

Year	Average income per head in British India	Author
1871	Rs. 20	Dadabhoy Naoroji
1881	„ 27	Sir David Barbour
1901	„ 30	Lord Curzon
1911	„ 50	Mr. Findlay Shirras
1921	„ 74	Mr. K. J. Khambatta

The increase in the per head income as seen in this table is however not real. What we want is to ascertain the growth, if any, in the real wealth of the people, as measured in consumable commodities. In order to convert the nominal money income into real income, we must have resort to the index numbers of the general price-level in the country during these years, which will tell us the purchasing power of the rupee at each of these different dates and thus enable us to make a proper comparison of these figures.

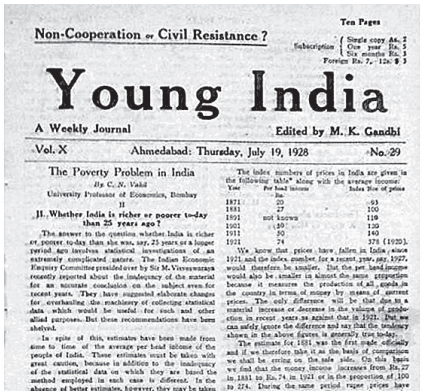

*For a summary of the methods employed in each case and other relevant details see C. N. Vakil "Financial Developments in Modern India," pages 516-21.

The index numbers of prices in India are given in the following table* along with the average income:

Year	Per head income Rs.	Index Nos of prices
1871	20	93
1881	27	100
1891	not known	110
1901	30	120
1911	50	140
1921	74	378 (1920).

We know that prices have fallen in India since 1921 and the index number for a recent year, say 1927, would therefore be smaller. But the per head income would also be smaller in almost the same proportion because it measures the production of all goods in the country in terms of money by means of current prices. The only difference will be that due to a material increase or decrease in the volume of production in recent years as against that in 1921. But we can safely ignore the difference and say that the tendency shown in the above figures is generally true to-day.

The estimate for 1881 was the first made officially and if we therefore take it as the basis of comparison we shall be erring on the safe side. On this basis we find that the money income increases from Rs. 27 in 1881 to Rs. 74 in 1921 or in the proportion of 100 to 274. During the same period rupee prices have increased from 100 to 378. This means that in order to have the same real income in 1921 as in 1881 we must have Rs. 378 in 1921 as against Rs. 100 in 1881. We find however that we have only Rs. 274 in 1921 as against the required sum of Rs. 378, which shows that the average Indian is poorer today to the extent of 1—274/378 or nearly 2/7, or we are poorer today than 40 or 50 years ago.

(To be continued)

For South Africa Indians

A cable from the Secretary, South African Indian Congress, Johannesburg, says:

"Condonation scheme accepted. Illegal entrants in the Union now in India must either return before 30th September next or send applications to reach before that date the Commissioner, Asiatic Affairs, Pretoria. After sending applications they must return to the Union before 30th March 1929. Give wide newspaper publicity all parts India."

This ends the agitation that was going on in South Africa in respect of the condonation scheme and was

* See "Currency and Prices in India" by C. N. Vakil and S. K. Muranjan, page 308.

तो स्वराज्य ही था, अतः समाज-सुधार के लिए समर्पित होने पर भी 'हरिजन' पर प्रतिबंध लगने की अफवाह फैली तो उन्होंने सरकारी हुक्म मिलने पर 'हरिजन' बंद करने का निर्णय किया, क्योंकि सरकारी आज्ञा की अवज्ञा अस्पृश्यता-निवारण आंदोलन का अंग नहीं था। गांधी लगभग इसी समय 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' आंदोलन तथा 'करो या मरो' के शंखनाद से देश की स्वतंत्रता का आह्वान कर रहे थे। ऐसे राष्ट्रहित के आंदोलन के समय गांधी ने समाचार पत्रों के राष्ट्रीय दृष्टिकोण तथा राष्ट्रीय दायित्व को रेखांकित करते हुए एक प्रश्न के उत्तर में 3 अगस्त 1942 को कहा कि कड़ी परीक्षा का समय आने पर हिंदुस्तान के समाचार- पत्र निर्भयतापूर्वक राष्ट्रीय हित का प्रतिपादन करेंगे तथा राष्ट्रीय हित की भावना से परिपूर्ण भारतीयों को यह चेतावनी देते रहेंगे कि ऐसा कोई काम ना करें जिससे अंग्रेजों के खिलाफ या आपस में हिंसा को प्रोत्साहन मिले, क्योंकि ऐसी हिंसा से अपने ध्येय स्वराज्य प्राप्ति की दिशा में हमारी प्रगति अवश्य ही रुक जाएगी।[35] इसी कारण स्वतंत्रता के मिलने के बाद गांधी की दृष्टि में 'हरिजन समाज समाचार-पत्र' की आवश्यकता समाप्त हो गई।[36]

गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में 'इंडियन ओपिनियन' निकाला अर्थात भारतीय दृष्टिकोण और विचार पक्ष को केंद्र में रखा और भारत में भी 'यंग इंडिया' (युवा भारत) 'नवजीवन' (भारत का नवजीवन) तथा 'हरिजन' (ईश्वर के प्रिय भारत के नागरिक) में भारत ही केंद्र में है। इस एकरूपता का कारण यही था कि दोनों देशों में हिंदुस्तानी ही गुलाम थे और वही अंग्रेजों के दमन, अन्याय, कुशासन तथा साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा और क्रूरता के शिकार थे। अतः समाचार-पत्र, देश-स्थान आदि बदलने पर भी गांधी का मुक्ति संघर्ष तो एक ही हिंदुस्तानी समाज के लिए था। गांधी तो दोनों ही स्थानों पर थे, उनका विचार-दर्शन भी एक ही था। बस इतना अंतर था कि दक्षिण अफ्रीका में अन्याय कानूनी, भेद-भाव से मुक्ति एवं स्वाभिमान प्राप्ति की लड़ाई थी, वहीं भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद को

समूल नष्ट करके भारत के स्वराज्य का संघर्ष था।

गांधी का उद्देश्य पवित्र था, अपने देश को स्वतंत्र करना था। अत: इसे प्राप्त करने के साधन के रूप में पत्रकारिता को भी पवित्र और शुद्ध होना था। गांधी की राष्ट्रीय चेतना ने जिस पत्रकारिता की रूप-रचना की थी उसमें पूर्ण रूप से पवित्रता, शुद्धता, लोकहित, लोक-नैतिकता, स्वार्थ-विसर्जन तथा मानवीयता विद्यमान थी। गांधी स्वयं को 'शौकिया संपादक'[37] कहते थे, पर वे वास्तव में 'राष्ट्रीय संपादक' थे और अपने राष्ट्रीयता एवं पवित्र उद्देश्यों से उन्होंने भारतीय पत्रकारिता में एक उच्च कोटि की परंपरा का विकास किया और जिसे गांधी ने पत्रकारिता की सर्वोत्तम परंपरा कहा था।[38] गांधी की इस सर्वोत्तम पत्रकारिता, राष्ट्रहित, नैतिकता, सत्यता, निस्वार्थता आदि श्रेष्ठ मानवीय गुण थे जो आचरण मूलक थे। गांधी ने इस पत्रकारिता को अपने जीवन में उतारा, उसका आचरण किया और वास्तव में तभी पत्रकारिता में एक सर्वोत्तम प्रतिमान एवं परंपरा का विकास हुआ।

My Mouth is Gagged

HARIJAN

MAHADEV DESAI

संदर्भ :

1. 'आत्मकथा अथवा सत्य के प्रयोग', पृष्ठ 122
2. 'सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय', खंड -5, पृष्ठ 300
3. वही, खंड-7, पृष्ठ 278
4. पही, चरंछ-10, पृष्ठ 242, 'इंडियन ओपिनियन' (गुजराती) के 14 सितम्बर, 1912 के अंक से
5. वही, खंड-11, पृष्ठ 323
6. वही, खंड-11, पृष्ठ-326, 'इंडियन ओपिनियन' (गुजराती) के 14 सितम्बर, 1912 के अंक से
7. वही, खंड-14, पृष्ट 83
8. वही, खंड-5, पृष्ठ 305, उन्होंने 'इंडियन ओपिनियन' के 16 मई, 1907 के अंक में भी लिखा, "उनमें (कार्यकर्ताओं में) देश-भक्ति का कुछ न कुछ जोश है। इसीलिए यह समाचार पत्र चल रहा है।" (देखें, सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय,' खंड-6, पृष्ठ 384)
9. वही, खंड-12, पृष्ठ 485, 'इंडियन ओपिनियन' के 16 जुलाई, 1914 के अंक से
10. 'आत्मकथा अथवा सत्य के प्रयोग,' पृष्ठ 238-39
11. 'हिन्द स्वराज्य', 'हिन्द स्वराज्य' के बारे में से, पृष्ठ 25-27, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, पुनर्मुद्रण-सितम्बर 2004
12. 'सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय', खंड-22, पृष्ठ-85, 'यंग इंडिया' के 22 दिसम्बर, 1921 के अंक से
13. वही, खंड-17, पृष्ठ 77
14. वही, खंड-25, पृष्ठ 222, 'नवजीवन' (गुजराती) के 28 सितम्बर, 1924 के अंक से
15. वही, खंड-15, टिप्पणी संख्या 380 तथा जुलाई, 1919 की टिप्पणी
16. वही, खंड-26, पृष्ठ 364-66
17. वही, खंड-42, पृष्ठ 222, तथा खंड-41, पृष्ठ 77
18. वही, खंड-41, पृष्ठ 220, 'नवजीवन' (गुजराती) के 14 जुलाई, 1929 में प्रकाशित सम्पादकीय 'नवजीवन' के बारे में' से
19. वही, खंड-28, पृष्ठ 107, 'नवजीवन' (गुजराती) के 23 अगस्त, 1925 के अंक में प्रकाशित टिप्पणी 'मालिकों में से एक' से
20. वही, खंड-16, पृष्ठ 171 व 229, 'यंग इंडिया' में 24 सितम्बर एवं 8 अक्टूबर, 1919 को प्रकाशित टिप्पणियों से
21. गांधी ने गुजराती पत्रकारों को दिये अपने सन्देश में 2 नवम्बर, 1924 को लिखा था कि सम्पादक का पद आजीविका के लिए नहीं, बल्कि लोक-सेवा के लिए है। देखें- सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड-25, पृष्ठ 298, इसी प्रकार अपने लेख 'समाचार पत्र' में लिखा कि सभी समाचार पत्रों का कार्य लोक शिक्षा है। देखें-सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड-14, पृष्ठ 83, महात्मा गांधी जी विचार-सृष्टि' (गुजराती) में संकलित लेख 'समाचार -पत्र' से
22. 'सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय,' खंड-23, पृष्ठ 363
23. वही, खंड-90, पृष्ठ 427, गांधी ने यह बात 'हरिजन (अंग्रेजी) के सम्बन्ध में 18 जनवरी, 1948 को नई दिल्ली की प्रार्थना सभा में कही थी।
24. वही, खंड-16, पृष्ठ 230, 'यंग इंडिया' के 8 अक्टूबर, 1919 के अंक में प्रकाशित टिप्पणी' ग्राहकों और पाठकों से' से
25. वही, खंड-22, पृष्ठ 188-90
26. वही, खंड-27, पृष्ठ 334
27. वही, खंड-27, पृष्ठ 334
28. वही, खंड-26, पृष्ठ 557
29. वही, खंड-22, पृष्ठ 84
30. वही, खंड-23, पृष्ठ 363
31. वही, खंड-53, पृष्ठ 289 'हरिजन' (अंग्रेजी) के 11 फरवरी, 1933 को प्रकाशित पहले अंक से
32. वही, खंड-53, पृष्ठ 289
33. वही, खंड-72, पृष्ठ 501
34. वही, खंड-53, पृष्ठ 289, 'हरिजन' (अंग्रेजी) के 11 फरवरी, 1933 के अंक से
35. वही, खंड-76, पृष्ठ 402
36. वही, खंड-89, पृष्ठ 94
37. वही, खंड-30, पृष्ठ 148, 'यंग इंडिया' के 25 मार्च, 1926 के अंक से
38. वही, खंड-26, पृष्ठ 366, 'हिन्दू' के सम्पादक कस्तूरी रंगा आयंगर की श्रद्धांजलि-सभा में दिए भाषण से

भारतीय पत्रकारिता के अग्रदूत

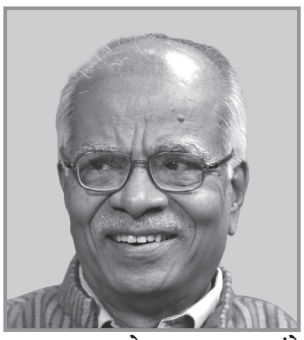

रमेश रघुनाथ पतंगे

कालातीत है बाबा साहब की पत्रकारिता

बाबासाहब डॉ. भीमराव रामजी आंबेडकर की पत्रकारिता किसी वाद के लिए नहीं है। उसका अंतिम हेतु समाज का जागरण है। एक अंतर्दृष्टि

'पत्रकार' यह एक ऐसा शब्द है, जो वृत्तपत्र (समाचार पत्र) या मीडिया से जुड़े सभी व्यक्तियों को लगाया जाता है। मुद्रितशोधन (प्रूफ रीडिंग) करने वाला, रिपोर्ट का काम करने वाला, पेज ले आउट करने वाला, वृत्तपत्र में लिखने वाला, इन सभी को पत्रकार शब्द से ही अभिहित जाता है। जब हम डॉ. बाबा साहब आंबेडकर का उल्लेख एक पत्रकार के रूप में करते है, तब साफ शब्दों में यह कहना होगा कि उपरोक्त अर्थ में डॉ. बाबा साहब को पत्रकार कहना ठीक नहीं लगता, क्योंकि पत्रकारिता उनका करियर नहीं था। लेकिन दूसरा कोई पर्याप्त शब्द भी उपलब्ध नहीं है, इसलिए पत्रकार शब्द का प्रयोग उनके लिए करना पड़ता है।

आजकल पत्रकार बनने के लिये प्रशिक्षण आवश्यक होता है। उन्होंने पत्रकारिता का कोई प्रशिक्षण भी नहीं लिया था। पत्रकारिता उनके लिए समाज को विचार देने का एक माध्यम तथा समाज को जागृत करने का एक शस्त्र था। उनके कालखंड में 'टाइम्स ऑफ इंडिया' या मराठी में 'केसरी' जैसे वृत्तपत्र थे। इन वृत्तपत्रों में बाबासाहब के विचारों को स्थान मिलने की संभावना नगण्य थी। इसी कारण उन्होंने 1920 में 'मूकनायक' (पाक्षिक) नाम का वृत्तपत्र निकाला। इसके बारह अंकों का संपादन डॉ. बाबासाहब आंबेडकर ने किया। उसके बाद 'बहिष्कृत भारत' (पाक्षिक) नाम का वृत्तपत्र 1927 में शुरू किया। इसका संपादन भी उन्होंने ही किया। 'मूकनायक' और 'बहिष्कृत भारत' के संपादकीय उन्होंने ही लिखे।

'मूकनायक' के पहले संपादकीय में यह पत्र मैं 'यों शुरू कर रहा हूँ, इसको बाबासाहब जी ने इन शब्दों में रखा, हमारे बहिष्कृत लोगों पर चल रहे और आगे होने वाले अन्यायों पर उपाय योजना सुझाने का एवं उनकी भावी उन्नति और उसके मार्ग के वास्तविक स्वरूप की चर्चा करने के लिए वृत्तपत्र जैसी अन्य जगह नहीं। लेकिन, मुंबई इलाके में जो वृत्तपत्र निकलते हैं, उनकी ओर नजर डालें तो यह ध्यान में आएगा कि, बहुतांश वृत्तपत्र विशिष्ट जाति के पक्षधर हैं। अन्य जाति के हितों की उन्हें परवाह नहीं होती। (30 जनवरी, 1920 का संपादकीय) केवल अस्पृश्य वर्ग के प्रश्नों को लेकर 'मूकनायक' का जन्म हुआ। 'मूकनायक' नाम भी वैशिष्ट्यपूर्ण है। वह नायक है, लेकिन बोल नहीं सकता। उसको वाणी देने का काम बाबासाहब जी करना चाहते थे।

'मूकनायक' के सभी संपादकीय अस्पृश्यों के प्रश्नों के संदर्भ में: 1920 में स्वराज्य का आंदोलन अपनी चरम सीमा पर था। 'स्वराज्य की प्यास सुराज्य से नहीं मिटती' यह घोषवाक्य बन गया था। 14 फरवरी, 1920 के संपादकीय में बाबासाहब ने इसका संज्ञान लिया और प्रश्न उठाया कि, स्वराज्य किन लोगों का होगा और वह किसके लिए होगा? इन प्रश्नों का उत्तर मिलना चाहिए। 28 फरवरी, 1920 के संपादकीय में वे इसका उत्तर देते हैं, "यह स्वराज्य हमारे कुछ काम का नहीं, क्योंकि स्वराज्य में हमारी अस्पृश्यता समाप्त होने वाली नहीं।" वे आगे कहते हैं, "काँग्रेस पार्टी का स्वराज्य यानि उच्च वर्णों का हमारे ऊपर राज।" जिनको आज हम फंडामेंटल राइट्स कहते हैं, उनका उल्लेख इसी संपादकीय में बाबासाहब ने किया है। हर एक व्यक्ति को नौ अधिकार मिलने चाहिए: - 1. वैयक्तिक स्वातंत्र्य 2. वैयक्तिक संरक्षण 3. निजी माल-मत्ता संभालने का हक 4. कानून की समता 5. सद्विवेकबुद्धि के अनुसार व्यवहार करने की

अनुमति 6. भाषण स्वातंत्र्य और मत स्वातंत्र्य 7. सभा का आयोजन करने का हक 8. देश के राजकारभार (संसद) में प्रतिनिधि भेजने का हक 9. सरकारी नौकरी मिलने का हक।

डॉ. बाबासाहब 27 अप्रैल, 1920 के संपादकीय में लिखते हैं, "हमें स्वराज्य तो प्राप्त होगा ही और जो शासनपद्धति आएगी वह 'प्रजा प्रतिनिधि सत्तात्मक राज्य' की रहने वाली है।" यह उनकी दूरदृष्टि है। 5 जून, 1920 के संपादकीय में उन्होंने सत्यधर्म पर कुछ प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं, "सच्चा धर्म देश में सर्वत्र एक ही है। उसके अनुसार जो आचरण करेगा उस पर ईश्वर संतुष्ट रहेगा। इसके विपरीत सच्चा धर्म छोडकर जनों मे जनार्दन (नर में नारायण) न देखते हुए बनावटी ऊंच-नीच का भाव उत्पन्न कर और वैसे ग्रंथों की रचना कर उसके आधार पर अपने बंधुओं को पशु से भी नीच मान कर भयंकर पातक करना, इससे ईश्वर संतुष्ट होगा क्या? ऐसे पातकी को ईश्वर क्या शिक्षा करेगा?" 14 अगस्त, 1920 के अंक में उन्होंने बहिष्कृत समाज को कहा, "अन्याय को कब तक हम सहन करते जाएंगे? हमें मनुष्य बनना है न? या गड़रियों द्वारा भेडों में पले सिंह जैसे, सिंह होकर भी खुद को भेड़ समझेंगे? हम लोग चोखामेला, मतंगऋषि, रैदास, आदि के वंशज हैं", इसका स्मरण बाबासाहब दिलाते हैं।

'बहिष्कृत भारत' के बाबासाहब के संपादकीय ज्यादा विस्तृत हैं और विचारों की गहराई में बहुत श्रेष्ठ हैं। इन दोनों पत्रों की विशेषता यह रही कि अस्पृश्य वर्ग के प्रश्नों के अलावा अन्य किसी विषय को उन्होंने नहीं उठाया है। उदाहरण के लिए देश की सर्वसाधारण अर्थ नीति, परराष्ट्र नीति, अंतरराष्ट्रीय राजनीति, संरक्षण, शिक्षा के विषय, यातायात के साधन इत्यादि विषयों पर उन्होंने इन पत्रों में कुछ लिखा नहीं है। उनका फोकस अस्पृश्य वर्ग, अस्पृश्यता से उसकी मुक्ति, मुक्ति में बाधा डालने वाले विषय, इन विषयों को दूर करने के उपाय, अस्पृश्यों का संगठन और उनमें आत्मचेतना निर्माण करने के प्रयास तक विस्तृत है।

बहिष्कृत भारत के अग्रलेखों का वर्गीकरण चार भागों में किया जा सकता है। 1. हिंदू धर्म मीमांसा 2. जाति प्रथा और अस्पृश्यता 3. अस्पृश्यों के आर्थिक प्रश्न 4. अस्पृश्यों के राजनैतिक अधिकार। 22 अप्रैल, 1927 का 'बहिष्कृत भारत' का संपादकीय हिंदू धर्म की चिकित्सा का प्रयास करता दिखाई पड़ता है। इसमें बाबासाहब लिखते हैं, ''हिंदू धर्म का सिद्धांत ख्रिस्ती (ईसाई) और महंमदी (इस्लाम) धर्म के सिद्धांत से अलग समता के तत्व का पोषक है। मनुष्य ईश्वर का अंश है। यह कह कर ही यह सिद्धांत नहीं रूकता वह कहता है, मनुष्य ईश्वर का ही रूप है। इतनी निर्भीकता से केवल हिंदू धर्म यह कहता है। जहाँ पर सभी ईश्वर के ही रूप हैं, वहां पर कोई उच्च, कोई नीच इस प्रकार का भेदभाव संभव नहीं है। समता का साम्राज्य निर्माण करने के लिए इससे बढकर कोई सिद्धांत नहीं हो सकता। परंतु बाबासाहब यह खेद व्यक्त करते है कि, हिंदू धर्म के इस तत्व के अनुसार लौकिक व्यवहार नहीं होता।

धर्म के दो भाग होते है, 1. तत्वज्ञान 2. व्यवहार (आचार-पद्धति)। इसी संपादकीय में बाबासाहब ने कहा कि धर्म का विचार और आचार एक जैसा होना चाहिए। लोकमान्य तिलक को उन्होंने उद्धृत किया। लोकमान्य तिलक कहते हैं, "धारणात् धर्मि यतोऽभ्युदय निश्रियससिद्धिः स धर्मि हिंदू धर्म शास्त्रकारों ने आचार में देशकाल अनुसार परिवर्तन करने का अधिकार दिया है। उसके अनुसार, कालानुगत परिवर्तन करना चाहिए।" यह संपादकीय महार चवदार तालाब के सत्याग्रह के समय में लिखा गया है। इसमें सत्याग्रह का संदर्भ है। महाराष्ट्र में अस्पृश्य जातियों में एक महार जाति है। इस जाति के लोग सत्याग्रह में सम्मिलित हुए थे, उन्होंने तालाब का पानी पिया। स्पृश्य हिंदू इससे भड़क गए। उन्होंने कहा कि अस्पृश्य लोगों के स्पर्श के कारण तालाब का पानी अशुद्ध हो गया है, इसलिये उन्होंने जलशुद्धिकरण हेतु कोई धार्मिक विधि की, इससे बाबासाहब जी को बहुत दु:ख हुआ और कठोर शब्दों में उन्होंने इसकी भर्त्सना की।

उन्होंने कहा, "यह धर्मद्रोह है। एक ओर तो कुछ हिंदू परधर्म में गए लोगों को शुद्ध कर स्वधर्म में लाने की मुहिम चलाते हैं और दूसरी ओर जो लोग स्वधर्म में हैं, कुछ हिंदू ऐसे हैं जो उनके साथ दुर्व्यवहार करने का काम करते हैं। यह पागलपन है। स्वामी श्रद्धानंद जी के जीवंत कार्य को यह आगे बढ़ाने वाला नहीं है, उलटा उनके कार्य की विडंबना है। अस्पृश्यता हमारे नरदेह का कलंक है और उसे हमको ही मिटाना पडेगा', इन शब्दों में बाबासाहब जी ने इस संपादकीय का समारोप किया है। 29 जुलाई, 1927 के संपादकीय में उन्होंने फिर से हिंदू धर्म के सिद्धांत पर लिखा है। उन्होंने कहा कि अभ्युदय के लिए समाज में अनुकूल वातावरण होना चाहिए। मोक्षप्राप्ति तो मृत्यु के बाद का विषय है। हिंदू धर्म के ये तथाकथित नियम अभ्युदय के लिए अवसर नहीं देते। बाबासाहब जी कहते हैं कि कुछ लोग कहते हैं, "जब तक आप जीवित हो,

मूकनायक

हमारे गुलाम बने रहो। मृत्यु के बाद आपको स्वर्गप्राप्ति होगी।" बाबासाहब सवाल उठाते हैं कि 'व्यक्ति धर्म के लिए है, या धर्म व्यक्ति के लिए है? हिंदू धर्म हमारा धर्म है या नहीं? यह भी बाबासाहब का सवाल है। अस्पृश्यता हिंदू समाज को ग्रसनेवाला रोग है। इस प्रकार के अन्य लेख भी हैं, जिनमें हिंदू तत्व विचार और व्यवहार इनमें जो विसंगति है, उनको स्पष्ट शब्दों में रखा गया है। एक इशारा भी उन्होंने किया कि, "अगर अस्पृश्य लोग मुसलमान बनते हैं तो हिंदू समाज का क्या होगा? इसका भी विचार हिंदू समाज को करना चाहिए।"

जातिप्रथा तथा अस्पृश्यता के बारे में उन्होंने 3 जून, 1927 के संपादकीय में भी परामर्श दिया है। वे कहते हैं, "हिंदू समाज में जो अस्पृश्यता है, वह पीढ़ीगत है। इस प्रकार की अस्पृश्यता अन्य किसी समाज में नहीं है। जन्मजात ऊँच-नीच भाव यही ब्राह्मणत्व की सच्ची व्याख्या है। इस ऊँच-नीच भाव ने जातिप्रथा को जन्म दिया है। ब्राह्मण वर्ग ने सर्वप्रथम उर्वरित समाज से अपने को अलग किया। उनका अनुकरण क्षत्रिय वर्ग ने किया, वैश्य वर्ग ने किया।" बाबासाहब लिखते हैं, हम ब्राह्मण जाति के विरुद्ध नहीं हैं। हमारा कटाक्ष ब्राह्मणत्व पर है। ब्राह्मण लोग हमारे बैरी नहीं, ब्राह्मणत्वग्रस्त लोग हमारे बैरी हैं। 1 जुलाई, 1927 के संपादकीय में ब्राह्मण वर्ग ने ब्राह्मणत्वग्रस्त होकर किस प्रकार जाति का गढ़न किया, इसकी मीमांसा उन्होंने की है। ब्राह्मण वर्ग ने समाज का नेतृत्व किया है। परंपरा से उसको यह स्थान मिला है। इसलिए उनका दायित्व बनता है कि समाज में जो घातक रूढ़ियाँ उत्पन्न हुई हैं, उन्हें मिटाने का प्रयास करे, यह उनकी जिम्मेदारी है। ऊँच-नीच के भाव का निर्मूलन उन्हीं को करना है।'

महार जाति की आर्थिक स्थिति के बारे में बहिष्कृत भारत में उनके तीन संपादकीय हैं। संपादकीय का शीर्षक है, महार वतन (ईनाम) और तिथियाँ 2 सितंबर, 16 सितंबर व 30 सितंबर 1927 को इन तीनों लेखों में बाबासाहब का आर्थिक ज्ञान प्रकट होता है। गाँव-देहात में फैली महार जाति की वतनदारी क्या होती थी, वतनी कामों में निम्न प्रकार के कामों का जिक्र बाबासाहब ने किया है: -

1. वसूली जमा करने के बारे में गाँव के अधिकारी लोगों की मदद करना।
2. तालुका स्थान या अधिकारी जहाँ बैठता हो, वहाँ डाक का लाना-ले जाना करना।
3. तालुका कचहरी में वसूली पहुँचाना।
4. जन्म-मृत्यु की सूचना एकत्रित करना।
5. सरकारी अधिकारी के गाँव में आने पर उनकी समुचित व्यवस्था करना व वे जो काम बताएँ, वे काम करना।
6. अन्य तरह के जो भी काम कहे जाएँ, वे करना।

ये हुए सरकारी काम, इन सरकारी कामों के अतिरिक्त उसे गाँव की प्रजा (गाँव के लोग) के काम भी करने होते थे। वे काम निम्नलिखित हैं: -

1. खलिहान बनाने के लिए लोगों की सहायता करना।
2. प्रजा में से किसी की मृत्यु होने पर उसके अग्नि संस्कार के लिए ईंधन पहुँचाना।
3. मरने वालों के रिश्तेदारों तक खबर पहुँचाना।
4. मृत पशुओं को खींचकर ले जाना।
5. विवाह के अवसर पर लकड़ी काटना।
6. अन्य छोटे-मोटे काम करना।

'महार वतन' पर बाबासाहब को कडी आपत्तियाँ थीं। वे थीं -1. 'वतन' में काम करने वाले महारों के काम निश्चित नहीं थे। महार लोगों के सरकारी कामगार होने से सरकारी नियम के अनुसार उनके काम तय किए जाने चाहिए थे। उनके काम की अवधि निश्चित नहीं होती थी, उनका काम 24 घंटे का होता था। 'वतन' परिवार के पास होने से किसी कारण से पुरुष न हो तो उसके बदले उसकी पत्नी को, माँ को अथवा पिता को काम करना होता था और ये सारे कार्य अत्यंत श्रमसाध्य हुआ करते थे। वृद्ध व्यक्ति को डाक पहुँचाने के लिए एक गांव से दूसरे गाँव पैदल भेजना अन्याय ही था। सरकारी अधिकारी के गाँव में आने पर उसकी व्यवस्था करने के अलावा उसके घोड़े को खरारा करने तक के सभी कार्य महार वतन में शामिल होते थे। इसके अलावा उसे मुफ्त के काम करने होते थे। बाबासाहब ने ऐसे 43 कामों की सूची दी है।

बाबासाहब की स्पष्ट राय महार वतन रद्द करने की थी। रद्द करने पर मुआवजा देने की जिम्मेदारी सरकार की होती है। बाबासाहब का यह कथन उस समय में (1927) साहस का काम था। "जहाँ वतन की ललक इतनी जबरदस्त है, जहाँ पाटिल अपना वतन छोडने के लिए तैयार नहीं है, जहाँ कुलकर्णी अपना खोया वतन पाने के लिए जूझ रहा है, वहाँ महारों के नेता ही महारों का वतन रद्द करने की माँग करें, यह विचित्र लगेगा व कुछ लोग हमें हमारे ही लोगों का दुश्मन करार देकर हमें दोष देंगे।"

'मूकनायक' और 'बहिष्कृत भारत' के संपादकीय लेखों में अस्पृश्य लोगों के बारे में डॉ. बाबासाहब जी ने एक भूमिका सातत्य से रखी है। उनका प्रतिपादन है, "अस्पृश्य वर्ग अल्पसंख्यक है। हिंदू समाज से वे बहिष्कृत हैं, उन्हें नागरिक अधिकार नहीं हैं, राजनैतिक अधिकार भी नहीं हैं। सामाजिक दृष्टि से बहिष्कृत होने के कारण उन्हें अल्पसंख्यक मानना चाहिए और अल्पसंख्यक मानकर उन्हें विशेष राजनैतिक अधिकार देने चाहिए, राजसत्ता में उनका प्रवेश होना चाहिए। सत्ता के कारण उन्हें बल प्राप्त होगा और समाज में सम्मान का स्थान प्राप्त होगा।" सन् 1921 से अंगेजों ने भारत को संविधान देने की प्रक्रिया प्रारंभ की। काँग्रेस ने ऐसे संविधानों का विरोध किया था। भारत का

बाबासाहब की स्पष्ट राय महार वतन रद्द करने की थी। रद्द करने पर मुआवजा देने की जिम्मेदारी सरकार की होती है। बाबासाहब का यह कथन उस समय में (1927) साहस का काम था। "जहाँ वतन की ललक इतनी जबरदस्त है, जहाँ पाटिल अपना वतन छोडने के लिए तैयार नहीं है, जहाँ कुलकर्णी अपना खोया वतन पाने के लिए जूझ रहा है, वहाँ महारों के नेता ही महारों का वतन रद्द करने की माँग करें, यह विचित्र लगेगा व कुछ लोग हमें हमारे ही लोगों का दुश्मन करार देकर हमें दोष देंगे

संविधान कैसा होना चाहिए, इसकी एक रिपोर्ट मोतीलाल नेहरू कमेटी द्वारा देश के सामने रखा गया। बाबासाहब ने 18 जनवरी, 1929 के अंक में नेहरू रिपोर्ट की भी चिकित्सा की है। दूसरे शब्दों में कहें तो मोतीलाल नेहरू द्वारा जो संविधान देश के सामने रखा गया था, उसका नफा-नुकसान एक लेख में उन्होंने बताया। लेख का शीर्षक है, 'नेहरू कमिटीची योजना व हिंदुस्थानचे भवितव्य' (नेहरू कमेटी की योजना और हिंदुस्तान का भवितव्य)।

वैसे यह विषय संविधान के संदर्भ में होने के कारण जटिल है। लेकिन, बाबासाहब जी उसे बहुत सरल शब्दों में लिखते है। वे कहते हैं, (सारांश)'' संविधान के बिना किसी देश की राजनीति नहीं चल सकती। नेहरू कमेटी ने विश्वामित्र जैसी प्रतिसृष्टि निर्माण करने का साहस किया है। नेहरू कमेटी के अनुसार स्थलवाचक (टेरिटोरियल) और जातिवाचक मतदार संघों (मतदाता समूह) की रचना की गई है। बाबासाहब का कहना यह है कि पिछड़ी जातियों के लिए जातिवाचक मतदार संघ (मतदाता समूह) आवश्यक है। स्थलवाचक मतदार संघ (मतदाता समूह) से पिछड़ी जाति का उम्मीदवार चुनकर आना कठिन है, लेकिन, नेहरू कमेटी में मुसलमानों के लिए, जो जातिवाचक विभक्त मतदार संघ (मतदाता) निर्माण किए हैं, बाबासाहब उन पर कड़ा आक्षेप करते हैं। उनके शब्द इस प्रकार हैं, इस देश के राजनीति में जो गैरजिम्मेदार प्रवृत्ति निर्मित हुई है, उसका मुख्य कारण मुसलमानों को दिए हुए विभक्त मतदार संघ (सेपरेट इलेक्ट्रेट) हैं, ऐसे मतदार संघ (मतदाता समूह) तुरंत समाप्त करने ही चाहिए।

इसके बाद डॉ. बाबासाहब ने लखनऊ पैक्ट की मीमांसा की है उनके अनुसार लखनऊ पैक्ट से भी ज्यादा विभक्त मतदार संघ (सेपरेट इलेक्ट्रेट) नेहरू कमेटी ने मुसलमानों को दिए हैं। उन्होंने इसका एक ग्राफिक्स दिया है। 'लखनऊ पैक्ट' में जो दिया उससे ज्यादा विभक्त मतदार संघ (सेपरेट इलेक्ट्रेट) मुसलमानों को नेहरू कमेटी की सिफारिशों में दिया गया है। इसी प्रकार सिंध, बलूचिस्तान और पश्चिमोत्तर सीमांत प्रांत अलग बनाए गए हैं। इसके कारण (उस समय भारत में केवल नौ प्रांत थे) इन नौ

प्रांतों में से पाँच प्रांतों में मुसलमानों का प्राबल्य बनेगा, इसका कारण यह बताया गया कि जहाँ मुसलमान बहुसंख्यक है, वहाँ वे हिंदुओं पर अत्याचार नहीं करेंगे परन्तु जहाँ पर हिंदू बहुसंख्यक है वहाँ पर मुसलमान पर अत्याचार नही होंगे। इस प्रकार से एक समूह को ओलिस रखना यह घटिया किस्म की राजनीति है, ऐसा बाबासाहब का मत था।

बाबासाहब कहते हैं कि हिंदू का स्वभाव 'दिधलें दुखि परांने उसनें फेडू नयेचि सोसावे' (दूसरों ने दुख दिया तो उसे सहन करना चाहिए, उसका बदला नहीं लेना चाहिए) ऐसा होने के कारण हिंदू केवल मार खाएगा। बाबासाहब कहते हैं कि नेहरू कमेटी की रिपोर्ट हिंदुओं के लिए खतरनाक है और हिंदुस्तान पर भी अरिष्ट लाने वाली है। हमको यह समझना चाहिए कि हमारा देश कैंची में पड़ा देश है। एक तरफ से चीन और जापान जैसे दो भिन्न संस्कृति के राष्ट्रों का घेरा है और दूसरी तरफ से तुर्किस्तान, पर्शिया, अफगानिस्तान आदि तीन मुसलमान देशों का घेरा है। अगर चीन भारत पर हमला करता है तो सारा भारत उसके खिलाफ खड़ा हो जाएगा। परंतु अगर मुसलमानी देश आक्रमण करते हैं तो भारत का मुसलमान आक्रामक मुसलमानों से लड़ेगा क्या? अंत में उन्होंने कहा, "मैं हिंदू समाज और धर्म पर टीका करता हूँ, इसलिए हिंदू लोग मुझ पर नाराज होते हैं। मुसलमानों पर टीका कर कर उनका रोष नहीं लेना चाहिए, यह बहुत लोग कहते हैं, लेकिन, जिस बात में हमारे देश का अकल्याण है, उस बात में हमारा भी अकल्याण है, ऐसी हमारी भावना होने के कारण इस जोखिम को हमने उठाया है।'

अपने लेखों में बाबा साहब अनेक बार संस्कृत वचनों का उपयोग करते हैं। उदाहरण के लिये 'यतोऽभ्युदयनिः श्रेय स सिद्धिः स धर्मः''न जानपदिकं दुखिमेकि शोचितुमर्हति' 'अशोचन्नति कुर्वीत यदि पश्येदुपकमम' (जो सार्वजनिक रूप से दुखी है, उसका शोक करना व्यर्थ है। उसके प्रतिकारार्थ इलाज करना चाहिए।) 'अपहाय निजं कर्म कृष्णोति वादिनि। ते हरेर्द्वेषिनः पापाः धर्मार्थ जन्म यध्दरेः'। (अपने कर्म का त्याग कर जो केवल हरि-हरि करते बैठे रहते हैं, वे हरिद्वेषी हैं। हरि का जन्म धर्म की रक्षा के लिए हुआ है।) 'एतावानेव पुरुषो यदमर्षी यदक्षमी। क्षमावान्निरमर्षश्व नैव स्त्री न पुनि पुमान्' (जिस पुरुष को अन्याय का संताप अनुभव होता है, उसी को ही पुरुष कहना चाहिए।) (4/11/1927) 'ऋणैश्चतुर्भिः संयुक्ता जायंते मानवा भुवि। पितृदेवर्षिमनृजैर्देयं तेभ्यश्च धर्मति।।' (3/2/1928) (प्रत्येक व्यक्ति पितृऋण, देवऋण, ऋषिऋण और लौकिक ऋण इस प्रकार के चार ऋण लेकर जन्म लेता है यह ऋणमुक्ति उसे करनी पड़ती है।

इस प्रकार अनेक श्लोकों का दर्शन उनके लेखों में होता है। इसके साथ-साथ अपना विषय स्पष्ट करने के लिए छोटी-छोटी कहानियों का उपयोग भी उन्होंने किया है। मराठी के अनेक मुहावरों को भी उन्होंने कुशलतापूर्वक उपयोग किया है। सरल भाषा, स्पष्ट प्रतिपादन, निर्विवाद युक्तिवाद और निर्भय लेखन यह उनकी गुणसंपदा है।

बाबासाहब की पत्रकारिता, यह एक गहन अध्ययन का विषय है। सामान्य पत्रकारों से वे अलग हैं। उनकी पत्रकारिता पूँजीवाद, समाजवाद या निजीवाद के लिए नहीं है, समाज जागरण ही उसका अंतिम हेतु है। यह दायित्व उन्होंने स्वयं आगे बढ़कर अपने कंधों पर लिया है। लाभ और भय से वे सैंकडों हाथ दूर हैं। उन्होंने कभी भी किसी पर व्यक्तिगत टीका नहीं की। कमर के नीचे वार करने के लिए उन्होंने अपनी लेखनी का उपयोग कभी नहीं किया। कभी झूठ नहीं लिखा, डिस-इनफार्मेशन और मिस-इनफार्मेशन का सहारा उन्होंने कभी नहीं लिया। उन्होंने मौलिक लेखन किया, जो कालातीत है। वह 1927-28 में जितना सत्य है, उतना ही 2021 में भी सत्य है। ऐसी पत्रकारिता के लिए गहरा अध्ययन, विषय की सर्वांगीण जानकारी होना आवश्यक होता है। बाबा साहब के लेखों को पढने के बाद इसकी अनुभूति हम सबको होती है।

ऐसे विरले पत्रपंडित को विनम्र प्रणाम!

भारतीय पत्रकारिता के अग्रदूत

व्रती पत्रकार थे दीनदयाल जी

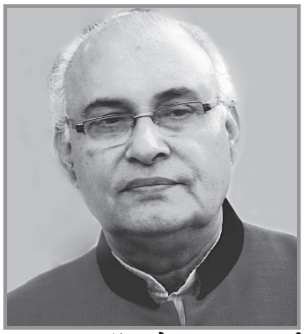

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

स्थूल अर्थ में एक पूर्णकालिक पत्रकार न होते हुए भी पत्रकारिता से दीनदयाल जी का गहरा जुड़ाव रहा है। साथ ही, पत्रकारिता के प्रति उनका अपना एक व्यापक दृष्टिकोण भी रहा है। एक विश्लेषण

दीनदयाल उपाध्याय व्यापक एवं समग्र-दृष्टि संपन्न महापुरुष हैं। उनका विविधायामी व्यक्तित्व किसी एक शीर्षक से व्यक्त नहीं हो सकता। क्या वे पत्रकार थे? इस पर सवालिया निशान लगाया जा सकता है। वे औपचारिक रूप से न तो किसी समाचार पत्र के या पत्रिका के संपादक थे और न संवाददाता, लेकिन पत्रकारिता से उनका गहरा जुड़ाव था। उन्होंने अपनी समग्र किंवा एकात्म दृष्टि से पत्रकारिता को कैसा समझा व अपने कार्यकर्ताओं को समझाया, यह जानना महत्वपूर्ण एवं शिक्षाप्रद भी है।

कुछ जानकारियाँ इतिहास की है। किस तरह से 'राष्ट्रधर्म' शुरू हुआ, 'पांचजन्य' शुरू हुआ, दैनिक 'स्वदेश' शुरू हुआ। इन पत्रिकाओं को चलाने में दीनदयालजी की भूमिका निर्णायक थी, भले ही वे औपचारिक रूप से इनके संपादक नहीं थे। लेकिन इन पत्रों के वे ही सब कुछ थे, वे लिखते भी थे। उनके कुछ संपादकीय तो हस्ताक्षरित भी थे। बाद में 'आर्गेनाइजर' और 'पांचजन्य' में उनके दो स्तंभ छपने लगे। 'पांचजन्य' में पराशर के नाम से 'विचारवीथी' और 'आर्गेनाइजर' में 'पोलिटिकल डायरी'। बाद में 'पोलिटिकल डायरी' जब पुस्तक के रूप में छपी तो प्रकाशित पुस्तक की भूमिका कांग्रेस के विख्यात नेता डॉ. संपूर्णानंद ने लिखी। उन्होंने अच्छा विवेचन किया। उन्होंने लिखा है, "कुछ लेख ऐसे हैं जो तात्कालिक संदर्भों के हैं, कुछ लेख ऐसे हैं जो कुछ दूर तक जाने वाले हैं और कुछ लेख ऐसे हैं जो कालजयी हैं।" मतदाता अपना मत किसको दे, दल कैसा हो, प्रत्याशी कैसा हो, स्वयं मतदाता कैसा हो, इन संदर्भों में उनके आलेखों को डॉ. संपूर्णानंद ने कालजयी कहा है। लोकतंत्र का विकास करना है तो वे ऐसे आलेख हैं, जिन पर गंभीरता से विचार करना होगा।

अपने अनुसंधान के दौरान तीन प्रसंगों को यहाँ प्रस्तुत करना समीचीन होगा। पहला प्रसंग है - जुलाई 1953 में 'पांचजन्य' का 'अर्थ' अंक। इस अंक के लिए आर्थिक विषयों पर बहुत मेहनत से सामग्री एकत्र की गई। संपादक थे श्री महेंद्र कुलश्रेष्ठ। कुलश्रेष्ठ जी को अपने पत्र में दीनदयाल जी ने स्वयं ही अंक की समीक्षा लिखकर भेजी। उस समीक्षा में उन्होंने कहा, "सामग्री के चयन में निष्पक्षता और पूर्णता रहनी चाहिए।" उन्होंने लिखा, "पंचवर्षीय योजना में श्री रणदिवे की आलोचना को क्यों स्थान दिया गया। (रणदिवे कम्युनिस्ट पार्टी के थे) जबकि अन्य दलों की आलोचना का समावेश नहीं है। इसमें समग्रता का अभाव है। पत्रकारिता में शिष्टाचार की अवहेलना नहीं होनी चाहिए।" समीक्षा में उन्होंने आगे लिखा, संपादकीय में श्री अशोक मेहता की शासन के साथ सहयोग की नीति की आलोचना करते हुए 'मूर्खतापूर्ण' शब्द के स्थान पर यदि किसी सौम्य शब्द का प्रयोग होता तो 'पांचजन्य' की प्रतिष्ठा के अनुकूल होता।" उन्होंने 'अर्थ' अंक की ऐसी बेबाक समीक्षा की। उनकी इस समीक्षा में पत्रकारिता के प्रति उनके नजरिए को सहज ही समझा जा सकता है।

अपने इसी अनुसंधान के दौरान 'पांचजन्य' के तत्कालीन संपादक श्री भानुप्रताप शुक्ल

से मैंने दीनदयाल जी के पत्रकार स्वरूप के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा कि 'पांचजन्य' से उनके संबंध दिखते नहीं थे, हम लोग अनुभव करते थे। उनका सानिध्य बड़ा मृदु और शिक्षाप्रद होता था। वे आते थे, पत्रकारिता पर चर्चा होती थी, खबर कैसे बनाना, शीर्षक कैसे लगाना आदि से लेकर सभी छोटी-बड़ी सैद्धांतिक और व्यावहारिक बातें होती थीं। हम उनसे बहस भी करते थे। एक बार दीनदयाल जी लखनऊ आए, तब संत फतेह सिंह किसी विषय पर आमरण अनशन कर रहे थे। हमने 'पांचजन्य' में शीर्षक दिया 'अकालतख्त के काल'। उन्होंने यह शीर्षक हटवा दिया, समझाया कि सार्वजनिक जीवन में इस प्रकार की भाषा का उपयोग नहीं करना चाहिए, जिससे परस्पर कटुता बढ़े तथा आपसी सहयोग और साथ काम करने की संभावना ही समाप्त हो जाए। अपनी बात को दृढता से कहने का अर्थ कटुतापूर्वक कहना नहीं

उनके लिए पत्रकारिता मिशन थी

देवेन्द्र स्वरूप

उनकी पत्रकारिता के वास्तविक स्वरूप का प्रत्यक्ष अनुभव मुझे सन् 1951 के अंत में लखनऊ आने पर हुआ। तब भारतीय जनसंघ नया-नया बना था। दीनदयाल जी को उत्तर प्रदेश इकाई का महामंत्री का दायित्व मिला था। मुझे प्रयाग से जनसंघ के प्रांतीय कार्यालय में प्रचार का काम संभालने के लिए भेज दिया गया। दीनदयाल जी महामंत्री के नाते दौरा करके लखनऊ वापस आते तो थोड़ी देर अमीनाबाद में जनसंघ कार्यालय में रहकर सदर बाजार में राष्ट्रधर्म प्रकाशन पहुँच जाते। उन दिनों 'राष्ट्रधर्म' मासिक, 'पांचजन्य' साप्ताहिक के साथ 'स्वदेश' दैनिक भी निकल रहा था। दीनदयाल जी के वहाँ आते ही संपादक मंडल इकट्ठा हो जाता। चाय के प्याले पर दौरे के अनुभव सुनाते, चुटकुले, हँसी-मजाक चलते। राष्ट्रीय घटनाचक्र पर चर्चा होती, तो विश्लेषण करते, भावी संभावनाओं को टटोलते हुए बहस छिड़ जाती, ज्यादा गरम होने पर दीनदयाल जी मजाक में कह उठते, यार, संपादक तुम गधे हो। और वायुमंडल अट्टहास से गूँज उठता।

ऋषि-परंपरा के पत्रकार मनीषी

लल्लन प्रसाद व्यास

दीनदयाल जी ने 'पांचजन्य' 'राष्ट्रधर्म' आदि के माध्यम से हिन्दी पत्रकारिता की जो सेवा की और सादगी, सेवा और त्याग का जो आदर्श प्रस्तुत किया, वह सदैव श्रद्धा और सम्मान से स्मरण किया जाता रहेगा। मैंने लेखक के नाते तो उन्हें निकट से देखा, किंतु पत्रकार के रूप में देख पाता, ऐसा सौभाग्य नहीं मिला। उनके पत्रकार जीवन से जुड़े उक्त मानवीय गुणों की चर्चा तो मैने खूब सुनी और पढ़ी, जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मेरे पत्रकार जीवन पर भी कुछ-न-कुछ अवश्य ही पड़ा, क्योंकि मेरे लिए भी पत्रकारिता कभी कोई पेशा नहीं रही, बल्कि समाज-सेवा के साथ आत्मकल्याण ही मुख्य साधना रही।

मिशनरी पत्रकारिता के प्रेरणा पुरुष

दीनानाथ मिश्र

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी और उप प्रधानमंत्री लालकृष्ण आडवाणी के पत्रकारीय जीवन के पीछे भी किसी-न-किसी तरह दीनदयाल जी की प्रेरणा ही थी। अटल जी तो अरसे तक दीनदयाल जी के साथ ही अपनी विविध पत्रकारीय भूमिका निभाते रहे। जब लालकृष्ण आडवाणी 'आर्गेनाइजर' के साथ पत्रकार के रूप में जुड़े तब उन्होंने दीनदयाल जी पर नियमित रूप से लिखने का आग्रह बढ़ा दिया, विशेष रूप से तब, जब उनके पास संपादन की जिम्मेदारी आई।

दीनदयाल जी अकसर दौरे पर रहते थे। आडवाणी जी ने उनसे आग्रह किया कि दौरे के समय अपनी व्यक्तिगत घटनाओं और अनुभवों को अपने स्तंभ में स्थान दें। दीनदयाल जी ने एक-दो बार ऐसा किया भी, परंतु अपने स्तंभ में अपनी चर्चा ही करें। वह उन्हें अच्छा नहीं लगा, सो इसे बंद कर दिया। बाद में लेखों में वे स्वयं से संबंधित घटनाओं का उल्लेख हरगिज नहीं करते थे।

दीनदयाल जी, अटल जी और आडवाणीजी की पत्रकारीय प्रेरणा से देश भर में सैकड़ों लोगों ने पत्रकारिता को मिशन बना लिया। उस दौर में मिशनरी पत्रकारिता के प्रतीक के रूप में केवल रत्न मलकानी, बालेश्वर अग्रवाल, एन.बी. लेले, यादवराव देशमुख, देवेन्द्र स्वरूप अग्रवाल, नंदकिशोर त्रिखा सरीखे वरिष्ठ पत्रकारों को गिना जा सकता है।

होना चाहिए।

तीसरा प्रसंग आर्गेनाइजर के तत्कालीन संपादक श्री के. आर. मलकानी से संबंधित है। उन्होंने बताया कि जब सन् 1969 में तीन दिन से भी कम अवधि में हरियाणा, पश्चिम बंगाल और पंजाब की गैर-कांग्रेसी सरकारें गिरा दी गई, तब हमने (आर्गेनाइजर में) एक व्यंग्यचित्र छापा, जिसमें तत्कालीन गृहमंत्री श्री यशवंत राव चव्हाण लोकतंत्र के बैल को काटते हुए दर्शाए गए थे। बहुतों को यह कुछ अतिवाद लगा। पंडितजी की प्रतिक्रिया थी, चाहे व्यंग्यचित्र ही क्यों न हो, गो-हत्या का यह दृश्य मन को धक्का पहुँचाने वाला है।

उनके संपादकीय आलेखों, स्तंभों, इन सबको देखकर दीनदयाल जी के बारे में जो चित्र उभरता है, वह यह कि उनका पत्रकार प्रोफेशनल नहीं है, वह व्रती हैं, मिशनरी हैं। हाल ही में एक सुखद तथ्य ध्यान में आया है कि 'हिदस्थान समाचार' की 15वीं वर्षगांठ पर उन्होंने एक लेख लिखा और उसमें एक ऐसे शब्द का प्रयोग है, जो आज तक मैं सोचता था कि इसको क्या कहा जाए? आजकल जब पत्रकार किसी से साक्षात्कार करता है तो वह साक्षात्कार कम तथा कई बार थानेदार की तरह 'इंटेरोगेट' ज्यादा करता है। समाचार वह ऐसे देता है, जैसे हम किसी की चुगली करते हैं। यह चुगली शब्द पढ़कर मुझे बहुत अच्छा लगा।

दीनदयाल जी का कहना था,

आदर्शवादी पत्रकारिता के साधक और मार्गदर्शक

यादवराव देशमुख

निष्ठा किसके प्रति?

प्रबुद्ध पत्रकार का समस्याओं के प्रति अपना दृष्टिकोण होता है। वह स्वयं भी किसी विचारधारा से अनुप्राणित रहता है। कई बार वह किसी संस्था या दल का अनुयायी भी होता है। स्वाभाविक ही प्रश्न उठता है कि पत्रकार के रूप में वह किसके प्रति निष्ठावान हो? अपनी विचारधारा के प्रति? अपने से संबंधित किसी दल के प्रति या देश और जनता के व्यापक हितों के प्रति? ऐसा ही एक समस्या के प्रति उनका स्पष्ट दिशा-निर्देश मिला 'पांचजन्य' के मेरे एक अग्रलेख के प्रकाशन पर।

बात संभवत: सन् 1961 की है। उस समय चीनी आक्रमण के बादल देश पर मंडराने लगे थे। ऐसे समय अनेक राजनैतिक दलों एवं मजदूर संगठनों ने रेल कर्मचारियों की कतिपय माँगों के समर्थन में देशव्यापी रेल हड़ताल का आह्वान किया था।

सन् 1962 के चुनावों को नजदीक देखकर 'भारतीय जनसंघ' ने भी उसका समर्थन किया। उसके प्रमुख नेताओं को स्वाभाविक अपेक्षा थी कि 'पांचजन्य' भी हड़ताल का समर्थन करेगा। पर मैंने अपने संपादकीय सहयोगियों से विचार-विमर्श कर हड़ताल को देशहित विरोधी करार दिया। सत्तारूढ़ कांग्रेस के 'नवजीवन' दैनिक ने उसे जनसंघ पर प्रहार करने का अच्छा माध्यम बना लिया था। इससे जनसंघ के साथियों का नाराज होना स्वाभाविक ही था। उन्होंने दीनदयाल जी से, जो उस समय जनसंघ के महामंत्री थे, इतनी शिकायत की कि "क्या जनसंघ की नीतियो-कार्यक्रमों का 'पांचजन्य' में विरोध उचित है?" सायंकाल अपने निवास पर मुझे बुलाया और जनसंघ के उन कार्यकर्ताओं को भी। उनकी नाराजगी का कारण बताया। फिर स्वयं ही प्रश्न किया, "जो काम पार्टी के हित में हो, पर देश या समाज के लिए अहितकर या अनुचित न लगे, तो पाठकों का मार्गदर्शन करने वाले समाचार पत्र को क्या करना चाहिए?" प्रश्न में ही उसका उत्तर भी निहित था। फिर बोले, "भाई, पार्टी की अपनी कुछ विवशताएँ हड़ताल का समर्थन करने की हो सकती है। पर 'पांचजन्य' की तो ऐसी कोई विवशता नहीं होनी चाहिए। मुझे लगता है, आप लोगों ने अपनी अपनी जगह ठीक ही निर्णय लिया है।" बात यहीं पर साफ हो गई। पार्टियाँ देश या समाज से बड़ी नहीं हो सकतीं। देशहित ही सर्वोपरि होना चाहिए। पत्रकार की निष्ठा भी देश के प्रति ही अपेक्षित है।

अध्ययन व्यसन, पत्रकारिता मिशन

डॉ. नंदकिशोर त्रिखा

सत्य और केवल सत्य लिखना; और कथन यदि सत्य और प्रिय दोनों हो, पर अनिष्ठकारी हो तो उसे न लिखना - यह उनकी पत्रकारिता का आदर्श था। उनके लेखों में इस बात का आग्रह रहता था कि एक भी ऐसा शबद प्रयुक्त न हो जाए, जो लोकहित के प्रतिकूल प्रभाव करता हो। अपने ही लेखों में नहीं, बल्कि जिस किसी ने भी इस प्रकार से लिखा हो, उन सब के लेखों में भी वे अगर ऐसे शब्द देखते थे, तो उन्हें नि:संकोच टोक देते थे। यह जो वाणी का कठोर तप है, कोई तपस्वी ही उस पर चल सकता है। पत्रकार के रूप में दीनदयाल जी ऐसे ही तपस्वी थे। गांधी जी ने भी अपने लेखों में कहा है कि जब मैं दक्षिण अफ्रीका में 'Indian Opinion' का और बाद में 'हरिजन' का संपादन करता था, तो कई बार रात को उठकर सोचता था कि मैं जिस शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ, उसका समाज पर क्या असर पड़ेगा।

संपादकों के संपादक दीनदयाल

डॉ. वेदप्रताप वैदिक

दीनदयाल जी आजादी के बाद के पत्रकारों में थे, अगर आप उनको पत्रकार मानें और पिछले लगभग 200 साल के पत्रकारिता के इतिहास पर गौर करें, तो विभाजन रेखा खींच दी जाती है- स्वतंत्रता के पहले की पत्रकारिता और स्वतंत्रता के बाद की पत्रकारिता। स्वतंत्रता के पहले की पत्रकारिता को कहा जाता है कि वह व्रती थी और स्वतंत्रता के बाद की पत्रकारिता को कहा जाता है कि वह वृत्ति है। व्रत समाप्त हो गया और वृत्ति आरंभ हो गई। जो दोष आज हम पत्रकारिता में देखते हैं उनकी तरफ दीनदयाल जी बराबर इशारा किया करते थे। उनके जमाने में जो पत्रकारिता थी, उससे जो विकट पत्रकारिता जब हम आज देखते हैं तो यह कठिन तथ्य मालूम पड़ता है कि पत्रकारिता अब वृत्ति बन गई है। लेकिन आजादी के बाद भी दीनदयालजी, जो पत्रकारों के पत्रकार थे, संपादकों के संपादक थे, उनकी पत्रकारिता में उन वृत्तियों का हमें कहीं पता नहीं चलता है, लक्षण नहीं मिलता है, जिनसे आज की पत्रकारिता ग्रस्त है। सिर्फ ऐसा नहीं है कि दीनदयाल जी ही इस पत्रकारिता में थे, कई और पार्टियों के ऐसे अखबार उस जमाने में निकलते थे। कम्यूनिस्ट पार्टी के अखबार, दूसरी छोटी-मोटी पार्टियों के ऐसे अखबार उस जमाने में निकलते थे, डॉ. लोहिया और अशोक मेहता के अखबार, पत्रिकाएँ आदि। उनमें भी उस तरह का त्याग, उस तरह का विलक्षण बौद्धिक वैभव और मौलिकता व निर्भयता हम नहीं देखते हैं, जो 'पांचजन्य' में, 'राष्ट्रधर्म' में तथा दूसरे पत्रों में हम बराबर देखते रहे हैं।

"चुगलखोर और संवाददाता में अंतर है। चुगली जनरुचि का विषय हो सकती है, किंतु वह सही माने में संवाद नहीं। संवाद को 'सत्यम्, शिवम्, सुंदरम्' तीनों आदर्शों को चरितार्थ करना चाहिए। सत्यम् और सुंदरम् से काम नहीं चलेगा। यह बात मुझे बहुत महत्वपूर्ण लगी। सत्यम् और सुंदरम् के साथ संवाददाता शिव का भी बराबर ध्यान रखता है। वह केवल उपदेशक की भूमिका लेकर नहीं चलता, वह यथार्थ के सहारे वाचक को शिवम् की ओर इस प्रकार ले जाता है कि शिवम् यथार्थ बन जाता है। संवाददाता न तो शून्य में विचरता है और न कल्पना-जगत् की बात करता है, वह तो जीवन की ठोस घटनाओं को लेकर चलता है और उसमें से शिव का सृजन करता है।" ऐसी अनेक बातें इसी एक लेख में है, जो पत्रकार को भीतर से शृंगारित करती है, उसे भीतर से बनाती हैं।

उनके संपादकीयों, आलेखों एवं स्तंभ-लेखों के विषयवस्तु एवं विवेचना के प्रकारों का वर्णन भी यहां किया जा सकता है। इनमें उनकी चिंतनशैली विद्वता एवं अध्ययन क्षमता तो परिलक्षित होती ही है, पत्रकारीय दायित्वबोध एवं शालीनता भी उनकी रेखांकनीय विशेषता है। सामाजिक सरोकारों से पथभ्रष्ट पत्रकारिता बहुत खतरनाक हो सकती है। आज प्रोफेशनलिज्म के नाम पर पत्रकारों द्वारा पत्रकारिता के साथ जो व्यवहार हो रहा है, वह चिंता उत्पन्न करनेवाला है। ऐसे समय में दीनदयाल जी द्वारा पत्रकारिता के संदर्भ में किया गया मार्गदर्शन एक समुचित पाथेय है, क्या हम इस पाथेय को ग्रहण कर सकेंगे? यही हमारे आज का यक्षप्रश्न है।

शब्द और कृति की एकात्मकता के सर्जक थे पंडितजी

हृदयनारायण दीक्षित

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के शब्द बीजमंत्र जैसे हैं, उन्होंने अपने लेखकीय अनुष्ठान के माध्यम से सनातन मूल्यों के संधान का उल्लेखनीय कार्य किया है। पंडित जी का सृजन-कार्य अतिव्यस्त दिनचर्या के बीच महकते उपवन जैसा है।

पत्रकारिता और लेखन की मूल भावना की अंतर्निहित शक्ति में कुछ कहने का बीजमंत्र छुपा होता है। जिनके पास कहने को बहुत कुछ होता है, जो पीड़ित, कातर मानवता के दुखों के कारण स्वयं भी कातर और व्यथित होते रहते हैं, वे बिना बोले, बिना लिखे नहीं रह सकते। अक्षर-अक्षर जोड़कर अपने भावों की डोर में विचारों के मोती पिरोने का काम पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने अपनी इसी व्यथा के चलते किया।

संदर्भ

1. *'पत्रकारिता और दीनदयाल उपाध्याय', सम्पादक डॉ.. महेश चन्द्र शर्मा*
2. *दीनदयाल उपाध्याय कर्तृत्व एवं विचार, डॉ. महेश चन्द्र शर्मा - दोनों ही पुस्तकें प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित हैं।*

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

'मंथन' की सदस्यता लें

एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान से प्रकाशित शोध त्रैमासिक पत्रिका 'मंथन' की सदस्यता लें। भारत–विचार–दर्शन पर केंद्रित इस पत्रिका की सदस्यता के लिए व्यक्ति/संस्थान कृपया निम्न पते पर सूचित करें और शुल्क एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के नाम से स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, एकाउंट नं. 10080533188, आईएफएससी–एसबीआईएन0006199 में जमा करें।

सदस्यता विवरण

नामः .....

पताः .....

..... राज्यः ..... पिनकोड : .....

लैंड लाइनः ..... मोबाइलः (1)..... (2).....

ई मेलः .....

जन–मार्च 2019 से पुनर्निधारित मूल्य

	भारत में	विदेश में
एक प्रति	₹ 200	US$ 9
वार्षिक	₹ 800	US$ 36
त्रिवार्षिक	₹ 2000	US$ 100
आजीवन	₹ 25,000	

प्रंबध संपादक

'मंथन' त्रैमासिक पत्रिका

एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002

दूरभाष : +91-9868550000, 011-23210074

ई–मेलः manthanmagzin@gmail.com, ekatmrdfih@gmail.com

प्रभात प्रकाशन

नवनूतन प्रकाशन की गौरवशाली परंपरा

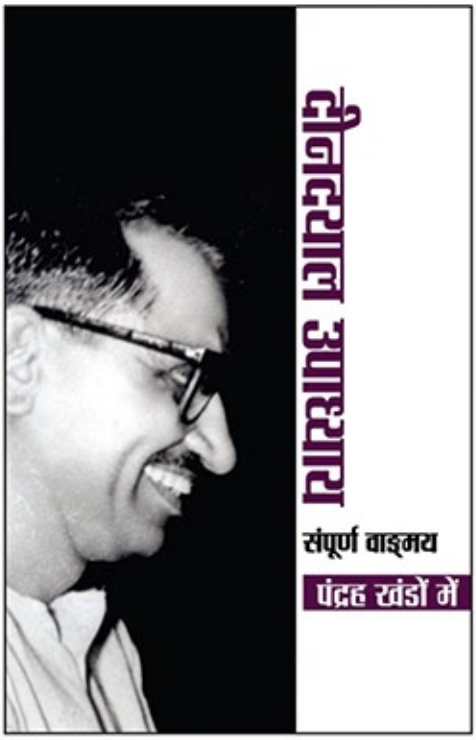

दीनदयाल उपाध्याय
संपूर्ण वाङ्मय (पंद्रह खंडों का सैट)

9 अक्तूबर, 2016 को नई दिल्ली के विज्ञान भवन में पं. दीनदयाल उपाध्याय जन्म शताब्दी वर्ष के अवसर पर डॉ. महेश चंद्र शर्मा द्वारा संपादित एवं प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 'दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय' के पंद्रह खंडों का लोकार्पण भारत के प्रधानमंत्री मान. श्री नरेंद्र मोदी, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरकार्यवाह मान. श्री सुरेश (भय्याजी) जोशी व भारतीय जनता पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष मान. श्री अमित शाह के करकमलों द्वारा संपन्न हुआ।

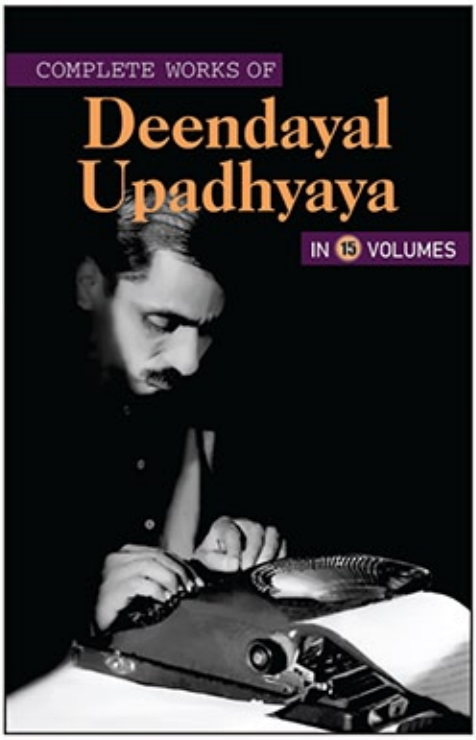

COMPLETE WORKS OF
DEENDAYAL UPADHYAYA
(Set of 15 Volumes)

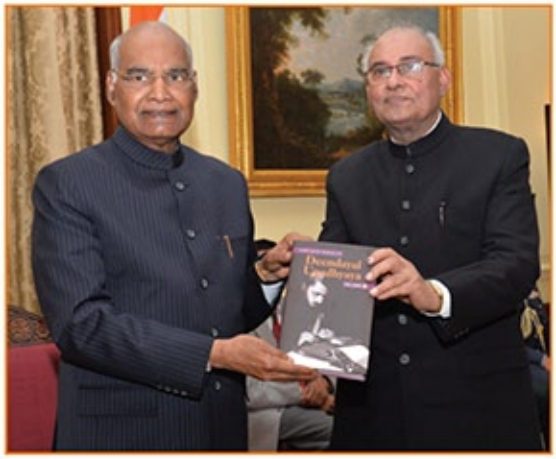

11 फरवरी, 2019 को भारत के राष्ट्रपति मान. श्री राम नाथ कोविंदजी को 'Complete Works of Deendayal Upadhyaya' की प्रथम प्रति भेंट करते हुए प्रधान संपादक डॉ. महेश चंद्र शर्मा

प्रभात प्रकाशन
ISO 9001:2015 प्रकाशक
4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002
हेल्पलाइन नं. 7827007777 ☎ 011-23289777
E-mail : prabhatbooks@gmail.com ✤ Website : www.prabhatbooks.com

एकात्म मानवदर्शन
अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान
28 मीना बाग, नई दिल्ली-110001
☎ 011-23062611
इ-मेल : ekatmrdfih@gmail.com

Regd. R.No. 32486/78 (Hindi)

nixi

ATMANIRBHAR BANO .IN CHUNO

Indian Domain for Global Reach

- A truly international identity
- India's most credible domain
- Available in all 22 Indian languages
- Highly secure & affordable domain
- Trusted by 2.5 million+ users
- User friendly

Book your unique .IN domain today!

nixi.in | nixi@nixi.in

.in REGISTRY